प्रकाशक—

मनोरमल गोठी,

ऑ. मंत्री

ओसवाल मित्र मंडल बम्बई नं. ३

मुद्रक—

द. ग. सावरकर,

श्रद्धानंद मुद्रणालय, खटाव भुवन

गिरगांव मुंबई नं. ४.

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

"ओसवाल जातिका वर्तमान परिस्थिति और उपाय लिखना" मेरे लिये तो एक धृष्टता ही है क्योंकि इस विषयपर तो लिखनेका वह अधिकारी है जिसको ओसवाल जातिके हित का बखूबी विचार है। ओसवाल जातिकी पूर्व तथा वर्तमान परिस्थितिका अच्छा अनुभव है। लेखनकला का भी अच्छा ज्ञान और अभ्यास है और लिखनेके लिये काफी अवकाश है वही लिख सकता है।

मुझको न तो कुछ अनुभव है और न कुछ निवन्ध लिखनेका अभ्यास है, अवकाश भी कठिनतासे निकाला है सो भी स्वच्छ (Fair) लिखनेका तो मिला भी नहीं। रुचि अलवत्ता थी जिसके वलपर इसको लिख सका हूं।

अस्वच्छताके, पुनरुक्तिके, भाषा व्याकरणके दोष भी इसमें अनेक है। इनके अतिरिक्त एक विषयको मैनें निर्भयतापूर्वक खूब चर्चा है जिसको मैने लाभदायक समझा है। क्योंकि मुझमें अल्प वुद्धि है और अल्पही ज्ञान है, तदनुसार अधिक बुद्धिमत्ताका लिखाही कैसे जा सकता था। अब चाहे वाचक वर्ग विचारोंको पढ़कर भड़क उठें वा कड़क उठें।

मूलचंद वोहरा

अजमेर

शुद्धीपत्र

पृष्ठ	लाईन	अशुद्ध	शुद्ध
९	२१	वणा	वर्णों
३९	१०	चढ़ने	बढ़ाने
५१	१८	एकसे	ऐक्यसे
५२	९	धर्मगुरओंने	धर्मगुरुओंने
८०	२	प्राक्त	प्राय:
८०	१६	बढ़	बढ़ा
८४	५	दुर्गुणी	दुर्गुण
८६	१५	कजक	कर्जके
९०	१	गफ़लनसे	गफ़लतसे
९०	११	खली	खुली
१०८	१०	लिखता	लिखते
१२०	१६	षाजी	वाजी
१२०	२३	मुफे	मुझे
१३०	१०	रो	भारी
१४४	१९	पठणो	पढ़णो
१५३	२२	माग	मार्ग
१८४	२१	लुशासे	लुसीसे
१८५	४	हा	ही
२०१	२२	जिसको	जिसको
२२३	६	विधओंमें	विधवाओंमें
२२३	१२	अपेगा	अपेक्षा
२१५	६	क्रिय	त्रियां
२५७	३	धांनखाने	धांनखावे
२६२	१८	भाजक	भोजक
२६७	२१	मनुष्याक	मनुष्योंके
३००	९,१०	परायमता	परायणा
३१६	८	ओनवाल	ओसवाल

उपोद्घात

आज आपके कर कमलोंमें यह पुस्तक पेश की जा रही है जो की ओसवाल मित्र मंडल बम्बईके प्रयासका एक मात्र विपर्यास है अतएव इस मंडलका कुछ संक्षिप्त परिचय आपके सन्मुख पेश करूँ तो अनुचित नहीं होगा।

बम्बई आज हिन्दुस्थान शिरोमणी शहैर गिना जाता है इसमें अपने स्वजातीय बन्धु अलग अलग दूर दूरके प्रान्तोंमेंसे यहाँ वेपार निमित्त आ बसे है यहाँ पर अपने स्वजातीय बन्धु स्थायी रूपसे बसनेवाले शायद ही मिलेंगे अस्थायी रूपमें बसनेवाले यहाँ पर विशेष है फिर भी नवयुवकोंके दिलमें यह बात हमेशा खटकती थी कि यहाँपर अपनी समाजकी कोई संस्था नहीं है जो कि अपनी समाजके बंधुओंकी कुछ सेवा करे जब नवयुवक आपसमें मीलते थे तो इस विषय की परमार्श की जाती थी फल स्वरूप यहाँपर ऐसी संस्था स्थापनेकी ओर दिल आकर्षित हुवा और इस बातका आन्दोलन चलता रहा और यही आन्दोलन कार्य रूपमें परिणत होके इस संस्थाका जन्म सं. १९८२ के आसोज सुदी १० के दिन शुभ मुहुर्तपर हुवा खुशाली (ब्याव आदि) के और विपत्तीके समयपर (सभासद और गरसभासद चाहे कोई भी ओसवाल हो) सेवा करनेका कार्य शुरू हुवा इस सेवा कार्यसे कइ एक ओसवालोंके मन अपने तरफ इस मंडलने आकर्षित किये धीरे धीरे इसके सभासद बढ़ते गये और कार्य सुचारू रूपसे चलता रहा जो जो आन्दोलन

बढ़ता गया तो सभासदोंमें यह विचार पैदा हुवे कि अपना सम्बन्ध सिर्फ स्थानिक बन्धुओंके अलावा अखिल भारत वर्षके साथ जोडना जरूरी है और उसमें हरेक प्रान्तोंके ओसवाल सम्मिलित हो सके ऐसे नियम बनाना चाहिये इस बावत विद्वानोंकी भी यही राह मिली और मंडलने अपना क्षेत्र विस्तृत किया और नीचे मुताबिक नियम मुकरर किये इस मंडलमें हरेक प्रान्तोंके (जैसे मारवाड मेवाड गुजराथ कच्छ पंजाव यु. पी. वीगेरे) ओसवाल मेम्बर बन सकते है मेम्बर फिस निचे मुताबिक है:—

पेट्रन २५१) लाईफ मेम्बर २१) सालाना मेम्बर १) इस मंडल का ध्येय समस्त ओसवाल समाजकी सर्व प्रकारसे उन्नती करना है आदि ।

कुछ दिनोंके बाद यहाँपर जैन श्वेताम्बर कोन्फरन्स और श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कोन्फरन्सोंके अधिवेशन हुवे इन अधिवेशनोंमें मंडलने यथाशक्ती सेवा अर्पण की जिससे मंडल वहार गाँवोंके अग्रेसर अग्रेसर सज्जनोंके परिचयमें आया तव ऐसे वहुतसे सज्जन इस मंडलमें शरीक हुवे और इसका कार्य ठीक तौरपर चलता रहा ।

जो ओसवाल समाज शाहा (महाजन) के नांवसे मशहुर थी और ऐसे ऐसे नरवीर इस समाजमें हो चुके है जिनोंके उत्कृष्ट कार्योंके फल स्वरूप आज भी इस समाजका मुख उज्वल है हमारे उन बुजुर्गोंने कई एक बहादुरीके कार्य प्रधानोंके और राज्यके कई एक पदवीयोंपर विराजके समाजपर ही नहीं बल्कि सारी जनतापर जो छाप विठाई थी उस स्थितीपर से आज इस स्थितीपर समाज क्यों आगई है इस समाजका अध:पतन इतना क्यों हो गया और

ऐसी ही स्थिति रही तो समाजका आगे कितना अधःपतन होगा और अपनी संतान जब पूर्व इतिहासको देखेगी तो अपनेको क्या कहेगी ? देखो उनोंके पूर्वजोंने तो संसारमें वह नाम पाया था और उनोने उस कारकीर्दीपर अपनी लापरवाहीसे पानी फेर दिया। एक ताजा उदाहरण अपने सामने मोजुद है कि जब कि इसी भारत वर्षमें अंग्रेजोंका आगमन हुवा जब उनकी स्थिति कैसी थी और अपनी भावी सन्तानकी सुखकी तरफ द्रष्टी रखके इनोंने क्या क्या कार्य किये अब इनोंने न्याय पंथको छोड कर चलने लगे तो महात्मा गांधीजी जैसे पुरुषोंने इनोंके सामने धर्मयुद्ध शुरू किया यह बात अलग है लेकिन इनोंने दुनियामें जब तक यह न्यायपर चलते रहे तो वह नाम वह सभ्यता पाई की उनोंके बराबरमें आ बैठनेका होसला कई शताब्दीयों तक किसीको नहीं हुआ इनी विचारोंपर परामर्श करते करते मंडलके भूतपूर्व मंत्री डॉ. खुषचंदजी गुगलीया M. B. B. S. ने एक इनामी निबंधकी योजना मंडल सन्मुख पेशकी तदर्थ मंडलने ओसवाल समाजकी परिस्थिती और उसके उत्थानके उपाय शिर्षक निबन्ध प्राप्त करनेकी अखिल भारतके मुख्य मुख्य पचासो पत्रों द्वारा घोषणाकी फल स्वरूप मंडल के पास ११ निबन्ध आये (निबन्ध लेखकोंके नाम आगे पर दिये हुवे है) उक्त निबन्धोंकी पांच पांच नकल करके मंडलकी आज्ञानुसार समाजके प्रतिष्ठित सज्जनोंके पास भेजी गई थी (उक्त सज्जनोंके नाम आगेपर दिये हुवे है) इन सज्जनोंने निबन्धोंको जो मार्कस दिये उसीके अनुसार इनाम देकर तीनों पास निबन्धोके अलावा दुसरे भी निबन्धोंमेसे आवश्यकीय मेटर इसमें सम्मिलित कर यह पुस्तक तैयार की गई है जो आपके कर कमलोंमें पेश है।

अपनी समाजका कुछ दिग्दर्शन करा सके ऐसी किताब इस पुस्तक आलावा शायदही है मंडलने समाजकी वडी आवश्यकताकी पुर्ती की। वह एक समय था कि जब जैनियोंकी संख्या करोडोंमें थी आज क्या ११॥। लाख और भी कैसी हालतमें और कहां कहां बसी हुइ है इसका विवरण ब्योरावार इस पुस्तकमें किया गया है। प्रायः निबंध लेखकोंने 'जैन जाति निर्णय' और 'महाजन वंशावली' इन दोनों पुस्तकोंकी विशेषतर तथा साथमें अन्य पुस्तकोंकी सहायतासे इसका दिग्दर्शन अच्छी तौरपर किया है वैसेही समाजमें संगठन और शुद्धी सदाचारकी अनुपस्थिती समाजके लिये कितनी हानीकर है और जब यह थी तब समाज कितनी उमदा स्थितीपर थी यह दिखलानेमें भी कुछ कमी नहीं रखी वैसेही समाजमें प्रचलित कुरिवाज जैसे बालविवाह, बहुविवाह, बेजोड विवाह, वृद्धविवाह, ओसर, व्यर्थव्यय इत्यादीका वर्णन तथा वह कैसे समाजके लिये भयंकर हानिकर है इसका साक्षात दृष्टान्तोके द्वारा इतना अच्छा वर्णन दिया है कि जिससे पुस्तककी अत्यंत उपयोगिता मालूम होती है। वर्तमान परिस्थितीका वर्णन अच्छी तौरपर किये जानेपर आगे अवनति और उपाय भी बतलाये गये है यह तो समाजके लिये अत्यंत जरूरी है अगर समाज इसकी उपयोगिता समझकर अपने अपने घरोंमें गांवोंमें शहरोंमें प्रान्तोंमें इसका प्रचार करेंगे तो मैं समझता हूँ की समाजकी चर्याही सारी पलट जायगी, बेशक इसके लिये नवयुवकोंको कुछ सहन करना पडे लेकीन बहादुरीसे सहन करके कार्य करेंगे तो समाजका इस रोगग्रस्त अवस्थामेंसे नवयुवान ही छुटकारा करा सकते है। अब लकीरोंके फकीर रहनेसे काम नहीं चलेगा। दुनियाका प्रवाह

किधर जा रहा है और अपना दुनियामें क्या स्थान है ? इसका ख्याल इस पुस्तकमें ऐसा बतलाया है कि जिससे पाठक गण कुछ न कुछ ऐसे निश्चय तो करही लेवे कि कल सुबहसेही मैं कमसे कम मेरे घरमें ऐसी कुरियोंका तो भंडाफोड करके दुनियाके प्रवाह तरफ जरूरी जाऊँगा।

एक बात यहां निर्दिष्ट करना जरूरी है कि इस पुस्तकमें विधवा विवाहके बारेमें विशेष लिखा गया है मण्डल इस बातसे बिलकुल तटस्थ है जादा तर निबंध लेखकोंने इसका खूब समर्थन अत्यंत जरूरी समझकर किया है अतएव मण्डलने आपके सन्मुख विचार पेश किये है इसे पढनेके बादमें जैसा आप अपना विचार निश्चित करना चाहे कर सकते है लेकीन विधवाओंकी दशाका विचार होना अत्यंत जरूरी है।

विशेषतः पुस्तक सुरूसे आखिर तक जिसमे ओसवाल पनेका अंश है उसमें नवा जोश पैदा कर समाजमें क्रांती करानेके लिये उत्साहित करानेमें इतनी उमदा है कि जिसने एकदफे इसको पढ़ना शुरू किया वह बगैर अंततक पढें इसे छोडही नही सके।

पाठकों इस पुस्तकको पढकर समाजको फिरसे वही स्थितीपर लानेके लिये आगे आकर समाजका उद्धार करे तब तो लेखक महाशयोंका और मंडलका प्रयास सार्थक होगा इनोंने अपनी फरज बजाई और आप अपनी फरज अदा करेंगे यही इच्छाके साथ यहा विराम लेता हूँ।

विजयादशमी
सं. १९८७

समाजसेवक,
सौभाग्यमल जिन्दाणी

मंडलकी घोषणासे उत्साहित होकर

निबंध लेखक महाशय

प्रथम इनाम सुवर्ण मेडल और रु. ५१) सर्टीफिकेट पानेवाले

१ श्रीमान् मूलचंदजी वोहरा, अजमेर

द्वितीय इनाम रूप मेडल और रु. ३१) सर्टीफिकेट पानेवाले

२ श्रीमान् रायसाहेब कृष्णलालजी वाफणा, अजमेर

तृतिय इनाम रूप मेडल और रु. २१) सर्टीफिकेट पानेवाले

३ श्रीमान् पूर्णचंद्रजी दक, सेठीया जैन सं. प्रां. विद्यालय विकानेर

४ ,, जोधसिंहजी मेहता, उदेपूर

५ ,, हनुवतमलजी कोठारी, कलकत्ता

६ ,, नवलमलजी फिरोदीया, (फरग्युशन कॉलिज, पुना) अहमदनगर

७ ,, रोशनलालजी चपलोत, सेठीया जैन विद्यालय विकानेर

८ ,, प्रतापमलजी कोचर, पालखेड (जि. नाशीक)

९ ,, रामचंदजी सिंधी, मारवाडी छात्र निवास १९ ताराचंद दत स्ट्रीट कलकता

१० ,, वाडीलाल जीवराज शाह, वरा बजार कलकता

११ ,, केशवलाल भाईलाल, बारामती

उक्त लेखक महाशयोंने नीतान्त महीनों तक अथाग परिश्रम उठाया, इस लिये यह मंडल इन सज्जनोंको हार्दिक धन्यवाद देता हैं

मंत्री, ओ. मि. मंडल

मंडलकी तर्फसे मंगाये हुवे निबंधकी जांच करने वाले सज्जनों के

मुबारक नाम
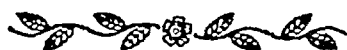
१ श्री. दयालचंदजी जोहरी

आगरा

२ श्री. गोपीचंदजी धाडीवाल

कलकता

३ श्री. भैरवलालजी बरडीया

नरसींहपुर

४ श्री. अमरचंदजी पुंगलीया

कलकता

पास हुवे तिनों निबन्धोंको जांच कर एकत्र सम्मलित करने वाले सज्जन

श्री. दरबारीलालजी नायतिर्थ

ताडदेव बम्बई

उक्त सज्जनोंने अपना बहुमुल्य समय खर्च कर अथाग परिश्रम उठाकर निबंधकी जांच की अतएव मंडल उनोंका अत्यंत आभारी है ।

मंत्री

श्रीः परमात्मने नमः

ओसवाल समाजकी परिस्थिति और उसके उत्थानके उपाय।

इस निबन्धका मुख्य विषय है "ओसवाल जातिकी वर्तमान परिस्थिति तथा उपाय" तथापि कुछ पूर्व परीस्थिति की भी जानकारी कर लेना उपयोगी एवं आवश्यकता भी है।

ओसवाल जाति की उत्पत्ति।

जिस तरह अपने शरीरमें अनेक अंग हैं, हाथ हैं, पैर हैं, सीना है, कमर है, पेट है, और मस्तक है, तथापि जो पद मस्तक को प्राप्त है वह अन्य अंग को नहीं है। इसी तरह इस आर्यावर्त (भारतवर्ष) को जो सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वह संसार के अन्य किसी भी देश को नहीं हुआ। सब प्रकार की भूमि, सब प्रकार की ऋतुयें, सब प्रकार की खानें और सब ही वर्णोंके मनुष्य यहां हैं। इनके अतिरिक्त सर्वोच्च सौभाग्य जो इस देश को ही केवल प्राप्त हुआ है वह यह है कि इस पूण्यभूमि में ऐसी अनेक आत्माओं ने जन्म लिया है जिनके तत्त्व चिन्तन और ज्ञान के फलस्वरूप केवल इस देश के निवासियों को ही नहीं, संसार भरको अनुपम रत्न स्वरूप अध्यात्म ज्ञान की प्राप्ती हुई है। ईश्वर, आत्मा, सत्य, पुण्य, अहिंसा इत्यादि की समस्त संसारमें जानकारी हुई है।

अलग अलग समयमें अलग अलग रुचिवालोंमें, अलग अलग योग्यतावालोंमें और अलग अलग परिस्थितिमें उस तत्त्वज्ञान को जनता के हृदयमें पहुंचाने के निमित्त भिन्न भिन्न महात्माओंने भिन्न भिन्न ज्ञानमार्गों की रचना की है। इस तरह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की भिन्नता के कारण आर्यावर्त के आर्य महर्षियों द्वारा खोजा हुआ आर्यधर्म भिन्न भिन्न रूपोंमें और भिन्न भिन्न शास्त्रोंमें प्रगट हुआ है। जिनमें दो मुख्य हैं जैन और वेदान्त। ये दोनों ही अत्यंत प्राचीन हैं और इनका पुनरुद्धार समय समयपर धर्मोद्धार के द्वारा होता रहा है।

समय के प्रभाव से इनमें अनेक भेद हो गये हैं। वेदानुयायियोंमें शैव, वैष्णव, रामानुज, आर्यसमाजी आदि और जैनियोंमें दिगंबर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापंथी इत्यादि अनेक भेद प्रभेद हो गये हैं।

विक्रम संवत् प्रारंभ से ठीक चारसौ वर्ष पूर्व अर्थात् आज से करीब चौवीस सौ वर्ष पूर्व जैन समाज का संगठन और वृद्धि करनेके निमित्त श्वेताम्बर आम्नाय के जैनाचार्य श्रीमद् रत्न प्रभुसूरिजी महाराजने जो आन्दोलन ओसिया नगर से (जो मारवाड़में जोधपुर के निकट आजकल तो ग्राम मात्र है) आरंभ किया था और सर्व प्रथम उस नगर के राजा ऊपलदे पवार को जैनधर्म का प्रतिबोध देकर राजासहित १८ गोत्रोंके क्षत्रियों को जैनधर्म अंगीकार कराया था, एवं उन्हें सकुटुम्ब जैन क्षत्रिय बनाया था। उसके फल स्वरूप ओसवाल (ओसियावाले) जाति उत्पन्न और आरंभ हुई। एक जाति की स्थापना सिर्फ चमत्कार वश नहीं हो सकती थी। सिद्धी और चमत्कार तो कई जगह नजर आते हैं लेकिन कोई जनसमूह

अंधश्रद्धा या अंध विश्वास से एक सूत्रमें बंधना स्वीकार नहीं करता। जबतक मनोवृत्तियाँ एक कौम में नहीं आती और चित्तको शान्ति व आनन्द की आशा नहीं होती तवतक कोई भी नये पंथपर आना पसन्द नहीं करता । बादमें १८ गोत्र स्थापित हुवे। और यह आन्दोलन कभी तीव्र तो कभी मंद गति से चलता रहा।

(किन्तु सोहलवीं शताब्दी के पश्चात् तो प्रायः बन्दही होगया)। इस आन्दोलन के द्वारा राजपूतोंमें नवीन जीवन उत्पन्न हुवा। मांसाहार, मदिरापान, अति हिंसकता इत्यादि बन्द होने लगी और जनतोंमें सद्भाव बढ़ने लगे। श्रीमान् रत्न प्रभूसूरिजी के शिष्य वर्गने तथा अन्य जैनाचार्योंने भी इस आन्दोलन को शक्तिभर सहायता दी जिस के कारण राजस्थानसे आगे गुजरात तक यह आन्दोलन बढ़ता चला गया और जैन क्षत्रियोंका समुदाय " ओसवाल " नामसे प्रगट होता रहा और बढ़ता रहा। एवं गोत्र भी बढ़ते रहे।

पिछले आचार्योंने भी इसमें यथासम्भव योग दिया और ओसवाल जातिकी वृद्धि की। इनमें अधिक प्रसिद्ध श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज हुवे हैं जो श्री दादाजी महाराज के नाम से स्मरण किये जाते हैं तथा श्रद्धालु भक्तोंद्वारा संकट निवारण के निमित्त और संसारिक इच्छाओंकी पूर्ति के निमित्त भी ध्याये और पूजे जाते हैं।

ओसवाल जातिका तथा उसके विविध गोत्रों की उत्पत्तिका जो इतिहास यति महाशयों से, उनकी रचित पुस्तकों से, भाट लोगों से तथा सद्गृहस्थों के पास रखे हुवे प्राचीन कागज पत्रों से प्राप्त होता है वह इतना असंबद्ध है कि उसको पूर्ण विश्वासनीय नहीं माना जा सक्ता है। किन्तु उसके अतिरिक्त अन्य साधनोंके अभावमें उसहीमें

से वास्तविक इतिहास खानमेंसे रत्न खोज निकालने की तरह ही खोज लेना विवेक शीलता है। लेखकने जितनासा अल्प सत्य उसमें खोजनेपर देखा, पाठकों को उसकी झांकी मात्र करा दी है, और कुछ और भी करावेगा।

जब हमारे स्वजातीय बन्धुओं को अपनी जाति और गोत्रों के इतिहास की सच्ची रूचि पैदा होगी तब धनिक वर्ग, विद्वान वर्ग और युवक वर्ग मिलकर धन, विद्वता और परिश्रम का इसमें सदुपयोग करेंगे और इष्ट वस्तु कीचड़में से कमल की तरह प्राप्त कर लेंगे।

पूर्व इतिहास भविष्य को उज्वल बनाने में भी कम सहायक नहीं होता है। उससे अनेक प्रकार का अनुभव (तजुर्बा) बढ़ता है और भविष्य के लिये उन्नति का मार्ग ढूँढने में अत्यन्त सहायता और बल मिलता है। लेखक की हार्दिक इच्छा है कि वह दिवस शीघ्र आवे जब हमारी जाति के प्रत्येक स्त्री पुरुष को और बालक बालिका को अपनी जाति की उत्पत्ति और पूर्व परिस्थिति का आवश्यक परिचय तो अवश्य हो।

ओसवाल जाति का हिन्दुत्व।

हमारी जाति में आजकल अनेक सज्जनों के विचारों में एक भ्रम प्रायः देखा जाता है और वही भ्रम ओसवाल जाति के विषय में अन्य जाति वाले अनेक सज्जनों में भी आजकल फैलता दिखाई पड़ता है। वे कहते हैं "ओसवाल जाति हिन्दु नहीं है वह तो जैनी है।" इस भ्रम का कारण यह है कि वे सज्जन नहीं जानते कि "हिन्दू धर्म" और 'हिन्दू' वास्तव में है क्या? उनकी समझ में यह बात बैठी हुई है कि जब जैन धर्म किसी भी धर्म की शाखा

नहीं है किन्तु एक स्वतंत्र धर्म है तब जैनियोंको हिन्दू कैसे कहा जा सकता है। इसी तरह उन वेदान्तियों द्वारा भी यह भ्रम अधिक बढ़ता जाता है। जो समझते हैं और कहते हैं कि "जो वेदों को मानता है वही हिन्दू है, जो वेदों को नहीं मानता वह कदापि हिन्दू नहीं"।

उक्त भ्रम के निवारण के लिये यहां पर यह अत्यन्त जरूरी हो गया है कि यह बतलाया जावे कि किन २ कारणों से ओसवाल जाति "हिन्दू" है। इसके लिये पहले यह भी जान लेना जरूरी है कि हिन्दू और हिन्दू धर्म किन को कहना चाहिये।

इस देश का मूल नाम आर्यावर्त था जैसा कि प्राचीन ग्रन्थों में पाया जाता है। यहां के निवासी आर्य कहे जाते थे। जब पश्चिम से यवन लोग इस देश में आये तो पहले वे इस देश की महा नदी इन्डस के उस पार ठहरे थे, और इस पार के निवासियोंको "इन्डू" के नाम से पुकारते थे और इस देश को "इन्डुस्तान" कहते थे। इन्हीं नामों से पश्चिमी जगत में यह देश तथा यहां के निवासी प्रसिद्ध हुवे। पश्चिमी जिव्हाके स्वभाववश "इन्डू" शब्द "हिन्दू" शब्द में और "इन्डूस्तान" शब्द "हिन्दुस्तान" शब्द में बदल गया, और संसार में यह देश हिन्दुस्तान और इसके निवासी हिन्दू नाम से विख्यात हो गये, और शनैः शनैः इस देशमें भी आर्य शब्दका स्थान हिन्दू शब्दने ग्रहण कर लिया और इस देश के निवासी बाहर और भीतर सर्वत्र हिन्दू कहे जाने लगे।

प्रायः सभी विद्वानों, विचारकों और इतिहासज्ञों का इन शब्दोंकी

उत्पत्ति के संबंधमें अब तक यही मत है[1]। इसी कारण अखिल भारतवर्षीय हिन्दू महासभाने भी हिन्दू शब्दकी यह व्याख्या निश्चित की है कि "जो भारतवर्षमें उत्पन्न हुए किसी भी धर्म का माननेवाला हो वह हिन्दू है" इस व्याख्या के अनुसार वैदिक, जैन, बौद्ध, सिक्ख सभी मतानुयायी हिन्दू है क्योंकि इन धर्मों की उत्पत्ति इसी देशमें हुई है।

उक्त व्याख्यासे उन वेदानुयायियोंका भ्रम दूर हो जाना चाहिये। जो यह मानते हों कि जो वेदोंको मानता हो वही केवल हिन्दू है। उनको समझ लेना चाहिये कि चाहे वेदोंको मानता हो वा नहीं मानता हो यदि कोई इस प्राचीन आर्यावर्तमें उत्पन्न हुए किसी भी धर्मको मानता[2] है तो निश्चयही वह प्राचीन भाषामें आर्य है और आजकलकी भाषामें हिन्दू है।

अब जरा जैनबन्धुओंका भ्रम भी तो निवारण होना चाहिये। जैन ग्रंथोंमें भी इस देशका नाम आर्यावर्त, देशवासियोंका नाम आर्य, श्रेष्ठ महिलाओंका नाम आर्या पाया जाता है। तो निस्सन्देह जैनी आर्य सन्तान है। यदि किन्ही कारणों से संसार में "आर्य" शब्द का स्थान "हिन्दू" शब्दका ग्रहण कर-

---

१ किसी किसी ऐतिहासिकके मतसे 'हिन्दु' 'सिन्धु' शब्दसे निकलता है यवन भाषामें 'स' का उच्चारण 'ह' किया जाता है। सिन्धुनदी के कारण यह नाम पड़ा हो।

२ चीनी जपानी यहां पैदा हुए बौद्ध धर्मको मानते हैं परन्तु वे आर्यावर्तको मातृभूमि नहीं मानते इस लिये हिन्दू नहीं है।

ले तो जैनियों को हिन्दू कहलाये जाने में उज्र ही क्या हो सकता है। कारण कि इसमें उनकी हानि किंचित भी नहीं है। किन्तु महान लाभ यह है कि हम उस अखिल हिन्दू जाति के अँग हो जाते हैं जिसमें वैदिक, बौद्ध, जैन, सिक्ख सभी सम्मिलित हैं, और जिनकी संख्या भारत में इतनी बृहद (बड़ी) है कि उसके मुकाबिले में अन्य किसी जातिकी नहीं है। इतने विशाल वृक्षकी छत्र छाया को त्यागना कहां की बुद्धिमानी[१] है ?

ओसवाल जाति का वर्ण।

ओसवाल जाति के वर्ण के विषय में भी विचार किया जाना आवश्यक है क्योंकि कभी तो कोई इसको क्षत्रिय कहते हैं, तो कभी कोई इसको वैश्य कहते हैं। क्षत्रिय है तो किन कारणों से और वैश्य है तो किन कारणों से ? यह भी विचारणीय विषय है।

इस देश में प्राचीन काल से चार वर्ण चले आते हैं। जो लोग स्वयंशिक्षित होकर जनता को शिक्षा देनेका धंधा वंश परम्परा से करते थे वे ब्राह्मण कहे जाते थे। जनता की जान, मालकी रक्षा देश के बाहरी शत्रुओं से तथा भीतरी चोरों, डाकुओं तथा दुष्टों से जो लोग वंश परम्परा से करते आते थे वे क्षत्रिय कहे जाते थे। आवश्यक व्यवहार की सामग्री को देश की जनता में पहुँचा कर,

---

१ जैनी लोग जाति से हिन्दू हैं परन्तु उनका धर्म वैदिक धर्म की शाखा नहीं है। परन्तु एक जाति वाले दो धर्मोंको माने तो यह उचित नहीं है कि वे जातियाँ भी दो बना ले। इसलिये स्वतंत्र धर्मी होने पर भी जैनियों को हिन्दू मानने में कुछ आपत्ति न होना चाहिये।

देश की अनुपयोगी सामग्री को देश के बाहर पहुँचा कर और अपनी बुद्धि के बल से देश की आर्थिक संकट से सदा रक्षा कर अपनी वंश परम्परा से वाणिज्य व्यवसाय करनेवाले वैश्य कहे जाते थे, और विविध प्रकार के हुन्नर, उद्योग, कृषि, मज़दुरी करनेवाले शूद्र कहे जाते थे। प्रत्येक व्यवसाय में आध्यात्मिक प्रभाव के कारण ब्राह्मणों में आत्मज्ञान, क्षत्रियों में आत्मशौर्य, वैश्यो में विनय और उदारता और शूद्रों में सेवा भाव था। इस प्रकार जनता कर्तव्य शील रह कर सुखमय जीवन व्यतीत करती थी. किन्तु कितने ही कारणों से जब परिस्थिति का मुख अवनती की ओर मुड़ गया तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य रूप त्रिवर्ग में अभिमान ने प्रवेश कर लिया। शूद्र दास समझे जाने लगे जो अपने परिश्रम से, कष्ट सहन से और विनय से उनको अन्न तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुएँ उत्पन्न करके देते थे। स्त्रियां दासी समझी जाने लगी जो अपने पति को आराध्य देव के समान पूज्य मानती थीं।

इन दोषों से जैनी भी अछूते नहीं रहे। यद्यपि कुछ विद्वानोंने वतलाया कि " अपने धर्मशास्त्रानुसार किसी को भी नीचा समझना भविष्य में अपने लिये नीचा समझा जाने का बीज बोना है। " तथापि देश की अधिकांश जनता के रुख के साथ जैन समाज का भी रुख हो गया और ये भाव जैनोंमें भी प्रबल होते गये।

श्रीमान् रत्न प्रभुसूरिजी महाराजने जैन धर्मकी वृद्धि का जो आन्दोलन आरंभ किया था और ओसवाल जाति स्थापित की थी उसमें विशेष प्रयास क्षत्रियों में ही किया गया था जिसमें निम्न लिखित हेतु थे:—

१—शूद्रोंमें प्रयास किये जानेमें लौकिक निन्दा की महान् आशंका थी जिससे आन्दोलन को असफलता प्राप्ति संभव थी।

२—क्षत्रियों के शौर्यगुण से आन्दोलन में विशेष लाभ पहुँचने की संभावना थी। जैन तीर्थों की रक्षा के निमित्त शौर्यकी ज़रूरत थी।

३—ब्राह्मण तर्क अधिक करते थे। वैश्य अर्थ (द्रव्य) लाभमें ही रुचि रखते थे इस कारण ये दोनों ही उपयोगी नहीं थे।

४—जैनधर्म अहिंसा को केवल सिद्धान्तिक ही नहीं व्यवहारिक महत्व भी देता है। "क्षमा वीरस्य भूषणम्"—क्षमा अहिंसा इत्यादिमें जिस वीरता की आवश्यकता है वह क्षत्रियोंमें ही मिल सकती है। अहिंसा को सत्य स्वरूपमें महान् शौर्यवान् वीर ही पालन कर सकते है, कायर लोग नहीं। इस कारण भी क्षत्रिय ही उपयोगी थे।

५—महान् अधिकार तथा संपत्ति तथा प्रभाव के स्वामी भी क्षत्रिय थे जिसका लाभ उस आन्दोलन को अच्छा प्राप्त हो सकता था। यद्यपि इस जैन समाज में शासक वर्ग, अधिकारी वग तथा संपत्तिशाली वर्ग की वृद्धि हो सकती थी और जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ सकता था।

लेकिन द्वार किसी के लिये भी वन्द नहीं रखा गया था, चाहे प्रयास अन्य वणा में नहीं किया जाता था तथापि ऐसे वृहद् आन्दोलन के प्रभाव से अन्य वर्णों पर भी असर पड़े वगैर कैसे रह सकता था। फल स्वरूप ब्राह्मण तथा वैश्य भी

अल्प संख्यामें इस संगठन में सम्मिलित हुवे। शूद्रों को तो उस परिस्थिति में ऐसा सौभाग्य प्राप्त होना असंभव ही था। उनमें से तो किसी को ऐसी इच्छा करने का साहस होना ही कठिन था। यदि कहीं हुवा भी हो तो अपवाद रूप समझिये। इस प्रकार अधिकतर क्षत्रिय वर्ण के लोगोंने ही इस ओसवाल जाति के रूप को ग्रहण किया और कुछ ब्राह्मण तथा वैश्यों ने ग्रहण किया। इन कारणों से यही कहना पड़ता है कि यदि वर्ण जन्म से माना जावे तो ओसवाल जाति "क्षत्रिय" है, क्योंकि वह क्षत्रियों की सन्तान है।

किन्तु कितनेही महाशय यह भी कहते हैं कि वर्तमान काल में ओसवाल सज्जनों की मानसिक परिस्थिति देखते हुवे तो उन्हे क्षत्रिय कहते हुवे हीचकिचाहट होती है और उन्हें वैश्य वर्ण के मानने में ही बुद्धि स्वीकृति देती है। उन महाशयों की सेवा में यह निवेदन है कि वर्तमान ओसवालों की मानसिक परिस्थिति में निस्सन्देह वैश्यत्व की झलक अवश्य नजर पड़ती है जिसका कारण यह है कि जब से विदेशी शासन इस देश में हुवा और फलतः राज प्रणाली में विदेशियों द्वारा शासित देश विभाग में तथा देशी राजाओं के राज्योंमें भी महान् परिवर्तन हुआ और ओसवाल जाति को राज कर्मचारी रहने के व्यवसाय से हाथ धोना पड़ा और व्यापार का व्यवसाय ग्रहण करना पड़ा तब ही से इनमें वैश्यों की संगति से तथा व्यापारी प्रकृति से वैश्यों के संस्कार उत्पन्न होने लग गये हैं। इन कारणों से यदि कर्म से वर्ण माना जावे और ओसवाल जाति को वैश्य कहा जावे तो भी असत्य नहीं है। क्योंकि वर्ण जन्मसे मान्य हो तो ओसवाल जाति निःसन्देह क्षत्रिय जाति है। और यदि कर्म (वर्तमान धंधा) से मान्य हो तो वैश्य अवश्य है।

कितनेही सज्जनोंका यह भी कथन हैं कि जवसे जैन धर्म ग्रहण कर क्षत्रियसे ओसवाल हुवे तवसे हमको क्षत्रियत्व त्याग कर देना पड़ा क्योंकि क्षत्रियत्वमें हिंसा कृत्य अधिक करने पड़ते हैं और जैन धर्म हिंसा करनेकी इजाजत नहीं देता। इसलिये व्यापारमें प्रवृत्त हो जाना पड़ा और क्षत्रियसे वैश्य वन जाना पड़ा। उक्त विचार लेखककी समझमें अत्यन्त भ्रम परिपूर्ण हैं क्योंकि—

१—जैन धर्म अहिंसाको व्यवहारमें रखनेके निमित्त अवश्य जोर देता है। परन्तु गृहस्थोंको हिंसासे पूर्णतया पृथक रहनेपर जोर नहीं देता।

२—प्राचीन कालमें भी जैन धर्मके अधिकतर अनुयायी क्षत्रिय ही थे। जैन शास्त्रानुसार केवल क्षत्रिय कुलमें ही जैन धर्मके सव श्रेष्ठ उद्धारक, परमपूज्य तीर्थंकर प्रभु जन्म लेते हैं और जैन धर्मके जो महान् अन्य प्रसिद्ध प्रचारक हुवे हैं वे भी क्षत्रिय ही थे।

३—जनताके लिये आवस्यक देखकर जैन धर्मके मूल संस्थापक प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेवजीनें स्वयं असि (शस्त्र-विद्या), मसि (साहित्य) और कृषि (खेती) की शिक्षा जगत्को दी थी जव कि वे राज्य अवस्थामें थे। उनके गृहस्थ त्यागके पश्चात् उनके पुत्र भरत और वाहूवलमें वड़ा भारी युद्ध हुवा है। उन दोनों का मोक्ष भी उसी भव में हुवा है। इनसे आतिरिक्त अगणित क्षत्रियोंका इतिहास जैन धर्ममें मिलता है जिन्होंने जैन धर्म के उत्कृष्ट

श्रावक होते हुवे, बारह व्रतधारी होते हुवे स्वदेश, स्वजाति और स्वधर्मकी रक्षार्थ युद्ध किये हैं। वरणाग नायक जैन क्षत्रिय ६ उपवास का पारणा करनेके दिवस दो उपवास और पचखकर (निश्चित् कर) युद्धका बिगुल सुनकर स्वदेश रक्षाके निमित्त युद्धके लिये चला गया। वहाँ वीर गतिको प्राप्त हुवा, और (शास्त्रकारोंके मतानुसार) देव लोकको गया। महावीर भगवान्‌के भक्त राजा चेडाने राजा कुणिकके साथ १२ युद्ध किये थे। वरणाग और चेडा दोनों ही १२ व्रतधारी श्रावक थे।

४—वर्तमान ऐतिहासिक कालमें भी अहिंसा धर्मके उपासक और प्रचारक नृपति मौर्य, सम्राट, चंद्रगुप्त, और अशोक हुए हैं तथा दक्षिणमें कदंब, पल्लव और चौलुक्य वंशोंके कितने ही राजा हुवे हैं। चक्रवर्ती सम्राट श्री हर्ष हुवा है, दक्षिणका राष्ट्रकूटवंशीय नृपति अमोघ वर्ष हुवा है और चालुक्य वंशीय महाराजा कुमारपाल गुजरातके राजा तो अभी बारवीं शताब्दीमें ही हुए हैं। इनके राजकालमें भारत जिस अभ्युदयके शिखरपर था उनके राजत्व कालमें प्रजामें जो सुख, शान्ति और शौर्य था वह अन्य शासकोंके कालमें क्या उपस्थित है? अहिंसा धर्मके अनुयायी दंड नायक, विमलशाह, मंत्री मुंजाल, मंत्री शान्तु, महामात्य उदयन और वाहड, वस्तुपाल और तेजपाल, आयु और जगडू, ईत्यादि जैन राजद्वारी पुरुषोंका जो स्थान गुजरातके इतिहासमें प्राप्त है क्या औरोंको है?

वास्तवमें बात यह है कि अहिंसाके उपासकको न तो क्षत्रियत्वके त्याग करदेने की जरूरत है और न व्यापारी बन जानेकी जरूरत है, किन्तु उसको तो विवेक धारण करनेकी अवश्य जरूरत है जिससे हिंसा कममें कम हो, हिंसाके पापसे पश्चात्ताप द्वारा छुटकारा हो। इस प्रकार अपना जीवन कर्त्तव्यशील व्यतीत हो। इसी प्रकार जो महाशय यह आक्षेप करते हैं कि जैन धर्म की अहिंसा के प्रताप से कायरता फैल गई है उनको भी उपरोक्त प्रमाणों से पता लग गया होगा कि अहिंसा के उपासकोंनें अपने शौर्य से, अपनी वीरता से देश की आन्तरिक और बाहरी रक्षा अन्य शासकों की अपेक्षा अधिक योग्यतापूर्वक की है तब अहिंसा पर कायरता का दोष कदापि नहीं लगाया जा सकता।

कितने ही महाशय ओसवाल जातिको वर्ण संकरता का भी दोष दिया करते हैं। कारण कि कितने ही हमारी जाति के भाई ही कह बैठते हैं कि ओसिया नगर को सारे के सारे को ओसवाल बना दिया गया। तब कितने ही आक्षेप कर्ताओं को मौका हाथ आ जाता है और वे आक्षेप करते हैं कि ओसिया नगर के सब मनुष्य जब ओसवाल बन गये तो उनमें सब ही जातियाँ और वर्ण ओसवाल हो गये और जब सब में आपस में रोटी और बेटी का व्यवहार आरम्भ हो गया तब उनकी सन्तान को वर्ण संकर ही क्यों न मानना चाहिये ?

प्रथम तो सारा ओसिया नगर ओसवाल बन जानेकी बात बिलकुल असत्य है। इसके विषय में कोई प्रमाण नहीं मिलते। जो प्रमाण मिलते हैं उससे यही सिद्ध होता है कि वहाँ के राजा

तथा क्षत्रिय कुटुम्बों को ही ओसवाल बनाया गया। सारी नगरी को ओसवाल बनाने की बात एक मौखिक किंवदंती के सिवाय और कुछ नहीं है। इसके अतिरिक्त यदि यह कहा जावे कि क्षत्रियों के साथ जो अल्प संख्या में ओसवाल हुवे, ब्राह्मण और वैश्यों का विवाह सम्बन्ध हुवा इस कारण उनकी सन्तति वर्णसंकर क्यों न कही जावे ? तो यह भी आक्षेप सर्वथा मिथ्या है। क्योंकि प्रत्येक धर्म और संप्रदाय के प्राचीन ग्रंथों से यह सिद्ध है कि प्राचीन काल में सब वर्णों में आपस में लग्न सम्बन्ध था। वे विवाह असवर्ण विवाह कहे जाते थे। वर्तमान राज नियमानुसार हिन्दू मनुष्य यदि असवर्ण विवाह करे तो उसकी सन्तान उसकी संपत्ति की अधिकारी हो जाती है। क्योंकि ऐसा विवाह धर्म के प्रतिकुल नहीं है। तब केवल जैनी बने हुवे ओसवालों पर यह आक्षेप सर्वथा असत्य और अन्याय है।

प्राचीन काल में वर कन्या का चुनाव परस्पर स्वेच्छा होता था। इस कारण योग्यता का अधिक विचार रहता था। समवर्ण वा असवर्णका गौण। अलबत्ता कुछ प्रतिबन्ध भी था। ब्राह्मण अन्य वर्ण को कन्या न देता था। क्षत्रिय अपनी कन्या वैश्य और शूद्र को न देता था। वैश्य अपनी कन्या शूद्र को न देता था। इस प्रकार ब्राह्मण सब वर्णों से, क्षत्रिय क्षत्रियों, वैश्यों, और शूद्रों से, वैश्य, वैश्यों और शूद्रों से और शूद्र शूद्रोंसे ही कन्या ले सकते थे।

ओसवाल जाति उन्नतिके शिखरपर।

जब किसी गिरे, पड़े, टूटे, फूटे प्राचीन खण्डहर को बिखरे हुवे कंकरों टुटे, फूटे, बेडोल पत्थरों और गिरी पड़ी शिलाओंके रूपमें

हम देखते हैं तो वह हमको अत्यन्त शून्य भद्दा, और भयानकसा लगता है, किन्तु जब कोई चतुर कारीगर उसमें से उपयोगी पत्थरों को चुनाई के लिये, शिलाओंको छतों के लिये और शेष छोटे, बड़े पत्थरों को और कंकरों को तोड़ कर और पका कर, चूना और कली तैयार करने के लिये अलग अलग छांट लेता है और अनुपयोगी शेष मलवे को किसी शून्य स्थानमें भर देता है तथा अपनी कुशलता से और अपने परिश्रम से उसी सामग्री से उस भयानक खण्डहर को एक रमणीक भवन के रूपमें बदल देता है तो वही अनुपयोगी सामग्री सुखदाई और दर्शनीय वस्तु बन जाती है।

इसी प्रकार जब कि भारत वर्ष अपने उन्नति और ऐश्वर्य के दिवस समाप्त कर चुका था, जब कि प्रजारक्षक ही प्रजाभक्षक होते जा रहे थे, प्रजारक्षक इतने प्रमादी हो गये थे कि प्रजा के अभ्युदय की ओर ध्यान देने के बजाय पशु हत्या करना, मांसाहार करना, मदिरापान करना, बहु विवाह करना, कामतृप्ति के लिये रखेल स्त्रिये रखना, जिनके साथ कामभोगमें मग्न रहना इत्यादि कर्म ही उनकी रात्रि दिवस चर्या हो गई थी। जब की क्षत्रियेंमें पशुहत्या करने की और देवी देवताओंको बलि चढ़ाने की तथा इस प्रकार देवी देवताओंको प्रसन्न करके उनसे सहायता माँगने की तथा उन देवी देवताओंकी सहायता के भरोसे लूट मार करने की जो अज्ञानता फैल रही थी, जिसके कारण प्रजामें विविध प्रकार के कष्ट बढ़ते जा रहे थे, तथा जैन समाज की जो अत्यल्प संख्या रह गई थी और अव्यवस्था भी अत्यन्त बढ़ गई थी। उस खेदजनक स्थिति को निर्मूल्य करने के निमित्त श्रीमान् जैनाचार्य श्री रत्नप्रभुसूरिजी महाराजने पूर्ण

आत्मबल के साथ जो प्रयत्न किया था और ओसवाल जाति की स्थापना कर शुद्धि और संगठन का जो बिगुल बजाया था, उसके फलस्वरूप अहिंसा का प्रचार हुवा, दुर्व्यसन हटने लगे, सदाचार बढ़ने लगा और नीतिमय जीवन फैलने लगा।

जैनाचार्योंके प्रयत्न से इन नवीन समाज में वे गुण उत्पन्न हुवे कि जिनसे उनका स्वयंका तथा जनता का लाभ होने लगा। अब तो इनकी सारी चर्या ही बदल गई। प्रातःकाल शीघ्र जाग जाना; देव (परमात्मा), गुरू और धर्म का स्मरण करना, शौचादिसे निवृत्त होकर पूजा, पाठ, ध्यान, स्वाध्यादि करना, गुरूमहाराज के पास जाकर धर्मोपदेश सुनना, इच्छानुसार व्रत अंगीकार करना और ज्ञानाभ्यास करना, पश्चात् गुणी पुरुषों का तथा दीन दुखी जनों का यथाशक्ति सत्कार करना, पश्चात् निरामिष शुद्ध, सात्विक, सादा, भोजन करना, पश्चात् अपने व्यवसाय (धंधा) पर जाकर नीतिपूर्वक धनोपार्जन करना, पश्चात् गृह को वापस आकर रात्रि होने के पूर्व ही भोजन पान से निवृत्त हो जाना, पुनः संध्या को बैठ कर दिवस भर में किये हुवे कर्तव्य विरुद्ध कार्यों के निमित्त पश्चात्ताप प्रगट करना तथा भविष्य में विवेक रखने का निश्चय करना; तत्पश्चात् या तो बालक बालिकाओं को सुशिक्षा देने में अथवा मित्रवर्ग या मोहल्लेवालों से सद्वार्ता करने में या आत्मध्यान करने में कुछ समय लगा कर शयन (सोने) के लिये चला जाना और पुनः प्रातःकाल शीघ्र जागकर उसी प्रकार दिनचर्या प्रारंभ कर देना।

इनका व्यवसाय (धन्धा) प्रायः राज्यों में छोटे से लेकर बड़े बड़े पदोंपर नौकरी ही रहता था। साथ ही में अपनी कृषि भी

आवश्यकतानुसार करा लेते थे। तथा यदि द्रव्य पासमें अधिक हुवा तो उसको किसी की आवश्यकतापूर्ति में ऋण देकर व्याज भी उपार्जन कर लिया करते थे, परन्तु मूल व्यवसाय तो राज्यों में नौकरी ही था। इन्होंने स्वामीभक्ति और आज्ञापालन में वह नाम पाया कि प्रत्येक पदपर, क्या छोटेपर और क्या बड़ेपर, राजा लोग इन्हीं को रखना पसन्द करते थे। यदि अपने नगर में नहीं मिलते तो अन्य नगरों से अधिक वेतन देकर ये बुलाये जाकर रखे जाते थे, क्योंकि इन जैसे गुणवान् अन्य लोगोंमें नहीं मिलते थे। इसके अतिरिक्त चाहे कलम का काम हो वा तलवार का काम हो, दोनों में ओसवाल लोग कुशल होते थे; चाहे हिसाब के महकमें का काम दिया जावे, चाहे कानूनी बहसका काम दे दिया जावे, चाहे दोषी तलाश करनेका काम दे दिया जावे, चाहे दीवान के पद के लिये चाहिऐ, चाहे एक अहलमदी (कारकूनी Clerkship) के लिये चाहिये ओसवाल ही प्रत्येक प्रकार के कार्य के करने में कुशल पाये जाते थे। अपनी जिम्मेवारी को समझने में जो इन्होंने कौशल दिखलाया था वह कमाल था।

महाजन न भयो मंत्री (जब) राज गयो रावणको,
महाजन की सलाह बिन शिशुपाल नास्या है।
भयो थो भीखारी नल हरचंद में त्रिखो पड्यो,
महाजन वासिटी बिन कौरव कुल नास्यो है,
महाजन मुत्सद्धि बिन के ते राज्य बदल गये,
महाजन की बुद्धि बिन यादव कुल वास्यो है,
महाजन दिवान राणा महाराणा ज्यांके हृदय,
भयो भान (सूर्य) जाण कमल ज्यूं प्रकाशो है॥ १॥

महाजन जहाँ होत तहाँ हट्टी बजार सार,
महाजन जहाँ होत तहाँ नाज ब्याज गल्ला है,
महाजन जहाँ तहाँ लेन देन विधि व्यवहार,
महाजन जहाँ होत तहाँ सबही का भला है,
महाजन जहाँ होत तहाँ लाखनको फेरफार,
महाजन जहाँ होत तहाँ हल्लन पै हल्ला है,
महाजन जहाँ होत तहाँ लक्ष्मी प्रकाश करे,
महाजन नहीं होत तहाँ रहबो बिन सल्ला है ॥ २ ॥

कवि ने 'महाजन' की श्रेष्ठता सिद्धही कर दी तब हमें अधिक कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं, किन्तु प्रश्न यहां उपस्थित हो सकता है कि यह 'महाजन' कौन ? और कहांसे इस भूलोकपर आये ? इसका उत्तर देना अनुचित नहीं होगा । महा (बडे) जन अर्थात् बड़े जन, (बड़े लोग) 'बड़े' का अर्थ कोई धनबलादि नहीं है 'बड़े' का सच्चा अर्थ जिनका आचार श्रेष्ठ, उच्च वेही बड़े । इसलिए आचारश्रेष्ठको ही महाजन कहना होगा । अभी ओसवाल कितनी ही जगहोंपर महाजन के नाम से पुकारे जाते हैं ।

ओसवालों की वीरता के और बुद्धिमानी के इतने उदाहरण उस समय के इतिहासमें में तलाश करने से मिल सकते हैं कि जिनको लिखा जावे तो एक बडा भारी ग्रन्थ बन जावे, उनके लिये यहाँ तो स्थान ही नहीं हैं किन्तु एक दो उदाहरण जिक्र कर देने बगैर लेखनी आगे ही नहीं बढ़ती । इस कारण अत्यन्त संक्षिप्त में उनका वर्णन कर ही देता हूँ ।

मराठों के राज्य के पूर्व अजमेर में जोधपुर के महाराज साहिबका राज्य था और उनकी ओर से एक ओसवाल हाकिम नियत था जो वहाँ के शासन में सर्वोच्च स्थान पर था। इसको जब मालुम हुवा कि मराठा लोग अजमेर पर चल कर आनेवाले हैं और मेरे पास बहुत थोड़ी सेना है तो इसने जोधपुरको लिखा और सहायता चाही। वहाँ से उत्तर मिला कि हम सेना आदि सहायता भेजने में असमर्थ हैं क्योंकि कुछ तो बाहर गई हुई है और शेष जो है उसकी यहाँ के रक्षा के लिये भी हमें आवश्यकता है। यह उत्तर पाकर वह निराश होकर कहीं भाग नहीं गया किन्तु मराठों से अल्प सेना के साथ में लेकर ही लड़ा और वीरतापूर्वक लड़कर वीरगति को प्राप्त हुवा (मारा गया)। जरा उसकी मानसिक परिस्थितिका विचार करें। जब जोधपुर से ही असमर्थताका उत्तर मिल गया था तो यह मराठों से बगैर लड़े ही बगैर अपनी जान दिये ही, बगैर अपनी कुटुम्ब को अनाथ करे ही मराठों को अजमेर नगर सुपुर्द कर सकता था। इसमें महाराजा साहिब उनको क्या दोष दे सकते थे। किन्तु नहीं उसको तो दोष दिये न जाने का विचार कर अपनी जान बचाने की इच्छा न थी किन्तु उसको अपनी जिम्मेवारी का ख्याल था कि मेरे जीते जी, बगैर मेरे स्वामी की आज्ञा के इस जनता का शासन और कोई कैसे कर सकता है? यदि मैं जान बचा कर चल दूँ तो न केवल मुझपर किन्तु मेरी ओसवाल जाति पर भी क्या कलंक नहीं आवेगा? कि देखो वह ओसवाल जान बचा कर भाग गया। यह कौन जानेगा कि जोधपुर से वैसा उत्तर मिल जानेके कारण से ऐसा हुआ है। धन्य हो वह वीर धन्य हो।

महाराणा साहब प्रतापसिंहजी जब मेवाड़ खोकर जंगलों में कष्ट-मय जीवन बिता रहे थे उस समय भामाशाह ओसवालने ही अपनी सम्पत्ति लेजाकर महाराणाके नजर कर दी थी । ताकि उस अतुल सम्पत्ति के द्वारा वे मेवाड़ को पुनः प्राप्त कर सकें । क्या भामाशाह की स्वामीभक्ति, देशभक्ति और हिन्दुत्व सेवा की प्रशंसा लिखने की आज हममें से किसी में योग्यता है ? हम तो उसको केवल मेवाड़ के उद्धार कर्ता के नाम से उस स्वामिभक्त को याद मात्र कर सकते हैं।

उपरोक्त दोनों उदाहरण उस समय के हैं जब कि उन्नति सूर्य अपनी गति अस्ताचल की ओर प्रारम्भ कर चुका था । उस समय के उदाहरण जब कि उन्नति सूर्य पूर्ण ज्योति से अपनी कला चमका रहा था इतने बृहद है कि उनकी काया अत्यन्त स्थूल होने के कारण न तो इस निबन्ध की शक्ति उनका बोझ सहन करने योग्य है और न इस लेखक की शक्ति उनको उठा लाकर यहाँ रखने योग्य है ।

ओसवालों की उस समय की व्यक्तिगत और सामूहिक प्रत्येक प्रकारकी उन्नति का फल यह हुआ कि इनको अधिकाधिक वेतनपर राजा लोग बुला बुला कर रखने लगे । राजस्थान और मध्यभारतोंकी रियासतोंमें तो ये लोग छोटेसे मोटे पदोंपर थे ही, किन्तु उत्तरमें पंजाबमें, पूर्वमें अवध और बंगाल तक और दक्षिणमें गुजरात सेभी आगे तक विविध राज्योंमें इनको बुलाबुलाकर अच्छे अच्छे पद दिये गये । इनका चारों ओर यश इतना अधिक फैल जानेका एक कारण यह भी था कि जिस प्रकार ये स्वामिभक्त थे उसी प्रकार न्यायशील भी थे, विनयशील भी थे, उदार हृदयी भी थे । इस कारण

प्रजा सर्वत्र इनसे अत्यन्त प्रसन्न रहती थी, और इनकी न्यायशीलताकी छाप प्रजामें ऐसी जमी, कि इनकी कीर्ति आगेसे आगे बढ़ती चली जाती थी। प्रजा भी ओसवाल अधिकारी ही चाहे और राजा भी ओसवाल अधिकारी चाहे। फल यह हुआ था कि ओसवाल नौकरीकी तलाशमें घूमते शायदही कहीं पाये जा सकते थे।

नीतियुक्त द्रव्य उपार्जन (कमाई) करना, उत्तम उत्तम पदोंपर अच्छे अच्छे वेतन प्राप्त करना किन्तु अपनी रहनसहन सीधी सादी रखना इत्यादिका फल यह हुवा कि जिस प्रकार कीर्ति अधिकाधिक बाहर फैलती गई उसी प्रकार घरेंमें लक्ष्मी अधिकाधिक बढ़ती गई। उस बचत की रकम में से एक नियत भाग धर्मार्थ निकाल दिया जाता था। जिसका उपयोग दीन दुखियों के कष्ट दूर करने में, लोकोपयोगी कार्यों में, ज्ञान प्रचार में, गुणी पुरुषोंको भेट स्वरूप देनेमें, स्वजातीय बन्धुओं को विशेष लाभदायक कार्यों में अथवा आराध्य देवताओं के स्मारक स्थापित करने में व्यय किया जाता था।

उस समय की विदुषी धर्मोपदेशिकाओं ने ओसवाल स्त्रियोंके हृदय में धर्म के व्यावहारिक रूपके ऐसे बीज बोये हैं कि आज उनकी अशिक्षित अवस्था में भी उन बीजों के फल स्वरूप कुलीनता के गुण इतनी वंश परंपरा बीत जाने पर भी उज्वल रत्न की तरह चमक रहे हैं।

इस प्रकार ओसवाल जाति हरएक पेहलूमें उन्नतिके शिखर पर पहुँचने में ऐसी सफल हुई कि कितनी ही शताब्दियों तक इसके बराबर आ बैठनेका किसी अन्य जाति को हौंसला तक न हुआ और वह परिस्थिति तब तक कायम रही जब तक कि देश में सांप्रदायिक

भूत नहीं आधमका, तथा जब तक कि देशी राज्यों की परिस्थिति उत्तम वनी रही और यवनों का प्रवेश इस देश में शासक के बतौर न हुआ। धन्य! धन्य! वह समय और वह परिस्थिति।

अवनति की ओर।

ओसवाल जातिकी सुंदर उन्नतिमय स्थिति का सदा वैसाही वना रहना असंभव था। एवं शनैः शनैः ऐसे कारण उत्पन्न होते गये जिससे उसका मुख पलटकर अवनति की ओर होगया।

उस सुवर्णकालमें जिसमें यह जाति खूब फूली फली थी। प्रायः सब ही राजाओंकी मानसिक परिस्थिति भी उत्तम थी। वे गुणी पुरुषोंकी कदर करते थे, उनको योग्य पदाधिकार देते थे, चाहे वह उनके ही धर्म के अनुयायी हो अथवा अन्य किसी भी धर्म के अनुयायी हो।

जब श्रीमान शंकराचार्यने भारतवर्ष से बौद्धधर्मको मिटा देने के लिये तथा निज मत का प्रचार करने के उद्देश्य से देशभरमें एक बृहद् आन्दोलन किया और देशभरमें एक धार्मिक क्रांति उत्पन्न कर दी तो उसके फलस्वरूप राजाओंमें और प्रजाजनोंमें धार्मिक कट्टरता, पक्षपात और कलह बेतरह बढ़ गई। बौद्ध लोगोंको तो अनेकों को प्राणों से हाथ धोने पड़े, अनेकों को अपने पूर्वजों की पुण्य भूमिको त्याग कर भारतवर्ष से बाहर चला जाना पड़ा, और अनेकों को अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़े, किन्तु इस दुष्काल में जैनियों को भी अनेकों को अपने राज्यपदों से हटकर घर बैठ जाना पड़ा और अनेकों को जो साधारण मनोबलवाले थे जैन धर्म त्याग देना पड़ा और वेदान्तमत ग्रहण कर लेना पड़ा। राजाओं में जैन राजाओं की संख्या

अत्यन्त अल्प थी। अधिक तर राजा अजैन ही थे, इस कारण अधिक तर जाति को जैन धर्म पालन करना तब ही सम्भव ही था जब कि राज्यपदों को त्याग दे।

मनोबल हीन कुछ लोगोंने तो पद त्याग से भयभीत होकर जैन धर्मका त्याग कर दिया किन्तु अधिक तर लोगोंने अपने पदों से पृथक हो जाना स्वीकार कर लिया, किन्तु उन्होंने जैनधर्म को नहीं त्याग किया। अब तो ओसवाल राज्यपदों पर बहुत कम रह गये जिनमें कुछ तो वेदान्त मतानुयायी थे और कुछ वे जैन धर्मी थे जिनको कुछ वेदान्त मतानुयायी राजा लोगोंने उनकी पूर्व सेवाओंका स्मरण कर, उनकी योग्यताकी अनुपमता देखकर वा स्वयंमें पक्षपातका दोष नहीं आने देनेके उद्देशको दृष्टिमें रखकर विविध पदोंसे पृथक् नहीं किया। उक्त कारणोंसे जहाँ पहले ओसवाल जाति भरका प्रायः एक व्यवसाय राज्यकर्मचारिता थी अब दो व्यवसाय हो गये। दोही धर्म हो गये। अल्प भागका तो वही व्यवसाय (धंधा) रहा और अधिक भागको व्यापार व्यवसायमें प्रवृत्त होना पड़ा। इस व्यवसायमें भी उन्होंने सत्य और न्यायको लक्ष्में रखकर कार्य किया और ऐसे कौशलसे कार्य किया कि लक्ष्मी पहलेसे भी अधिक बढ़ने लगी।

यह उन धर्मोपदेशकोंका ही प्रताप था जिनकी उपदेश शैली ऐसी समयोचितथी जिसके प्रभावसे उन्होंने नौकरी और पदाधिके अधिकारोंको लात मार दी और ठुकरा दिया किन्तु अपने धर्मत्याग करनेको तैयार न हुए और उन धर्मोपदेशकोंकी उपदेश शैलीका विशेष गुण वह था जिसके कारण इस समाजने वैसे अवसरपर भी सत्य और न्यायको लक्ष्में रक्खा, जिसके प्रतापसे व्यापारमें भी अधिक लक्ष्मी प्राप्त करनेमें सफल हुई। किन्तु उस कालमें इस कथनपर किसीको

कठिनता से ही विश्वास होता होगा क्योंकि आज कल यह विश्वास फैला हुवा है कि सत्य और न्यायपूर्वक कार्य करनेसे कभी व्यापारमें सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। किन्तु कितने महाशयोंने सत्य और न्यायपर डटे रहकर, अन्त तक फल देखनेको लगे रहनेका श्रम किया है ?

श्री शंकराचार्यजी महाराजने धार्मिक क्षेत्रमें महान् उथल पुथल मचा दी तब जैन धर्माचारियों को तथा प्रत्येक धर्माध्यक्षों को अपने अपने धर्म (संप्रदाय) की रक्षा की चिन्ता उत्पन्न हो गई। उपदेश प्रणालीका रूख आक्षेपोंके उत्तर देनेकी ओर तथा अन्यकी त्रुटियां प्रदर्शित करनेकी ओर हो गया। परस्पर शास्त्रार्थ भी होते थे। सत्यसे वा असत्यसे, युक्तियोंसे वा कुयुक्तियोंसे प्रत्येक को अपनी विजय और विरोधीकी पराजय प्रगट करनेका प्रयत्न रहता था ताकि अपने मतानुयायी अन्य धर्म ग्रहण न कर लेवें और अन्य मतानुयायी अपनेमें आ मिलें। एक दूसरेको सच्चे झूटे हर प्रकार के दोष भी इसी उद्देश्य से दिये जाते थे ताकि जनता में किसी की कीर्ति वढ़ न जावे और वह अपने से अधिक सच्चा जनता में प्रगट नहीं होने पावे। इस सारी धार्मिक कलह का प्रारम्भिक कारण श्रीशंकराचार्यजी का आन्दोलन ही था। चाहे उनका यह कार्य किसी दृष्टि से निर्दोष ही हो, क्योंकि सब ही आचार्य अपने २ मतका प्रचार करनेका हक्क बराबर रखते हैं।

जैनाचार्योंने जो आन्दोलन ओसवाल बनाने का किया था इसके मूल में तथा साधनों में " सदाचार और सुनीति का प्रचार " था। जिसके कारण कोई भी धार्मिक कलह उत्पन्न होना असम्भव था और श्रीशंकराचार्यजी का आन्दोलन बौद्ध मतको भारतवर्ष में से लुप्त करके वैदिक मतका जोश कायम करने का प्रयत्न था, तथा इनको

साधनों की उचित वा अनुचित प्रणाली का कोई आग्रह न था। इन की ओरसे कितने ही कार्यकर्ताओंने जवर्दस्तियाँ भी की, किन्तु उन जैनाचार्यों के आन्दोलन में किसी प्रकार की जवर्दस्ती न थी, जिसका यह सुपरिणाम हुवा कि किसी प्रकार का कलह कदाग्रह नहीं फैला और उनका कार्य भी सिद्ध होगया।

जब श्रीशंकराचार्यजी के प्रारंभ किये हुवे उस आन्दोलनके कारण जैनाचार्योंको भी खंडनमंडनमें तथा सांप्रदायिक रक्षार्थ विविध प्रयत्नों में प्रवृत्त होना पड़ा उस समय इनको भी मंत्रविद्याको भी अपनाना पड़ा। कारण कि जिस तरह कोई कार्य यदि कितने ही मनुष्यों के वल से नहीं हो सकता है उसी कार्य को एक ही मनुष्य, यदि जानता हो तो किसी प्रकारकी कला से कर सकता है। उसी तरह जो कार्य अन्य प्रयत्नों से नहीं हो सके उसको मंत्रविद्या का प्रवीण पुरुष मंत्रशक्ति से अकेला कर सकता है। आत्मरक्षार्थ तथा निजसंख्या वृद्धि के निमित्त जब अन्य संप्रदायों ने उचित, अनुचित हर प्रकार के साधन उपयोग में लेना आरम्भ किया, तब इन जैनाचार्योंको भी मंत्रविद्या द्वारा अपने तीर्थों की, अधिकारों की, समुदाय की रक्षा करनी पड़ी थी। अपने गौरवकी रक्षा करनी पड़ी थी। और अपने समुदायका अस्तित्व कायम रखना पड़ा था। मंत्रशक्ति का उपयोग इन्होंने लाचार होकर और देश, काल की आवश्यकता को अनुभव करके किया था, क्योंकि अत्यन्त तेज धारवाली कटारी केवल निर्दो-षीकी रक्षार्थ ही उपयोग में ली जा सकती है और यही उसका सदु-पयोग है यदि उसको कोई तरकारी वधारने में वा कलम काढ़नेमें काममें लेवे तो वह कटारी शीघ्र खराव हो जायगी और उपयोग में लेने-

वाला भी चोट खाजावेगा । अस्तुः । उन आचार्योंने सामयिक आवश्यकता को देखकर ही मंत्रबल का उपयोग किया था, किन्तु उनके शिष्य प्रशिष्य गण जब पश्चात् साधारण कार्यों के लिये भी मंत्रादि का उपयोग करने लगे, तब मंत्र विद्याके चमत्कारके मोहमें ये ऐसे फँसे कि इनको चमत्कार दिखलाकर जनता में मान, गौरव, प्रतिष्ठा तथा राजाओं से अनेक प्रकार की सत्कार सामग्री प्राप्त करने की धुन लग गई । जनता पर भी प्रभाव कायम इसीसे रहने लगा । बीमार के लिये गुरुजी कुछ डोरा बना देंगे । निर्धन को भी कुछ ऐसा ही उपाय बता देंगे । संकट ग्रस्त का भी संकट निवारण कर देंगे । इसी आशा में इनकी कीर्ति और प्रतिष्ठा लोग करते थे ।

किन्तु कितने ही आचार्य, साधु आदि इन दोषों से बचे रहे । उन्होंने अधिक मान सन्मान का लालच नहीं किया । इनकी संख्या अल्प थी इस कारण इनको अपना पृथक संगठन करना पड़ा तथा अपने वेश में भी अल्प परिवर्तन भी करना पड़ा । ताकि उनकी जनता में पृथक पहिचान हो सके ।

इस तरह जैन उपदेशक वर्ग में कुछ तो मंत्र अभ्यास में मग्न हो गये तो कुछ वाद विवाद की निपुणता प्राप्ति में मग्न हो गये तो कुछ नगरादि में उपस्थित अनुचित परिस्थिति को विघ्नरूप देखकर आत्मोद्धार की साधना के लिये जँगलों में जा बसे । इन सबका फल यह हुआ कि जो समयोचित उपदेश का पवित्र स्रोत (धार) जैन समाज के हृदयस्थल को तर करता था उसी के अभाव में वह स्थल अब सूखने लगा ।

व्यापारमें प्रवृत्त हो जानेसे लक्ष्मी तो बढ़ती जा ही रही थी । उधरसे धर्मोपदेशको का भी जो सादी रहन सहन इत्यादिका उपदेश

था वह भी वन्द हो गया। दोनोंका फल यह हुवा कि ओसवाल समाज का लक्ष बदल कर अब शान शौकत की ओर बढ़ गया।

प्रथम तो अब समयोचित उपदेश ही दुष्प्राप्य था। द्वितीय उपदेशक वर्गमें भी विविध गच्छ तथा समुदाय हो जानेसे इनका अंकुश भी नहीं था। तृतीय उपदेशक वर्ग भी देखता था कि धनवान् लोग यदि हमारे भक्त होंगे तो हमारी प्रतिष्ठा भी जनतामें अधिक होगी इस कारण इनको अरोचक वात कहना वुद्धिमानीके विरुद्ध है इस तरह हमारी जातिके जीवनमेंसे शनैः शनैः सादगी लुप्त होने लगी और शानशौकत खूब बढ़ने लगी। इस शानशौकत की वृद्धिमें खूब चढ़ा ऊपरी होने लगी और अत्याधिक व्यय की रस्म रीतियां प्रचलित होने लगी। फलस्वरूप अब लोभ लालच भी खूब बढ़ने लगा। सत्य और नीतियुक्त द्रव्योपार्जन की शैली घटने लगी।

इस तरह जातिमें शानशौकत की क्षुधा, विलासिता, लोभ, अभिमान शनैः शनैः बढ़ने लगे और व्यापारमें जो स्थान अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त किया था वह हाथसे निकलने लगा और द्रव्य भी दिन प्रतिदिन कम होने लगा।

चाहे पूर्वजोंकी जायदाद (मकान) गेहन (Mortgage) रखना पड़े, चाहे सिरपर ऋण (कर्ज) लेना पड़े, चाहे प्रिय जन्मभूमिको त्याग कर जाना पड़े, तो कोई हर्ज नहीं किन्तु नित्यके सभी खर्च, वस्त्र, आभूषणादि, विवाह उपलक्ष्यके तथा मृत्युपश्चात् के भोज (जीमण) इत्यादि तो उसी शानके साथ होना चाहिये। इन विचारोंसे जाति को वह धक्का पहुँचा जिसके कारण जहां द्रव्यमें यह जाति सबसे आगे बढ़ी हुई थी वहां अब धनी लोग अल्प

संख्यामें रह गये। शेष साधारण गृहस्थ रह गये (तथापि उस समयकी आर्थिक स्थिति आज की स्थिति से कई दर्जे उत्तम थी)।'

राजाओंकी, धर्मोपदेशकोंकी तथा उच्च वर्ग कहे जानेवालोंकी परिस्थिति में जब उक्त प्रकार से पतन होने लगा तब देश में एकता, बल अधिकाधिक क्षीण होने लगा और उस अवसर से लाभ उठाकर यवन लोगोंने इस आर्यभूमि पर अधिकार करना आरम्भ कर दिया और शनैः शनैः प्रयत्न कर एक महान् शक्ति के रूप में इन्होंने यहाँ अपनी बादशाहत कायम कर दी और प्रजा के साथ तथा देशी राजाओं के साथ उन्होंने अनेक अनुचित व्यवहार किये। उन्होंने देशी राजाओं के अनेक अधिकारियों को अपने यहाँ बुलाकर उच्च पद दिये और उनसे भेद प्राप्त कर उन राजाओंपर विजय प्राप्त की, उनका सब कुछ छीन कर उनके प्राण लिये अथवा आधीनता स्वीकार करा कर उनसे कर तथा सेवा ली। उस गई बीती दशा में भी ओसवाल जातिने अपना मुख उज्ज्वल ही रखा। वे स्वामी के शत्रु से जाकर कभी नहीं मिले। उन्होंने प्रलोभनोंपर थूँक दिया। उन्होंने अपने स्वामी के साथ ही प्राण और सर्वस्व दिया किन्तु कभी ऐसा कार्य नहीं किया जिससे उनकी सन्तान को सिर नीचा करना पड़े। उन्हीं के बदौलत आज कितने ही देशी राज्य विद्यमान है। अपने स्वामीका राज्य छीन जाने और राजाकी मृत्यु हो जाने पर भी अपने स्वामी के शत्रु के पास जाकर किसी भी पद पर नियुक्त होना इन्होंने सदा पाप ही समझा। ऐसी दशा में इन्होंने छोटा या बड़ा व्यापार कर लिया अथवा बोहर गतका धंदा कर लिया और अपनी उदर पूर्तिकी।

द्वितीय कारण में बतलाये अनुसार एक ओर तो शान शौकत और मानमर्तबोंका भूत हमारी पूर्वजोंकी उत्पन्न की हुई संपत्ति को क्षीण कर रहा था। दूसरी ओर एक ऐसा कारण उत्पन्न हुवा जिससे हमारे हाथ से सब बड़े बड़े व्यापार भी शनैः शनैः निकलने लग गये।

जब यवन राज्य अपनी अन्तिम सीमा तक पहुँच गया और अत्याचारोंका घड़ा भर गया तो पंजाब के सिक्खों में और महाराष्ट्र के मराठों में ऐसी जागृति उत्पन्न हुई कि दोनों की प्रबल शक्तिसे उत्तर और दक्षिणमें दोनों ओर से घिर कर उस यवन राज्यका ऐसा पतन हुवा कि उस महान् शक्तिमान राज्यकी अवस्था अत्यन्त दीनसी हो गई जिसका एक कारण यवनोंमें (नवाबोंमें) बढ़ी हुई अत्यधिक विलासिता भी थी। इनकी विलासितासे लाभ उठा कर यूरोपियन (गोरे) व्यापारियोंने यहाँ आकर अपने पैर फैलाना शुरू किया, व्यापार की बड़ी बड़ी कोठियें कायम करने लगे, रक्षाके नामपर शस्त्र और सिपाही भी रखने लगे, ग्रामोंकी लगान वसूली के ठेके भी लेने लगे, ग्राम भी खरीदने लगे। इस प्रकार अपने पैर इन लोगोंने खूबही जमा लिये। अन्तमें यूरोपके आये हुये पृथक पृथक देश के व्यापारियोंमें आपसमें कुछ झगड़ा हुआ जिसमें इंग्लैंडके व्यापारी गण विजयी रहे। इस सम्पूर्ण सफलता का लाभ इन व्यापारियोंने इंग्लैंड़की ब्रिटिश गवर्नमेंट को अपनी कुछ स्वार्थपूर्ति करके दे दिया। अर्थात् इन लोगोंने राज्य की झंझट तो अंग्रेज सरकार के सुपुर्द की और व्यापार में सुविधा प्राप्ति बदले में ले ली।

यहाँ की प्रजा कहीं मराठों के अत्याचार से पीड़ित थी, तो कहीं राजपूतोंकी मूर्ख राजनीति से तथा निरंकुशता से पीड़ित थी

तो कहीं यवन नबाबोंकी विलासीता और अनीति से पीड़ित थी। कहीं राजाओंकी पारस्परिक कलह से प्रजा कष्ट भोग रही थी तो कहीं राजाओं के स्वार्थपरता के अतिरेक से प्रजा असन्तुष्ट थी। वैसे समय अंग्रेजोंका आगमन प्रजाको दैवी (ईश्वरीय) कृपासी प्रतीत हुई। इस लिये प्रजाने अनेक कष्ट सहन करके भी इनका राज्य बढ़वाने में मदद दी। जगत् सेठजीने भी नबाबों वगैरहों के विरुद्ध होकर के भी इनकी सहायताकी और पारितोषक स्वरूप अनेक अन्याय और अनीतियाँ इन्ही से सही है! इस विषय में हम उन्हें क्या कहें, कुछ समझ में नहीं आता।

अपनी कूट नीतिज्ञता से इन अंग्रेज शासकों ने देशभर में शनैः शनैः अपना अधिकार जमा लिया और सब उद्योग और व्यापारोंकी डोरें अपने हस्तगत इस प्रकार की हैं कि मलाई तो उनके देशवासी पावें और यहाँवालों के हाथ में शेष पानी समान दूध मिलता रहे।

इस प्रकार उपरोक्त कारणोंसे राज्यपदोंके हाथसे निकल जाने पर भी हमारे हाथमें जो व्यापार आये थे, वे भी केवल आढ़त दलाली आदि मजदूरी देनेवाले मात्र रह गये है। मूल लाभ तो प्राप्त होता नहीं केवल कृषकोंके, गरीबोंके, विधवाओं के, अनाथोंके, वृद्धाओंके और अपंगोके सहायक चरखा कताई के धंधे को नाश करा कर, इस देश के हुन्नरोंको नाश करवा कर, इस देशके कारीगरोंके पेट पर लात लगवा कर, उन गौरांग देशों के बनाये, देखनेमें सस्ते, चटक मटक के कोमल वस्त्रों तथा अन्य वस्तुओंको इस देश के कोने कोनेमें, ग्राम ग्राममें, और घर घरमें पहुँचा कर अपने देशवासियों का और अपना पतन करनेपर ही मजदूरी प्राप्त होती है।

हमारे हाथोंमें छोटी छोटी दूकानदारियां, छोटे छोटे व्यापार, वोहरगत या गुमास्तगिरी रह गई है जिसमें हमारे पेट का गुजारा चल जावे तो भी बस है। हम इतना द्रव्योपार्जन करनेमें असमर्थ हो रहे हैं कि जिससे संतान को उच्च शिक्षा दे सकें, पौष्टिक भोजन दे सकें, उत्तम वायुयुक्त मकानों में रह सकें और मानव जीवनोपयोगी वर्तमान युगके सब सुखसाधनोंको प्राप्त कर सकें।

हम क्या बतावे ? अनेकों दुर्गुणोंने समाज में प्रवेश कर देनेसे हमारा भयानक पतन हो रहा है फिर भी हम नहीं चेतते। छोटी से छोटी कहलानेवाली जातियाँ आज हमसे आगे हैं, फिर भी हमारे हृदय पर कुछ असर नहीं हो रहा है।

किन किन राजनैतिक, धार्मिक, व्यापारिक, आर्थिक, सार्वजनिक और व्यावहारिक कारणोंसे इस ओसवाल जातिकी प्रगति अवनति की ओर हुई। उनका किंचित् दिग्दर्शन पाठकों अब हो चुका होगा और वे यह भी जान गये होंगे कि केवल अपनी ही चिन्तासे काम नहीं चल सकता। हम जिस नौका (देश) में बैठे हैं उसके पार लगानेकी चिन्ता भी हमारा उतना ही बड़ा कर्तव्य है जितना अपने आपकी चिन्ता है।

विश्वभरकी जातियाँ सब बढ़ी आगे जा रहीं
देखकर पीछे तुम्हें उँगली उठा चेता रही।
कमर कसकर दौडो आकर साथ में मिल जाइये
शांतिदायक मृत्युकी या गोद में सो जाइये ॥

समाज के आगे अब एक ही प्रश्न है। समाज जीवन चाहता है या मृत्यु ? यदि जीवन चाहता है तो अपनी स्थितिका निरिक्षण करने का समय आगया है।

वर्तमान परिस्थिति।

निवास और संख्या

ओसवाल जातिकी प्रारंभिक जन्मभूमि आर्यावर्त में (जो आज कल हिन्दुस्थान कहा जाता है) राजस्थान प्रान्त में जोधपुर राज्य में ओसि-या—ग्राम है जो प्राचीन समय में जब की इस जाति की उत्पत्ति के समय एक बड़ा नगर था और जो समय के प्रभाव से अब चाहे एक ग्राम मात्र रह गया है । इस ग्रामकी तथा आसपास की भूमि [मरू धर देशमें होने के कारण] मरू भूमि कही जाती है, वहीं है।

'हम कौन थे क्या हो गये और क्या होंगे अभी
आवो विचारें आज मिलकर ये समस्यायें अभी।
यद्यपि हमें इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं
हम कौन थे इस ज्ञानको फिर भी अधूरा है नहीं ॥

हम समाज के बन्धुओंसे कहते हैं, बन्धुओं आओ, अपनी हाल-तका विचार करे, पापकी शुद्धि पश्चात्ताप के बाद फिर से वह पाप हमसे न हो ऐसी प्रतिज्ञा करके करना चाहिए, सुस्त बैठने से कुछ नहीं होगा, उत्थान के बाद पतन और पतन के बाद उत्थान होगा ही लेकिन वह उत्थान कोई हमको घर बैठे नहीं भेजेगा। वह तो हमे ही प्राप्त करना होगा। दिन के बाद रात्रि और रात्रि के बाद पुनः सूर्य प्रकाश, शुक्ल पक्ष के बाद कृष्ण पक्ष फिर पुनः शुक्ल पक्ष आने-वाला ही है। जो चढ़ेगा वह पड़ेगा और जो पड़ेगा वह कुछ दिन कष्ट भोगने पर पुनः चढ़ेगा।

'संसार में किसका समय, है एकसा रहता सदा।
है निशी दिवासी घूमती, सर्वत्र विपदा संपदा ॥'

अन्त में हम समाज से प्रार्थना करते हैं और ज़ोर से कहते हैं कि:—

'क्या पूर्वजोंका रक्त अब तेरी नसोंमें है कहीं?
सब लुप्त होता देख गौरव जोश जो खाता नहीं ॥
ठंडा हुआ उत्साह सारा आत्मबल जाता रहा।
उत्थानकी चर्चा नहीं अब पतनही भाता रहा ॥
वीरों उठो अब तो कुयशकी कालिमाको मेट दो।
निज देश को जीवन सहित तन मन तथा धन भेट दो ॥
ऐसा करो जिससे तुम्हारे देश का उद्धार हो।
निर्जर तुम्हारे जाति का बेड़ा विपदसे पार हो ॥
कौम बीमारे पड़ा है मौतके दिन गिन रहा।
इसको मित्रों कुछ दवा दारू खिलाते जाइये ॥
जिसके ऊपर वीर हा! कुर्बान लाखों हो गये।
कायरों मत इस तरह उसको डुबाते जाइये ॥
है अगर पुरूषार्थ कुछ है खून वीरोंका भरा।
देके जीवन दान तो इसको बचाते जाइये ॥

ओसवाल जातिका और मारवाड़का सम्बन्ध अत्यन्त गाढ़ है। और यह अत्यन्त हर्षका विषय है कि इस समय भी हमारी जितनी संख्या मारवाड़में निवास करती है उतनी संख्या हमारी किसी अन्य एक प्रदेश में नहीं। हमारी जितनी संख्या उस समय राजस्थानमें (राजपूताने में सन १९२१ की मनुष्य गणना में हमारी संख्या

१८०९५४ थी) उतनी हमारी संख्या अन्य किसी प्रान्तमें नहीं पा सकती। राजस्थानमें सब महाजन जातियोंमें सबसे अधिक संख्या ओसवाल जाति की है। और अजमेर मारवाड़ जिलेमें भी महाजन जातियों में सबसे अधिक संख्या ओसवालों की ही है।) निम्नलिखित कोष्टकों में अपना समाज कहाँ और कितना विस्त्रीत है स्पष्टतया बतलाया गया है—

१९२१ की मर्दुम शुमारी।

(श्री. प्रतापमलजी कोचरके निवंधसे उधृत)

हमारे ओसवाल समाजकी पृथक् मनुष्य गणना न होनेसे और यह समाज जैन समाज के अन्तर्गत ही होनेसे हम यह बतलानेका प्रयत्न करते हैं कि जैन समाजका ह्रास कितनाक हुआ है। जैन समाज के मुख्यतः दो भेद हैं। एक तो श्वेताम्बर दूसरा दिगम्बर। इनमें श्वेताम्बरोंमें भी बड़े दो भेद है, स्थानकवासी और देहरावासी, अर्थात मूर्तिपूजक। हमारे ओसवाल की संख्या इन श्वेताम्बर जैनमें बँटी हुई है। कुछ ओसवाल हमारी लापरवाहीसे वैष्णव तथा आर्य समाजी बन गये हैं। अस्तु। दुनिया भरमें जिस पवित्र अहिंसामय जैन धर्मानुयायोंकी संख्या पहले ५० करोड़ थी। पुराना काल जाने दीजिए। सम्राट अकबर के समय भारतवर्ष में ३ करोड़ जैन थे। आज क्या? कहते लज्जा आती है सिर्फ ११७८५९६ रह गई। संसार का सर्व श्रेष्ठ जैन समाज आज कहां है? संसार में आज जैनी किस हालत में है? हम प्रतिदिन २२ के हिसाब से घट रहे है! अगर यह सिलसिला ऐसा ही जारी रहा तो कुछ समय में भगवान महावीर के अनुयायीयोंका अस्तित्व रहना असंभव होगा। जिस जैन समाजके

पूर्वाचार्योंने[1] पुराने जमाने में प्रतिदिन अजैनोंके जैन बनानेका मानों वृत ले रक्खा था, आज उनकी सन्तान मुनि वर्ग समाज सुधार का नाम लेनेमें पाप समझती है। थोड़े समय पहले तक यह शुद्धि और संगठन का कार्य बड़े—जोरोंका चल रहा था लेकिन वर्तमान मुनियों की कर्तव्य च्युतता से आज क्या हो रहा है! जैनोंके अजैन प्रतिदिन हो रहे हैं। विना समाज के सुधरे धर्मोन्नति किस प्रकार हो सकती है? धर्म यह वस्तु है। समाज यह पात्र है। पात्रकी उत्तमता या मजबूतता के विना वस्तु कैसे रह सकती है?

समाजकी अनुकंपनीय हालत पर किसे दुःख नहीं होगा? ईसाईयों एवं आर्य समाजियोंने थोड़े समय में आश्चर्यकारक प्रगति कर बताई है प्राचीनताकी एवं अपने पूर्वजोंकी कीर्ति का कोरा घमंड

---

१ भगवान वीरके निर्वाण वाद लाखों अजैनोको ओसिया नगर में रत्न प्रभू सूरिजीने ओसवाल वनायें। विक्रम संवत की ८ वीं शताब्दिके लगभग हरिभद्र सूरिजीने पोरवाल ५४३ में जिनसेनाचार्यने खंडेलवाल, विक्रम संवत २१७ के लगभग लोहाचार्य नें अजैनोंको जैन वना कर अग्रवाल जाति—वनाई। संवत १५७५ तक अजैनोंके जैन वनाने का कार्य चलता था। आचार्य देवगुप्तसूरि, सिद्धसूरि, कक्कसूरि, देवसूरिजी ने विक्रम संवत ६८४ से तेहरवीं शताब्दी तक अनेक क्षत्रियोंको ओसवाल वनायें।

—जैन जाति निर्णय प्रथमांक।

"भारत में पहिले ४० करोड जैन थे। उसी मतसे निकल कर बहुत लोग दूसरे धर्म में जानेसे इनकी संख्या घट गई। यह धर्म वहुत प्राचीन हे। इस मतके नियम वहुत उत्तम है। इस मतसे देशका भारी लाभ पहुंचा है।"

करने वाली जैन जाति आज आलस्य में पड़ी है । १९२१ की भारत की मनुष्य गणना के अनुसार जैनी कहाँ है ? यह हम अंको सहित बतलाते है ।

हिन्दू २१६७३४५८६ (इसमें आर्य समाजी ४६८००० हैं)

मुसलमान ६८७३५२३३

वौद्ध ११५७१२६८

क्रिश्चियन ४७५४०६४

सिक्ख ३२३८८०३

जैन ११७८५१६

पारसी १०१६७८

ज्यू ६१७७८

ॲनिमिस्ट ९७७४६११

इस अंकोसे यह स्पष्ट हो जाता है कि १७५ हिन्दूओंमें १ जैन है । ६० मुसलमानोंमें, १० वौद्धोंमें, ४ ख्रिस्तानोंमें और लगभग ३ सिक्खों में एक जैन रह गया है । क्या यह वाटा ! थोड़े दिनों-मेंही जिनका निर्माण हुआ ऐसे आर्य समाजी ४॥ लाख, ईसाई ४७॥

---

१ जो जाति जिस समय अधोगति को प्राप्त होती है वह उस समय अपने काल्पनिक गौरव तथा झूटे घमंडों में मस्त रहती है, ऐसी जातियाँ की मुख्य पहिचान यह है कि—वह स्वयं कुछ न कर अपने पूर्वजोंकी करतूतोंपर अकड़ा करती है । नाहक शेखी मारती है ”

“ जो देश अथवा जाति संसार में उन्नत्तिशील देश वा जातियों के साथ नहीं चलती, जो हमेशा पुरानी लकीरको पीटा करती है उसका उत्थान असम्भव है । अतः अधःपान निश्चित है उसे संसार में जीवित रहनेका कोई अधिकार नहीं ” ।

—डार्विन ।

लाख इन दोनों को तो कुछ शताब्दीयाँ तक नहीं हुई, कुछ शताब्दीयों से बना हुआ सिक्ख समाज ३२ लाख! और जैनी सिर्फ ११॥ लाख, अत्यन्त लज्जाका विषय है। आर्य समाजी एवं ईसाइयोंकी जैनियोंकी तरह हजारों वर्षोंकी जायदाद नहीं है फिर भी इन समाजोंका प्रयत्न, उन्नतिकी हार्दिक इच्छा देखते थोड़े दिनोंमें अभूतपूर्य सफलता देख दाँतो अंगुली दबाये बिगर नहीं रहा जाती। हमारे समाजकी ओर दृष्टीपात् करनेसे ज्ञात होता है कि उसमें शिक्षा प्रचार धर्मप्रचार, अनाथालय, विधवाश्रम, जैसी संस्थायें अंगुलियोंपर गिने जानेसे ज्यादह नहीं होगी। पं० लालनने एक बम्बईके व्याख्यानमें कहा था कि—भगवान महावीरके भी ११ गणधर थे, क्राईस्ट के भी ११ शिष्य थे। लेकिन संसारमें जैनी मात्र ११॥ लाख और ईसाई ६० करोड़ कोई यह नहीं समझे कि ईसाइयोंमें कोई मतभेद नहीं है—

---

१ इस समय आर्यसमाजकी अधिनतामें शिक्षा प्रचारकी ५५० संस्थायें चल रही है। जिसमें ५८७९० विद्यार्थी विद्या पढ़ रहे हैं जो भविष्यमें आर्यसमाजकी संख्या बढ़ानेका प्रयत्न करेंगे। इस शिक्षा संस्थाओमें ३ हजारके लगभग अध्यापक हैं और प्रतिवर्ष २० लाखसे ज्यादह खर्च होता है। इन शिक्षाके अतिरिक्त अनेक अनाथालय, विधवालय, विधवाश्रम, आदि उत्तमोत्तम संस्थायें आर्य समाज चला रहा है।

इस समय ईसाइयोंकी भारतमें ९६७ सोसाइटियाँ हैं। ४३ निजके प्रेस, १०० के लगभग समाचारपत्र, ४४० अस्पताल, १४३ अनाथाश्रम १३७ धर्मप्रचारकी शिक्षा लेनेकी संस्थायें, तथा हजारों स्कूल कॉलेज शिक्षाप्रचारके लिए यह समाज चला रहा है। इनका धर्मग्रंथ (बायबल) अबतक कहा जाता है ८५० भाषामें छपा जाकर नाममात्रकी किमतपर बेचकर ईसाई धर्मप्रचारके लिए प्रयत्न किया जाता है। बायबलके इस प्रबंधसे प्रतिसप्ताह २००० नये ईसाई होते हैं।

२ संसार भरमें ईसाई ४० करोड़ हैं, बौद्ध ५० करोड़, मुसलमान ३० करोड़ हिन्दू २५ करोड़ और जैनी १२ लाख है।

यह सुनकर आश्चर्य होगा कि उनमें भी ९३० भेद हैं फिर भी उनका परस्पर कोई द्वेष नहीं है। ईसाई समाजमें भलेही द्वेष न हो पर जैन समाजके जो मत संप्रदाय भेद पंथादि है वे परस्परोंका आस्तित्व मिटाने में अपना बल नष्ट कर रहे हैं अस्तु। अब हमारी गत ३० वर्षोंकी हालत देखिए:—

सन	संख्या	घाटा
१८९१	१४१६६३८	....
१९०१	१३३४१४०	८२४९८
१९११	१२४८१८२	८५९५८
१९२१	११७८५९६	६९५८६
		२३८०४२

इस ३० वर्षोंकी घटती का विचार किया जाय तो यह स्पष्ट दिख रहा है कि प्रति वर्ष ७९३५ प्रतिमास ६६१ और प्रतिदिन २२$\frac{1}{30}$ इस हिसाबसे जैनी घट रहे हैं यह घाटा ऐसा ही चालू रहा तो सारी जातिको खत्तम होनेमें १४८॥ वर्ष लगेंगे। इसका अर्थ यह है कि यदि संख्या बढ़ाने का प्रयत्न नहीं हुआ तो जैन समाजकी परमायु १५० वर्षोंसे ज्यादह नहीं है। जैन समाज यदि शीघ्र नहीं चेता तो उनका भविष्य खतरेसे भरा है। १९११ की मनुष्य गणनानुसार जैन समाजमें ५५ उपजातियोंकी संख्या १०० से भी कम थी। समाजकी विचार संकीर्णताके कारण वैवाहिक क्षेत्रकी मर्यादा भी संकीर्ण हो गई। ऐसी हालतमें छोटी छोटी जातियाँ शीघ्रही अपना अस्तित्व खो देती है।

१९२१ की गणनाके अनुसार हमारे समाजकी संख्या ११७८५९६ थी उसमें पुरुष ६१०२७९, स्त्रियाँ ५६८३१७ है[1] इनमें:—

कँारे पुरुष ३०९३९५
कँारी स्त्रियाँ १८५५१४

१२३८८१

कँारे पुरुष और स्त्रियोंका विवाह होना मान लिया जाय तो १२३८८१ पुरुष सदाके लिए कँारे रह जाते है जिसमें विधूरोंकी संख्या ६१३७१ जोड़ दी जाय तो १८५२५२ यह संख्या समाजकी आवादी बढ़ने योग्य होकर भी, स्त्रीके अभावके कारण व्यर्थ अपना जीवन बीता रही है समाजपर व्यर्थ बोझा है। समाजकी निरर्थक संख्या इस प्रकार है:—

विधवाएँ १४३९९५ फालतू कुंवारे तथा विधूर $\frac{१८५२५२}{३२९२४७}$ अर्थात् १० जैनियोंमें ३ फालतू है।

११७८५९६ में से ३१९२४७ फालतू संख्या निकाली जाय तो ८५९३४९ रह जाती हैं।

---

१ भारतमें प्रति सहस्र पुरुषोंमें सन १९०१ में ९६३, सन १९११ में ९५४, सन १०२१ में ९४५ स्त्रियाँ हैं और जैन समाज में ९३१ हैं और इंग्लडमें प्रति सहस्र पुरुषोंके पीछे १०६८ स्त्रियोंका प्रमाण है।

१९२१ का जैन समाज ।

उम्र	कुल संख्या	पुरुष	स्त्रियां	क्वाँरे पुरुष	क्वाँरी स्त्रीयां
०—१	३३५३५	१७१०७	१६४२८	१७०६९	६३६२
१—२	१७१८१	८५०४	८६७७	८४५५	८६०८
२—३	२६१७४	१३०३९	१३१३५	१२९५७	१२९५६
३—४	२६९०१	१३०३०	१३८७१	१२८८६	१३६३६
४—५	२७२८४	१३५०४	१३७८०	१३२७९	१३३०७
५—१०	१४८६७३	७५५६८	७३१०५	७४४०२	६८५०२
१०—१५	१३८६९६	७५२४१	६३४५५	७०७०५	४३७०७
१५—२०	९७१४६	५२१००	४५०४६	३६३९३	४१७८
२०—२५	९९९६८	५०९४१	४९०२७	२१०१२	१३३२
२५—३०	१०३२२३	५५२७४	४७९४७	१४७६२	८९७
३०—३५	९९७४७	५१२७३	४८४७४	८८७७	५२७
३५—४०	७६९२०	४१६१३	३५३०७	५४७८	३७०
४०—४५	८०२६५	४०१७६	४००८९	४६१८	३८४
४५—५०	५०६९१	२७९५३	२२७३८	२५६८	१९६
५०—५५	५९०१७	२८९११	३०१०६	२५७७	१७९
५५—६०	२६१७८	१४५४७	११६३१	११११	९०
६०—६५	३७७३९	१७२६४	२०४७५	१२५३	१२१
६५—७०	११७९२	६१६९	५६०३	४३८	५०
७० से ऊपर	१७४६६	८०४५	९४२१	५५१	७२
कुल जोड	११७८५९६	६१०२७९	५६८३१७	३०९३९५	१८५५१४

प्रांतवार संख्या ।

विवाहित पुरुष	विवाहित स्त्रियां	विधुर	विधवायें
३५	५१	३	१५
४०	६५	९	४
७४	१५६	८	२३
१२९	२०९	१५	२६
२०२	३८३	२३	५१
१०२१	४१४५	१४५	४५८
४१७४	१८६१६	३६२	११३२
१४९७१	३८१८१	७३६	२६०७
२७९१७	४१९१४	२०१२	५७८१
३६६६३	३७६८१	३८४९	९३७१
३६९३२	३२७९१	५४६४	१०१५६
३०२३८	२०८९१	५८६७	१४०४६
२७७३५	१८५७९	७८२७	[illegible]११२६
१८५४८	९३४६	६८३७	१११९६
७०६२	८३४९	८७७२	२१५७८
८२४७	३००८	५१८१	८५३३
८८४९	२८००	७१६२	१७५५४
२९८४	८५३	२७६७	४७००
३१६२	७९१	४३३२	८५५८
२२९५१३	२३८८०८	६१३७१	१४३९९५

राजपुतांना एजन्सी	२७९७२२
अजमेर मेरवाड़ा	१८४२२
पंजाब देहली	४६०१९
हैद्राबाद ऐजन्सी	१८५८४
मैसुर ऐजन्सी	२०७३२
रियासत हैद्राबाद	४३२२३
अन्य रियासतें	२०२०
बम्बई प्रान्त	४८१६५०
युक्त ,,	६११११
मध्य ,,	८३३३७
मद्रास	२५४९३
C. P. बरार	६९७९४
बंगाल	१३३७६
आसाम	३५०३
बिहार उड़ीसा	४६१०
	११७८५९६

विवाहीत पुरुष	२२९५१३
विवाहीत स्त्रियां	२३८८०८
कौंरे पुरुष	३०९३९५
कौंरी स्त्रियां	१८५५१४
विधुर	६१३७१
विधवायें	१४३९९५
	११७८५९६

१ से १५ वर्षकी आयुवालों की हालतः—

ब्याहे पुरुष ५६७५, ब्याही स्त्रियाँ २३६२५ और विधवायें १७०९ तथा विधुर ५६६ हैं ५ से १० वर्ष तककी ४१४५ स्त्रियाँ ब्याही हुई हैं। एक वर्षकी उम्रकी १५, दो की ४ तथा तीन वर्षकी २३, चार वर्षकी २६ और ५ वर्षकी विधवायें ५१ समाजमें बैठी हैं। इससे पता चलता है कि जैन समाज में बालविवाह अबतक बहुत होते हैं। जैनियों की अधिक तादाद वाले राजपूताना और बम्बई प्रेसिडेन्सी में ही ५ वर्ष तककी ८६, दस वर्ष तककी ३१२ विधवायें बैठी हैं। समाज में जो अधिक आयुवाली विधवायें देखी जाती हैं उनमें प्रायः ऐसी ही बालपन में विधवा बनी हुई हैं। समाजमें इन विधवाओं को पुनर्विवाह की आज्ञा न होने से इन विधवाओं का समाज पर कोरा भार है। समाज में द्रव्य के लोभ से कुछ लोग लड़कियाँ अधिक बड़ी करके ब्याहते हैं।

१५ से २० वर्ष तककी कुँआरी लड़कियाँ ४१७८

२० से २५ ,, ,, ,, १३३२

इसके[1] आगे की आयुवाली कँवारी स्त्रियोंकी जो संख्या बतलाई गई है वह शरीरकी अपंग, व्यंगयुक्त, तथा साध्वी-आर्या बनी हुई है।

कँवारोंकी कुल संख्या ३०९३९५ है, उनमें से ३० वर्ष के कँवारोंका विवाह होने की आशा से (आशा हमें नहीं हैं) २८१९२० यह संख्या निकाल दी जाय तो भी कन्या विक्रय के कारण २७४७५ तीस वर्षकी उपर के कँवारे समाज में बैठे है। विधूरोंकी

---

१ जैन समाज में कुछ ऐसी छोटी छोटी अन्तर्जातियां है जिसमें योग्य वर के विना कन्यायें जीवन भर कँवारी रहती है।

कुल संख्या ६१३७१ है उनमें से ३० वर्ष के विधूरोंकी संख्या ७१६२ पुनः विवाह की आशा से निकालने पर ५४२०९ विधूरोंकी स्त्री मिलने की उम्मीद नहीं रही। वर्तमान स्थिति देखते ४० वर्ष से अधिक आयुवाले पुरुष को स्त्री ब्याहने की कोई आवश्यकता नहीं इसलिये हम ४० वर्ष तक के पुरुष और २० तक की स्त्रियों का विचार करते हैं।

४० वर्ष के क्वाँरे पुरुष	२९६२७५
,, विधूर ,,	१८४९३
	३१४७६८
२० वर्ष तककी काँरी स्त्रिया	१७१२५६
	१४२५१२

इतने पुरुष सच्चे हिसाब से देखा जाय तो समाज में स्त्री हीन जीवन व्यतीत करते हैं। यदि यह संख्या विवाहित होती और प्रति मनुष्य गणना तक ३—३ सन्तान उत्पन्न करती तो हर दश वर्ष में ४३०५३६ वढ़ जाती, यदि समाज में विधवा विवाह की आज्ञा होती तो ४० वर्ष तकको ४८६७० विधवायें और इतने ही क्वाँरों को वा विधूरों को स्त्रियाँ मिल जाती—

प्रान्तवार जैन समाजकी हालत।

प्रांत नाम	सन १९११	सन १९२१	कमी
राजपूताना एजन्सी	३३२३९७	२७९७२२	५२६७५
बम्बई प्रान्त	४८९९५२	४८१६५०	८३०२
युक्त प्रान्त	७५४२३	६११११	१४३१२
मध्य प्रान्त	८७४७१	८३३३७	४१३४
हैद्रावाद एजन्सी	२१०२६	१८५८४	२४४२
अजमेर मेरवाड़ा	२०३०२	१८४२२	१८८०
मद्रास	२६९९५	२५४९३	१५०२
पंजाब और देहली	४६७७५	४६०१९	७५६
हैद्राबाद रियासत	४३४६२	४३२२३	२३९
सी. पी. बरार	७०२५८	६९७९४	४६४
अन्य रियासतें	३४४३	२०२०	१४२३

प्रान्तवार जैन विधवायें । *

प्रान्तका नाम	संख्या	एक हजार स्त्रियोंमें प्रमाण ।
बम्बई प्रेसीडेन्सी सिन्धको एजेन्सी सहित	५६६३२	२४५
राजपूताना	४१४४९	२४६
मध्य प्रान्त बरार	७७६०	२३१
संयुक्त प्रान्त	६९५४	२२३
रियासत बड़ौदा	५७९४	२७०
,, मध्यभारत	४६०६	२५५
,, मैसूर	२३०२	२४५
अजमेर मेरवाड़ा	२४७०	२८८
रियासत हैदराबाद	१९०६	२१८
पंजाब	३५८१	१८७
बंगाल	५४९	१२३
मद्रास प्रेसीडेन्सी	३१५४	२६५
देहली	४२०	२०२
बिहार उड़ीसा	४७४	२३८
आसाम	७१	८६
कुर्ग	१७	१७५
ट्रावनकोर	५	१६५
बर्मा	१८	६७

* जाति प्रबोधक अंक १-२ वर्ष ६ परसे उद्धृत

बम्बई प्रेसीडेन्सी और राजपूतानेकी विधवायें ।

आयु	संख्या बम्बई	राजपूताना
०—५	५६	१०
५—१०	२२६	८६
१०—२०	१४७६	१०४५
२०—३०	५७९८	४६५३
३०—४०	११३४६	९२७६
४०—५०	१३०९०	९५५६
५०—६०	११९७८	८३५३
६० से उपर	१२७०४	७४७०

१९२१ में भारतवर्षमें प्रतिशत स्त्रियों पिछे विधवायें ।

आयु	हिन्दु	आर्यसमाज	ब्रह्मसमाजी	सिख	जैन
०—५	०—१	—	—	—	०—२
५—१०	०—६	०—२	—	०—१	०—६
१०—१५	२—०	१—१	१—८	०—३	१—८
१५—२०	४—८	४—२	४—८	१—४	४—२
२०—३०	१०—३	९—१	८—१	४—१	१२—६
३०—४०	२३—१	२०—९	१५—१	११—४	३४—८
४०—६०	५१—९	४४—३	३६—१	३४—७	६२—०
६०सेऊपर	८३—४	४—५	७४—८	७४—१	८६—७
	१९—१	१४—९	१२—८	१३—५	२५—५

१९२१ का राजपुताना *

सनातन धर्मी हिन्दू	८१६६५०१
आर्य समाजी	३१४३
जैन	२७९७२२ १९११ में जैनी ३२२२९७ थे। घटी $\frac{२७९७२२}{५२६७५}$
सिक्ख	८७०३
मुसलमान	९००३४१
ईसाई	४९११
अनेमिस्ट	४८०३७९
	९८४३७००

महाजनोंकी संख्या

जाति	कुलसंख्या	जैन धर्मी	हिन्दू धर्मी	आर्य समाजी
ओसवाल	१८०९५४	१७४८१८	६०९६	३७
पोरवाल	२९६३९	२६९५७	२६७१	०
श्रावगी	२८२९१	२७९०४	३७७	०
अग्रवाल	१६८१५६	९६३१	१५८३१४	२०१
खंडेलवाल	५००२२	५७६०	४४२६५	६
माहेश्वरी	६९०९४	२२१	६८८५०	२३
अन्य महाजन	७०२०५	३२९२३	३७१५५	१०३

* "ओसवाल" के श्री० गोपीचंदजी घाड़ीवालके लेख के आधार पर।

ओसवालोंकी संख्या १८०९५४

जोधपुर ८६३५५ उदयपुर ४७०१५ जयपुर ३६६५ सिरोही २९४२ बीकानेर २४५५१ टोंक २६३० किसनगढ़ १५७४ झालावाड १७३७ कोटा १४८६ प्रतापगढ १२५२ शेष अवर, भरतपुर, बुंदी, डूंगरपुरमें हैं।

राजपूतानेके जैन समाजकी घटी।

१९०१ ३४२५९५

१९११ ३३२३९७ २० वर्षमें घटी ६२८७३

१९२१ २७९७२२

महाजनोंकी घटी।

१९०१ ७५१६८१

१९११ ७०३२३८ घाटा १५९५२७ प्रतिदिन २२

१९२१ ५९२१५४ प्रतिमास ६६४ $\frac{८}{१२}$

१९११–२१ इस १० वर्षमें जैनियोंकी प्रतिशत घटी।

मारवाड २२ बिकानेर ५

मेवाड ५ सिरोही १२

जयपुर २३, अजमेर, मेरवाड़ा तथा अन्य रियासते ९

किसी भी दृष्टि से विचार किया जाय तो यह स्पष्ट है कि समाज में स्त्री हीनोंकी संख्या ज्यादह है इसलिये अनावश्यक वृद्ध विवाह तो शीघ्र बन्द होना चाहिये। अधिकांश लड़कियों को हड़पने वाले और विधवा बनाने वाले वृद्ध लोग ही हैं।

कॉंरोंको समाज में स्त्री नहीं मिलने से वे अन्य समाज में चले जाते हैं, वा अन्य जाति की स्त्री को रखेल बना घर में डाल लेते हैं।

समाज उन्हें जाति वाहर कर देते हैं। विधवायें जब गर्भ गिराती हैं, वालहत्यायें करती हैं उन्हें भी जाति वाहर किया जाता है (इन कारणों से भी समाजकी संख्या घट रही है)। यह संख्या रिपोर्ट वा गणना के समय माल्म नहीं होने से उनमें नहीं गिनी गई है नहीं तो इन क्वाँरों और विधवाओं की और भी अधिक संख्या हम देखते जैन समाजकी संख्या वड़ी तेजीसे घट रही है। १९११ में कहा जाता है खंडेलवाल १। लाख थे। वे १९२१ में केवल ६५ हजार रह गये। कहा जाता है अधिक संख्या खंडेलवाल ओसवालों में ही घटी हैं। जैन समाज के ११॥। लाख संख्या में दिगम्वर ४॥ लाख और श्वेताम्वर ७। लाख वतलाई जाती है। इनमें अधिकांश संख्या ओसवालों की है। राजपुताना एजेन्सी और वम्वई प्रेसिडेन्सी यही दो ओसवालों के केन्द्र हैं।

राजपुताना एजेन्सीमें २७९७२२ जैन हैं उसमें १८०९५४ ओसवाल हैं और इसी प्रमाण से वम्वई प्रेसिडेन्सी की संख्या मान ली जाय तो इन दो प्रान्तों के ओसवालों की संख्या ४ लाख होना सम्भव है इसमें गुजराथी काठियावाड़ी भाषा वोलनेवाले दस्से, विसे, पांचे, आदि सम्मिलित हैं। इसी लिये जैन समाजकी भवितव्यता का अधिक जिम्मेवार ओसवाल समाज ही है। इस समाज जैसा वड़ा समाज अभी जैन समाज में नहीं है। पूर्वोक्त अंकों के समाज उस ही प्रमाण में ओसवाल समाज में क्वाँरे, विधूर, और विधवायें है। ११॥। लाख जैनियों में, ६ लाख पुरुष और ५॥। लाख स्त्रियाँ हैं, जिस में विधवायें १॥ लाख हैं अर्थात् ४ पुरुषों के साथ अथवा ४ सधवा स्त्रियों के साथ एक विधवा है। ६ लाख पुरुषों में ३ लाख क्वाँरे हैं

अर्थात् दो पुरुषों में एक क्वाँरा है (इस में विधूर अलग है)। २। लाख विवाहित स्त्रियों में १॥ लाख विधवायें हैं अर्थात् १५ स्त्रियों में ९ सधवायें और ६ विधवायें यह प्रमाण है। यह सब स्थूल मानके अंक है। अधिक सूक्ष्म देखनेवाले के लिये पहिले ब्योरेवार वर्णन हो चुका है। जिस समाज में बाल, वृद्ध और बेजोड़ विवाह तथा कन्या विक्रय जैसी प्रथायें हो, विधवाओं के लिये पुनः विवाह की व्यवस्था न हो उस समाज की संख्या निःसंशय घटना चाहिये।

समाज की संख्या घटने के मुख्य कारण यह है कि दूसरे मार्ग से जो जैन समाज की संख्या बढ़ना चाहिये वह बढ़ती बन्द हो गई। अनाथालय, विधमाश्रम, अजैनों को जैन बनाना, अर्थात् शुद्धिसंगठन, अन्तर्जातीय विवाह इन मार्गों से भी संख्या बढ़ सकती है। समाज का बल अज़माने के लिये पहले संख्याबल देखा जाता है। जिस समाज की संख्या अधिक रहती है उनकी हानि कोई नहीं कर सकता। किन्तु अल्प संख्या के समाज सदा सताये जाते हैं, लूटे जाते हैं, धमकाये जाते हैं, उनका अस्तित्व सदा खतरे में रहता है, राजसत्ताका अधिकांश भाग बहुसंख्यांक समाजके ही हाथ रहता है। क्या ही अच्छा हो जैन समाज के लगभग ५००० साधु यदि निश्चय कर ले कि १–१ साधुने एक वर्ष में अधिक नहीं तो १० अजैनों को जैन बनाना (यदि साधु समाजने चाहा तो यह कार्य आसानी से हो सकता है) तो एक वर्ष में ५० हजार और १० वर्षों में ५ लाख जैनी बढ़ सकते हैं। साधु समाज़ इस संख्या के अतिरिक्त समाज में जो जो बुरी प्रथायें समाज की संख्या घटा रही है उनको नेस्तनाबूद करने का ज़ोर से प्रयत्न करे तो देखते देखते

हम बढ़ सकते हैं। श्रावक वर्गको अपनी सच्ची हालत देख कर झूठे गौरव को छोड़ कर अपनी निद्रा तोड़ना चाहिये। अब हम पुनः अधिक विवेचन के साथ समाज की संख्या क्यों घट रही है? इस पर विवेचन करते है:—

संगठन और शुद्धि का अभाव।

जैनधर्मके अनेक पंथ, साम्प्रदायोंसे जैन धर्मानुयायी घट रहे हैं इतना ही नहीं खास जैन भी अजैन हो रहे हैं। अनेकों पक्षों द्वारा परस्पर सहानुभूति शून्य व्यवहारसे यह पंथ परस्परको नाश करनेके कारणीभूत हो रहे है। जीना और जीलाना यह सिद्धान्त हमारे धर्मशास्त्रमें विशद रूपसे बतलाया गया है किन्तु व्यक्ति महात्मके आगे समाजमें ईर्ष्या और द्वेष खूब बढ़ गया इसलिये स्वयं जीना दूसरे को मारना ऐसा परिणाम हो रहा है। स्वयं मरना दूसरोंको मारना। वास्तविक देखा जाय तो एक ही पिताके पुत्र एक ही भगवान वीरके अनुयायी होकर थोड़ेसे मतभेदके कारण एक दूसरेको जानो दुश्मन क्यों बनना चाहिये? कांग्रेस जैसी बड़ी भारी, अनेक जातिवालोंकी, अनेक धर्मियोंकी, अनेक मतभेदवालोंकी सभामें अपने प्रामाणिक मतद्वारा एकत्र एक ही पंडालमें बैठकर विचार कर सकते हैं तो हमें एकसे दूर क्यों रहना चाहिए? अब हमें अलग रहना अच्छा नहीं, एकत्र रहना अनिवार्य होगा ऐसा समय आगया है। पुराने कालका इतिहास देखा जाय तो पूर्वाचार्योंने शुद्धि और संगठनका कार्य बड़े ज़ोरके साथ चलाया था। भगवान वीरके मोक्ष जाने बाद लगभग पहेली शताब्दीसे लेकर विक्रमकी १६ वीं शताब्दी तक बड़े ज़ोर से चल रहा था। रत्नप्रभुसूरि, लोहाचार्य, जिनसेनाचार्य, हरिभद्रसूरि

आदि अनेक महात्माओंने जैनेतरोंको जैन बना कर खूब संगठन किया था। विशेषतः हमारे ओसवालोंकी संख्या बढ़ानेका कार्य रत्न-प्रभुसूरिजी से लेकर देवगुप्तसूरि, सिद्धसूरि, कक्कसूरि, देवसूरि आदि महात्माओं ने किया था, उस वक्त दसा, वीसा, पांचा, ढाया आदि भेद नहीं थे। विक्रम की १३ वीं शताब्दी तक यह कार्य अव्याहत चल रहा था, परन्तु उनके आगे अजैनोंको जैन बनानेका कार्य बन्द सा हो गया, हमारे आचार्यों में आपसी फूट पड़ जानेसे पूर्व संपादित सम्पत्ति की रक्षा एवं वृद्धि करना उन्होंने छोड़ दिया। जब से हमारे इन धर्मगुरुओंने समाजकी देख भाल करनी छोड़ दी तब से समाजकी संख्या घट रही है। उदाहरणार्थ अग्रवाल जैन थे उनमें अब विशेषतः सारे वैष्णव हो गये। धर्मगुरुओंकी लापरवाहीसे ही समाजमें अनेक अन्तर्जातियाँ बनकर परस्पर रोटी बेटी व्यवहार बन्द होगया, छोटे छोटे समाजोंमें विवाह का क्षेत्र छोटा होनेसे वे दिनो-दिन घट रहे हैं, इस लिये समाजका संगठन होना आवश्यक है। शुद्धि[1] आन्दोलन जैन समाजको कोई नया तो है ही नहीं, वह पूराने

---

१ श्रेणीक, शतानिक, चंदप्रद्योत, उदयन, अजातशत्रु, चंद्रगुप्त, कुमारपाल अमोघवर्ण आदि राजाओं अजैन थे, पीछे जैन हुए। ११ गणधर जाति के ब्राह्मण थे, पर बादमें जैन बनाये। उपासक दशांग सूत्रमें सद्दाल पुत्रके कुमार को जैन बनाया था। दक्षिण भारतके एक दिगम्बराचार्यने कुरुप तथा मार जैसी जंगली असभ्य जातियों को शुद्ध कर जैन बनाया था, ओसवाल, पोरवाल, खंडेलवाल, अग्रवालें यह सब अजैनों को शुद्ध कर जैन बनाया था। थोड़े दिनों पहले अर्थात् ३० वर्ष पहले श्रीराजेन्द्र सूरिने मालवे के मन्द आदि ३ शहरोंके पंचरंगी जाति को शुद्ध कर ओसवाल बनाये थे जो पांचे कहलाते हैं। विजयेन्द्र सूरिजीने जर्मन महिला को जैन बनाया। आदि पुराणमें तो शुद्धिका साफ विधान है। आजीविका के अनुसार वर्ण स्थापन कर पुराने जैनियों के साथ रोटी बेटी व्यवहार करना ऐसा उसमें उल्लेख है। (पर्व ३९ श्लोक ६१-७१)

कालसे है; परन्तु जो बीचमें बन्द पड़ा था वह कुछ महात्माओंकी कृपा से पुनः शुरु हो गया है । स्थानकवासी मुनिश्री चौथमलजी महाराज, ब्रह्मचारीजी शीतलप्रसादजी इन दोनोंके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं ।

राजस्थानसे द्वितीय नंबरमें अगर है तो मालवा है जहांपर कि ओसवालों की संख्या अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा अधिक है । जिसके पश्चात् नम्बरोंमें मध्यभारत, मध्य प्रान्त, वरार, गुजरात और काठियावाड़ है । जिनमें भी ओसवालोंकी वस्ती अच्छी संख्यामें मौजूद है । यद्यपि वहाँपर भी कुछ भाई ऐसे भी पाये जाते हैं जो राजस्थानसे भी जाकर वहाँ वस रहे हैं तथापि अधिक तर ऐसी ही आवादी ओसवालोंकी वहां मिलेगी जो या तो ओसवाल वननेके समयसे, वा वाहरसे गये हुवे अधिक पीढ़ियोंसे वहां बस रहे हैं और अव उनको वहां रहते हुवे उस पूर्व मूल स्थानका नाम तक स्मरण नहीं है । उनको अब इसी स्थानके निवासी मानना उचित होगा जहां कि वे वर्तमानमें निवास कर रहे हैं ।

एक धनाढ्य परिवार मुर्शिदावादी ओसवालोंमसे फ्रान्समें जाकर स्थाई रूपसे निवास कर रहा है और यूरोपमें विद्याध्ययनके लिये वा अन्य आवश्यक व्यवसायिक कार्योंके लिये गये हुवे और अस्थाई रूपसे निवास करते हुवे चाहे मारवाड़ी भाई कम मिलें, अथवा कठिनतासे मिलें, किन्तु गुजराती बन्धु तो अनेक मिल जायेंगे ।

जहां पर ओसवालोंकी वस्ती ५० वर्षोंसे स्थाई रूपसे हो वहां चाहे वह छोटा ग्राम हो वा नगर हो यदि जाकर वहां की ओसवाल जातिका कुछ थोड़ासा ऊपरी हाल परियास करें तो यही पता लगता

है कि ५० वर्ष पूर्व आजसे दुगुने घर (कुटुम्ब) यहां निवास करते थे। यदि कोई वृद्ध पुरुष मिल जावे तो उनसे पूछने पर भी यही पता लगता है कि उन्होंने बचपनमें सुना था कि पहले बिरादरीमें आजसे चौगुने कुटुम्बोंके नाम थे और जितने उन्होंने अपने बचपनमें देखे हैं उससे अब तो आधे ही रह गये हैं। इस प्रकारकी बातें सुन कर और यह देख कर कि हमारी जाति अत्यन्त तेजीके साथ दिन प्रतिदिन घटती चली जा रही है। कुछ समयके लिये चित्त चिन्तातुर हो जाता है। ऐसे प्रसंग व्यवसायिक कार्यों में तथा विवाहोंकी जान बरातों में प्रायः हरएकको पड़ते ही रहते हैं। १०० स्थानों में कमसे कम ९० स्थानों पर यही बात देखी जाती है। शायद १० प्रतिशत स्थान ऐसे भी मिल जावें जहां हमारी संख्या वृद्धि हो रही हो वा हुई हो।

इसी प्रकार की दशा हम आर्थिक स्थितिके संबंधमें पाते हैं। अमुक २ बड़े २ गृह पहले अपनी जातिवालों के थे अब बिक करके अमुक जातिवालोंके पास चले गये हैं। अमुक २ धनाढ्य इस जाति में आजकल साधारण स्थितिमें हो गये हैं। अमुक गृहोंकी दशा बाहरसे ही अच्छी है अन्यथा अंदर तो डबका बोल रहा है। अमुक अमुक भाई बिचारे बहुत दिनसे धंदेमें घाटा उठा रहे हैं। बिचारोंकी तकदीर ही ऐसी है। अमुक २ भाई बिचारे बहुत दिनोंस बगैर धंन्दे बैठे हैं इनको कोई नौकरी ही नहीं मिलती और व्यापार के योग्य पासमें द्रव्य ही नहीं, परदेश भी कैसे जावें, इनकी उम्र अब ऐसी कहां तथा पीछे सारे कुटुम्ब को किसके भरोसे छोड़ कर जावें। अमुक २ के इतनी कन्यायें हैं। दो तो विवाह का बिल ही हैं अब

तक इनकी न तो हाल सगाइयां ही हुई हैं और न इनके पास चार पैसे ही दिखते हैं। जिनसे इन कन्याओंको विदा करेंगे, या तो विचारे मकान गेहन रखेंगे या कुछ गुप्त लेन देन करेंगे। अमुक को देखिये पूर्वजों की सम्पति सब पूरी कर दी, इसने लोभ में फँसकर खूब सट्टा, फाटका किया और अब बावाजीकी जात बन गये है। अमुकको देखिये दुर्व्यसनों में लग गया है, पूर्वजोंकी पूँजी जल्दी ही गंगाजी जाती दिखती है इसके बापने विचारेने बड़ी मेहनत करके संग्रह की थी इत्यादि बातें सुनते हैं, जिनसे पता चल जाता है कि किस प्रकार स्थान २ पर हमारे स्वजातीय भाइयोंकी आर्थिक स्थिति शनैः शनैः खराब हुई है और होती जा रही है। आर्थिक स्थिति के संबंध में भी हम १० प्रतिशतके सम्बन्धमें अधिक अधिक यह सुनते हैं कि इनका ढंग आजकल अच्छा है। आगे भी इनके बढ़ती ही नजर आती है क्योंकि घरमें संप है और चढ़तीका आंका है। इस प्रकारकी बातें सुन कर कभी उस पूर्व दृश्य कथाको भूल भी जाते हैं और कभी नहीं भी भूलते हैं और मनमें विश्वास हो जाता है कि अपनी जाति का दिन ही आज उतार है। तब ही तो इतनी धन जनकी घटती हुई है और हो रही है। जो होनहार है सो होगा। क्यों वृथा खेद करके दुःख मान करके दुबले होते हो।

इस प्रकार धन जन की घटती के प्रमाण हमको प्रायः मिलते रहते हैं जिनको हम खेदजनक चित्त से भूलने की कोशिश करते रहते हैं और लापरवाह होते रहते हैं परन्तु घटती कमबख्त ऐसी बेशर्म है कि वह हमारी तरह लापरवाह नहीं होती किन्तु वह तो

अपनी गति सदा जारी ही रखती है। धन की घटती की सूचना तो प्रायः वह तब दे ही देता है जब किसी शान शौकतवाले भाईका पक्का काम कच्चा पड़ जाता है और संख्या घटती की सूचना देने के लिये प्रति १० वर्ष के अन्तर से मनुष्य गणना होती ही रहती है जिसमें सारे भारतवर्षकी मनुष्य संख्या बढ़ती हुई ही पाई जाती है। देश में प्लेग, हैजे, इन्फ्लुएँजा। इत्यादि कितने ही चले, आकाल भी पड़े, युद्धों में भी गये हुवे मनुष्य मारे गये, तथापि देश की मनुष्य संख्या तो कभी भी नहीं घटी, किन्तु थोड़ी या ज्यादा अवश्य बढ़ी ही। अलबत्ता जैन जाति की अवश्य घटी।

भेद, प्रभेद तथा भिन्न भावना।

ओसवाल जातिमें अनेक भेद प्रभेद भी देखे जाते हैं जिनके कारणसे लग्न व्यवहारमें परस्पर प्रतिबन्ध रहता है।

(अ) बड़े-और लोड़े साजन का भेदः—

सबसे बड़ा भेद जो पाया जाता है, वह बड़े साजनों का और लोड़े साजनों का है। जिसको बीसों और दसोंका भेद भी कितनी ही जगह कहा जाता है कितनी ही जगह वजाय दसोंके छोटा साजन भी कहा जाता है। इन दोनों भेदों में लग्न व्यवहार नहीं होता। बड़े साजन बड़े साजनों में और लोड़े साजन लोड़े साजनों में ही कन्या देते लेते हैं किन्तु पंजाब में अलबत्ता कुछ थोड़े से संबंध ऐसे भी हुवे हैं जिनमें बड़े साजन और लोड़े साजनों में परस्पर कन्या लेना देना हुवा है। तथापि अधिकतया पंजाब में भी और अन्य सब ग्राम नगरादि में तो पारस्परिक लग्न व्यवहार बन्द ही है।

भोजन व्यवहार अर्थात् पंक्ति में एक साथ बैठ कर भोजन करना (पूरबमें कुछ नगरों को छोड़ कर) सर्वत्र चालू है, बल्कि यदि दोनों भेदोंके स्वेच्छा से कोई एक थालीमें यदि जीमते हैं तो इसमें भी किसी प्रकार की आपत्ति जाति की ओरसे प्राय: कभी नहीं की जाती है। किन्तु पूरबमें कुछ नगरों में एक पंक्ति में बैठकर भी भोजन दोनों नहीं कर सकते, कितने ही स्थानों में ऐसा है।

इन दो भेदोंके अतिरिक्त एक और भी भेद है जिसको "पांचिया वा अढ़ैया" कहा जाता है। इनके भेदके संबंध में कहा जाता है कि नुत्फमें विकार के कारण (उत्पादक के विजातीय होनेके कारण) यह भेद प्रारंभ हुवा है। इसको ओसवाल मानने तक में अनेक ओसवाल भाइयोंकी ओरसे आपत्ति भी है। इनके साथ लग्न व्यवहार तो कहीं भी प्रचलित नहीं है। कोई धोखेमें आकर कर लेवे वा जातिमें कन्या नहीं मिलनेसे उनके साथ विवाह संबंध कर लेवे तो ऐसा करनेवालेंको भी उन अढ़ैयों में ही गिना जाता है। इस भेदवालेंके साथ भोजन भी एक पंक्तिमें बैठकर करना बन्द ही है। किसी किसी स्थानमें धनाढ्यता तथा उदारताके प्रभावसे इन लोगोंके साथ एक पंक्तिमें बैठना भी जातिने प्रचलित किया था जहां किसीके द्वारा कभी आपत्ति उठी और या तो वह एक पंक्तिमें बैठना बन्द हुवा या जातिमें उस स्थानमें दो तड़ पड़ गये।

लोड़े साजनोंके संबंधमें यह नहीं कहा जाता है कि इनकी उत्पत्तिमें रजोवीर्य संबंधी कोई विजातीयता है। अन्य महाजन जातियोंमें दसा उसीको कहते हैं जिसकी उत्पत्तिमें कोई विजातीयता संबंधी कारण होता है। तब ओसवालेंमें उन लोड़ों साजनोंके लिये इस

शब्दको उपयोगमें लिया जाना कहां तक उचित समझा जाना चाहिये ? उनके संबंधमें कोई निश्चित प्रमाणयुक्त कारण नहीं मिलते जिनसे इस भेदकी उत्पत्ति हुई है। इनकी संख्या बड़े साजनोंसे बहुत कम है करीब एक चौथाई है और पांचों वा अढैयोंकी संख्या तो बहुत ही थोड़ी है अर्थात् कुछ सैकड़ोंसे ज्यादा नहीं है। कम संख्यामें होनेके कारण इनकी घटती भी अधिकाधिक होती है और इसी कारण थोड़े ही रहते जाते हैं।

(आ) भिन्न प्रान्त निवास संबंधी भेदः—

दूसरा भेद प्रान्तिक है। भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें निवास करनेके कारण भी भिन्न भावना प्रचलित है।

(क) **मारवाड़ी**—इनमें राजपुताना, मालवा, मध्यभारतके मूल निवासी तथा आजीविकाके लिये गये हुवे इन प्रान्तोंके निवासी हैं जो वास्तवमें सब मारवाड़के निवासी नहीं है किन्तु बाहर तो सब ही "मारवाड़ी" माने जाते हैं।

(ख) **गुजराती**—इनमें गुजरातके, काठियावाड़के तथा कच्छके मूल निवासी हैं जो बाहर तो सब गुजराती ही माने जाते हैं।

(ग) **पूरबवाले**—आगरा, देहली, बनारस, लखनऊ, मूर्शिदाबाद आदि नगरोंके वे निवासी हैं जो अपनेको वहाँके प्राचीन निवासी मानते हैं।

(घ) **पंजाबी**—पंजाबमें, या पासके देहली आदि नगरोंमें जो रहते हैं और अपनेको पंजाबके प्राचीन निवासी मानते हैं।

इन चारोंमें भोजन व्यवहारके संबंधमें तो कोई किसी प्रकारकी रुकावट नहीं है। अलबत्ता किसी खास कारणसे किसी खास स्थान-

वालोंकी बात जुदी है। परन्तु लग्न व्यवहारके संबंधमें चाहे किन्हीं विशेष निश्चयों द्वारा बन्द न किया गया हो प्रचलित व्यवहारमें अनेक प्रतिबन्ध चल रहे हैं।

गुजरातवाले (ख—भेद) तो अपने ही प्रान्तमें कन्या देते लेते हैं और ऐसा ही पंजाबवाले (घ—भेद) करते हैं। वे अलबत्ता इतना अधिक करते हैं कि यदि कोई मारवाड़ी किसी कारणवश अथवा भूल-चूकमें अथवा उसको मारवाड़ियोंमें वर नहीं मिल सकनेसे उनको कन्या दे देता है। तो सहर्ष ले लेते हैं। यद्यपि ऐसा होता बहुत कम ही है और ऐसा होनेका कारण एक यह भी है कि उनकी संख्या थोड़ी है। कन्याओं की आवश्यकता पूर्ति करनी ही पड़ती है इसलिये वे मौका पड़नेपर न तो प्रान्तिक भेदका विचार करते हैं, न दसा वीसाका विचार करते हैं। और यदि आवश्यकता ही पड़े तो अन्य महाजन जाति-योंसे भी कन्या व्यवहार कर लेते हैं। कन्या न सिर्फ लेते ही हैं किन्तु दे भी देते हैं, उनको जाति प्रतिबन्ध नहीं लगाती इसका कारण एक यह भी है कि पंजाबवालों के विचार स्वतंत्रता की ओर अधिक झुक रहे हैं। गुजरातवाले कन्या न तो अन्य प्रान्तवालों से लेते ही हैं और न देते ही हैं (विशेष आवश्यकता के अवसर पर कन्या चाहे ले लेवें)। इसका एक कारण यह भी है कि भाषामें, पेहरावमें तथा भोजन प्रणालि में भी कुछ अंतर है जिसके कारण असुविधाका भी विचार लग्न करनेमें रखा जाता है।

पूरबवाले (ग-भेद) मारवाड़ से भी कन्या ले जाते हैं इसमें उनको भाषा, भोजन तथा पेहरावमें अधिक अंतर न होनेसे विशेष असुविधा नहीं होती। किन्तु पूरबवाले मारवाड़वालों को कन्या कभी

नहीं देते। किसी योग्य लड़के को भी पूरब से मारवाड़में कन्या आई हुई शायद ही मिले। पूरबवालों को तो अपनी आवश्यकता पूर्ति का ख्याल है और मारवाड़वालों को ज़रा अच्छे पैसेवाला तथा जरा अच्छी फैशनवाला वर मिलनेका ख्याल रहता है। फल स्वरूप एक अच्छी संख्या में मारवाड़ से कन्याऐं पूरबको जाती हैं।

मारवाड़ी लोग प्रायः कन्याऐं मारवाड़ियों (क-भेद) से ही आपसमें प्राप्त करते हैं अपनी आवश्यकताको (कमीको) नगरवाले छोटे ग्रामों से पूरी करते हैं। छोटे ग्रामवाले नगरनिवासियों की रहन सहन से मोहित होकर अपनी कन्याऐं दे देते हैं। इनके यहां जो कमी हो जाती है वह किसी भी तरह पूरी नहीं होती। अनेक कुंवाँरे फिरते रहते हैं। कन्या मिले तो कहांसे मिले इस दशामें लोभ देकर कन्या प्राप्तिकी कोशिशें की जाती हैं। सोलह सोलह वर्षके वरोंको द्रव्य दिये बगैर कन्याऐं नहीं मिलती हैं। शनैः शनैः कन्या विक्रय का फैलाव ग्रामोंमें इसी कारण बढ़ता गया कि एक तो रीति रस्मों के बढ़े हुवे खर्चको रुपयों की जरूरत होती है और दूसरी कन्या के लिये मिलता हुवा रुपयों का लालच सदा मिलता रहता है। इन दोनों दुविधाओंमें फंस कर कन्या बिक्रय जैसे अधम कृत्य के लिये भी कितने ही जातिभाई तैयार हो जाते हैं और उनका लालच अन्तमें यहां तक बढ़ जाता है कि वे द्रव्य के लोभमें साठ साठ वर्ष के वरोंको कन्या दे देते हैं। इस तरह कितनेही ग्राम कन्या विक्रय के बाज़ार बन गये हैं जहां जाकर जितनी बड़ी कन्या चाहिये तथा जितने बड़े वरके लिये कन्या चाहिये उतने ही अधिक रुपये देकर विवाह कर लाइये। यह घातक कन्या विक्रय वैसे तो कम मात्र में किन्हीं किन्हीं

नगरो में भी मिल जावेगा। किन्तु अधिकतया इसका फैलाव ग्रामों में ही अधिक है। राजपूताने से भी इसमें मालवा अधिक ग्रस्त हो रहा है और खास करके रतलाम के आसपास का विभाग। इस प्रकार ग्रामोंकी कन्याएँ अधिकतया या तो नगरों में उन घरों में आ जाती हैं जिनका वाहरी दिखाव अच्छा होता है या ग्रामवालों से प्रसंग होता है या ग्रामों में विक्रय होकर कुछ घरों को आबाद कर देतीं हैं। बाकी अधिक घर तो गांवों में अविवाहित रह कर वंश समाप्ति हो हो कर समाप्त होते जाते हैं। इस प्रकार जाति की संख्या का न्हास का मूल वहीं है। किन्तु उन ग्रामवासी भाइयों से यह आशा भी नहीं है कि वे कुछ उपाय कर लेंगे। उनके रोग का मूल कारण नगर निवासी ही है और नगर निवासियों को ही उनके ग्रामीण भाईयों का रोग मिटाना होगा।

जिस प्रकार मारवाड़, मेवाड़ मालवा तथा अजमेर के जिले के ग्रामों में यह दशा कहीं न्यून तो कहीं अत्यन्त अधिक पाई जाती है। उसी प्रकार गुजरात, काठियावाड़ के ग्रामों में भी पाई जाती है। किन्तु गुजरात में सुधारकों के प्रयत्न से अब कुछ कमी अवश्य हुई है, किन्तु विलकुल वन्द हो सके ऐसे उपाय अब तक वहाँ भी काम में नहीं लिये गये हैं।

मारवाड़ियों में तथा गुजरातियों में कितने ही नगरों में ऐसे प्रति-वन्ध भी है जिससे वे अपने नगरवासियों के सिवाय अन्य को कन्या नहीं देते। मारवाड़ में जैसलमेरवाले, वीकानेरवाले, गुजरात में, अहमदावादवाले अन्य नगरवासियों को कन्या कहाँ देते हैं? इसी तरह पूरबमें मकसुदावादी लोग भी अपनी कन्या अन्य

नगरवासियों को कहां देते हैं ? यद्यपि अपवादरूपसे (Exception-ally) कुछ धनी लोग चाहे नियमका उल्लंघन करते हों वह बात ही अलग है किन्तु सर्व साधारण तो प्रतिबन्धका विचार रखते हैं। (अलबत्ता सुधार प्रेमी लोगों के विचार प्रतिबंध के विरुद्ध बढ़ रहे हैं)।

एक ओसवाल जातिके सदस्य होते हुवे भी परस्परमे लग्नसंबंधमें कितने प्रतिबन्ध हैं और वर कन्या योग प्राप्त करनेमें क्षेत्र कितना संकीर्ण है। यह उपरोक्त विस्तृत वर्णनसे स्पष्ट हो गया है।

(इ) बड़े और छोटेका भेदः—

उपरोक्त भिन्न भावनाके अतिरिक्त एक और भी जबर्दस्त भिन्न भावना है जिसकी वजह से भी लग्न व्यवहारमें प्रतिबन्ध रहता है और इस निरर्थक प्रतिबन्धकी जितनी निन्दा की जावे उतनी कम है।

क-पर्दा[1] रखनेवाले अपनेको बड़ा तथा ऊंचा मानते हैं। बगैर पर्दावालों को कन्या देना उन्हें अपराध प्रतीत होता है, चाहे वर कैसा ही योग्य क्यों न हो।

ख-जो वर्तमानकालमें धनवान् हैं अथवा जो पूर्वकालमें धनवान् थे, किन्तु अब साधारण परिस्थितिमें हैं वे भी किसी धनवान् को कन्या देना पसन्द करते हैं। किसी योग्य वर को वा किसी नवीन धनवान् को कन्या देना वे कभी पसन्द नहीं करते क्योंकि वे अपने आपको तो खान्दानी समझते हैं और साधारण स्थितिवालों को तथा निज पुरुषार्थ से कमाकर नये धनवान् हुएओं को समझते हैं कि कल

---

१ इस पर्देका अर्थ केवल घूंघट ही नहीं है बल्कि इसका अर्थ यह है कि बगैर दासियोंके साथ स्त्रियाँ बाहर तक नहीं निकलने पाती।

तो इनकी स्थिति जो थी वह दुनियां ही जानती है। आज चार पैसे कमा लिये तो क्या हम लोगों के बराबरमें इनका खान्दान समझा जा सकता है? दमड़ीमें बडे हुवे तो क्या चमड़ीमें तो बड़े नहीं हो गये।

ग—इसी तरह राज्यपदों पर नियुक्त महाशय गण भी चाहे वे छोटे पद पर ही हों और चाहे पदसे पृथक (अलग) हो गये हुवे भी हों, व्यापारी लोगोंको कन्या देना अपनी शानके विरुद्ध कार्य समझते हैं और कहीं कहीं तो उनके घर पर जाकर भोजन करना भी पसन्द कम करते हैं।

(ई) सांप्रदायिक भिन्नताका भेदः—

इन भिन्न भावनाओंके अतिरिक्त धर्म संप्रदाय की कट्टरता के बदौलत भी कितने ही महाशय अपने ही धर्म सम्प्रदाय वालोंको कन्या देनेका अपने धर्म गुरू के सन्मुख वा परोक्षमें निश्चय कर लेते हैं और मंदिर आम्नाय वाले मंदिर आम्नायमें, साधु मार्गी साधु आम्नायमें तेरा पंथी तेरा पंथियोंमें ही कन्या देते हैं।

(उ)—दल भेदः—

इनके अतिरिक्त एक ही नगरमें वा ग्राममें कारणवशात् जो दो, तीन वा अधिक तड़े (धड़े) पड़ जाती हैं, जिनके कारण कन्या व्यवहार भी प्रायः बन्द हो जाता है, परस्पर में कन्या नहीं ली दी जाती यह प्रतिबंध भी कम दुःखदाई नहीं होता।

इतने प्रकार के प्रतिबंध हमारी जाति में हैं जिनके कारण परस्पर लग्न व्यवहार एक जाति के होते हुवे भी कठिनता से किया जा सकता है।

इनक अतिरिक्त चार गौत्र टालने की प्रथा भी प्रायः अनेक स्थानों में है। कितने ही भ्रातृ गोत्रों को भी टालना पड़ता है। इस प्रकार लग्न व्यवहारके लिये क्षेत्र कितना संकीर्ण है जिसमें कि योग्य वर कन्या ढूंढ़ना पड़ता है।

यदि इन अनेक प्रकार की भिन्नता की भावनाओं की अपेक्षासे हमारी जातिक भद प्रभेदोंका हिसाब हम दखे तो हम ४ लाख रहकर भी एक दूसरे के प्रति किस कामके हैं ?

क्या कभी जातिके शुभेच्छकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित होगा ? कौन २ से प्रतिवन्ध उचित हैं ? कौन २ से प्रतिबंध निरर्थक हैं ? इनपर वे विचार करके अपना निश्चय प्रगट करेंगे तथा क्षेत्र विस्तीर्ण करनेके लिये आगे कदम बढ़ावेंगे !

संसार का नियम है कि जिस वस्तुके जितने अधिक विभाग होंगे उतनीही उनकी शक्ति कम हो जावेगी और जितने छोटे २ विभाग अधिक से अधिक संख्यामें परस्पर मिल जावेंगे, उतनी ही अधिक उनकी शक्ति बढ़ जावेगी। पृथक २ रहने में तृण के समान पैरों में ठोकरे खाते हुवे कुचले जावेंगे और परस्पर मिल कर एक हो जानेसे रस्सेके समान मजबूत बनकर मदोन्मत्तों को भी आधीन कर लेंगे। भाई भाई में भेद, भिन्नतादि का काम ही क्या ?

जीवन निर्वाह।

(अ) आरोग्यता और सवलता:—

जीवन की प्रथम आवश्यकता आरोग्यता है अर्थात् शरीर तन्दुरुस्त रहना चाहिये। किसी भी तरहका रोग शरीरमें नहीं होना चाहिये। सब सुखोंमें यह सुख प्रधान है। यदि यह आरोग्यता नहीं तो अन्य सहस्र सुख भी कुछ अच्छे नहीं लगते।

ओसवाल जातिके मनुष्योंमें अलवत्ता स्त्रियोंकी, धनी पुरुषों की, दुर्बलों की तथा अत्यन्त दीन (गरीब) ओसवाल मनुश्यों की शारीरिक अवस्था प्रायः रोगी अधिक है। तथापि सर्व साधारणकी दृष्टिसे तथा भिन्न भिन्न प्रान्तों के जलवायु तथा वहां के अन्य निवासियों की आरोग्यता की दृष्टिसे ओसवाल मनुष्योंकी तन्दुरुस्ती की दशा अधिक खराब भी नहीं कही जा सक्ती।

स्त्रियेंमें तथा दुर्बल मनुष्यों में भयंकर क्षय रोग के आक्रमण हुवे मनुष्योंकी संख्या वढ़ती जा रही है। जापेंमें (प्रसवकालमें) लगे हुए रोगोंसे ग्रसित स्त्रियोंकी संख्या वढ़ती जा रही है। प्रसवकालमें होनेवाली स्त्रियोंकी मृत्युओंकी संख्या भी वढ़ती जा रही है। स्त्रियाँ अधिक सहनशील होनेके कारण तथा लज्जा के वश होनेके कारण अपने मुँहसे यथा संभव अपने रोगकी सूचना करना पसन्द नहीं करती हैं किन्तु जब देखती हैं कि अब तो बिस्तर का सहारा लेना ही पड़ेगा अथवा अन्य किसी तरह प्रगट हो ही जावेगा तब अपनी तकलीफ की सुचना देंगी। पश्चात् यदि घर के

५

पुरुषादि जरा दूरदर्शी हुवे तब तो शीघ्र उसका उपाय करने के प्रयत्न में लगेंगे अन्यथा उनकी गफलत में भी रोग को अधिक बढ़ने का मौका मिलेगा। घर के पुरुष कोई दवा वैद्यसे पूछकर आवेंगे तब उसका प्रयोग होगा। इतनी अधिक अवधि की बीमारी सहज ही आराम कैसे हो सकती है। अब स्त्री चिकित्सक की तलाश होगी। वह उपलब्ध नहीं हुई तो और कुछ दिन बीमारी बढ़ जावेगी और प्राप्त होगई तो कुछ दिन इलाज होगा और यह फल निश्चित होगा कि स्त्री चिकित्सक उतनी होशियार नहीं होती जितने पुरुष चिकित्सक होशियार होते हैं। एक दो दिन उलझन रहेगी कि पुरुष से इलाज कराने में कुछ हर्ज तो नहीं हैं, कोई क्या कहेंगे? अन्त में या तो कुछ दिन ऊपर का इलाज कराया जावेगा वा पुरुष से इलाज कराना निश्चय कर किसी वैद्य या डाक्टर को दिखलाया जावेगा। या तो इलाज होते होते ही रोग के बदले रोगी ही चला जाता है अथवा यदि इलाज कराते हुवे दो तीन वैद्य, डाक्टरों को बदलने पर भी लाभ न हुवा तो घरवाले थक जाते हैं, खर्च से भी हैरान हो जाते हैं और अब साधारण नाम मात्र की संभाल रह जाती है। यदि रोगी कुछ दिवस और जीवित रहता है तो कष्ट भोगता रहता है और चल देता है तो आयुकर्म की समाप्ति मान कर सन्तोष किया जाता है।

रोगी के मल, मूत्र, कफ तथा थूक आदि के विकार से घर के अन्य बालक, बालिकाएँ, स्त्रियाँ इत्यादि किसी प्रकार हानि न उठाले, इसके लिये उचित उपाय बहुधा काम में नहीं लिये जाते हैं। इस अत्यन्त आवश्यक वाकफियत और सावधानीके अभावमें घरके

अन्य व्यक्तियोंको भी विकार असर कर जाते हैं, और रोगको घरमें पुनः आश्रय मिल जाता है ।

धनिक बन्धुओंमें भी प्रायः (अधिकतर) एक आधा रोग स्थाई तौरसे देखा ही जाता है । प्रथम तो वे स्वयं रोग निवारणार्थ उचित अवधि तक उचित रीतिसे (रोगकी वृद्धि रोकनेके निमित्त बतलाये गये आवश्यक प्रतिबंध) परहेज रखनेमें समर्थ नहीं होते। कारण कि स्वाद त्यागका उन्हें अभ्यास नहीं होता और द्वितीय वैद्य डाक्टर भी प्रायः धनी पुरुषोंके इलाजमें अधिक दिन व्यतीत करना ही पसन्द करते हैं क्योंकि इसमें ही उनकी स्वार्थसिद्धि अधिक होनेकी सम्भावना उन्हें दिखाई देती है । इस तरह कितने ही अमीर धनाढ्य पुरुष प्रायः वैद्य, डाक्टरोंसे स्थायी संबंधही प्रारंभ कर लेते हैं और प्रति-मास उनका बिल आजाया करता है ।

दुर्बल मनुष्योंकी भी संसारमें बड़ी मुश्किल रहती है । मौसम आते ही पहिले उनपर ही वार करती है । जिस किसीका भी वार चले, पहले दुर्बल पर ही करते हैं तब रोग भी उसपर वार क्यों न करें । आज अमुक अंग में दर्द है, तो कल अमुक स्थानकी नस इधर उधर होगई है, तो परसों और कुछ आपदा तैयार है । आयु-भर आपत्तियोंको सहन करते हुवे ही तथा यथासंभव इलाज करते ही करते दिवस रात्री व्यतीत होते हैं । जीवनमें किसी गुणकी या किसी कार्य की साधना कर वह सफल नहीं हो सकता और एक नाम मात्रका जीवन व्यतीत करता रहता है, न तो धर्मसाधना योग्य ही होता है और न कर्मसाधना योग्य ही

होता है। नित्यके भोजनपान आदि की तरह औषधियां भी उसके लिये नित्यकी नैमित्तिक उपयोग की वस्तु बन जाती हैं।

इसी तरह अत्यन्त दीन गरीब मनुष्योंकी भी बड़ी मुश्किल है, क्योंकि असावधानी वा अन्य किसी कारण से यदि रोग उन्हें आ घेरता है तो उचित अवधि तक एक योग्य चिकित्सक के पास से इलाज कराने और व्यय करने योग्य तो द्रव्य उनके पास नहीं होता, इस दशामें साधारण चिकित्सकों के पास से यदि उनको आराम हो जावे तब तो ठीक ही है, अन्यथा उचित इलाज के अभाव में, उचित अन्य साधनों के अभावमें उनके रोग मिटते नहीं; और दुःखके साथ सहन करते रहते हैं तथा द्रव्यके अभावके कारण मूल्यवान् औष-धियों तथा उचित चिकित्सकों का खर्च नहीं सहन कर सकनेसे भी अनेक दीन मनुष्योंकी, उनके स्त्रियों की और बच्चोंकी मृत्यु होती हैं। इतना होने पर भी जातिके मनुष्योंकी साधारण स्थिति अधिक रोगमय नहीं होनेका कारण यह है कि अत्यन्त दीन, अति दुर्बल और धनवान् मनुष्योंकी संख्या जातिमें अत्यधिक नहीं है और कुछ व्रतादि के कारण से भी स्त्रीपुरुषोंकी रोगादिसे रक्षा होती रहती है।

जिस प्रकार आरोग्यता की मनुष्य को आवश्यकता है। उसी प्रकार मनुष्यके लिये सबल (ताकतवर) होनेकी (चाहे उससे कम सही) परम उपयोगिता है।

यदि कोई मनुष्य किसी रोगसे ग्रसित नहीं है; और साधारणतया निरोग कहा जा सकता है तो यद्यपि उसमें कुछ शरीरबल अवश्य रहता है जिससे वह बहुत दूर जा सकता है। थोड़ा बोझा भी आवश्यकतानुसार उठा सकता है और ले जा सकता है। किन्तु

उसको सवल नहीं कहा जा सकता । इतना वल तो यथेष्ट आरोग्यताके साथ मिश्रित ही रहता है । सवल मनुष्य उसको कहा जा सकता है, जिसको अन्य एक दो वा अधिक मनुष्य अपने वलसे नीचे गिराना चाहे वा अन्य किसी प्रकारसे अपनी शक्ति उसपर आजमावें उस समय वह उनके कावूमें न आवे अथवा वह स्वयं यदि चाहे तो अन्य एक दो वा अधिकको अपने कावूमें कर ले । अथवा अपने शरीरके वलसे यदि कोई ऐसा विशेष कार्य कर सके जो साधारण पुरुप न कर सके, उसको भी सवल कहा जाता है ।

मनुष्यको जीवनमें ऐसे अनेक अवसर उत्पन्न होते रहते हैं जब कि जीवनमें वल की वड़ी आवश्यकता होती है । अपनी, अपने कुटुंब की, सम्पत्तिकी, मित्रोंकी, आश्रितोंकी, और निर्दोषी संतसोंकी रक्षा, दुष्टों, चोरों, डाकुओं इत्यादिसे सवल मनुष्य ही कर सकते हैं । चोर डाकू आदि भी सवल मनुष्य से भय खाते हैं । कितने ही रोग भी उसके पास आते डरते हैं उसकी वेइज्जती करते दुष्ट लोग भी डरते हैं और उस के आगे सीधे ही रहते हैं ।

जहाँ शारीरिक सवलता होती है वहाँ मानसिक सवलता भी प्रायः पाई जाती है । क्योंकि यदि मानसिक सवलता न हो तो शारीरिक सवलता यथेष्ट उपयोगी नहीं हो सकती । ऐसा कम देखने में आता है कि शरीर वल में तो मनुष्य वहुत सवल हो किन्तु मानसिक वल अर्थात् पुरुषार्थ से विलकुल हीन हो । अलवता ऐसा भी देखा गया है कि जो शरीर में सवल नहीं है उनमें अनुपम मानसिक वल

मौजुद हैं ऐसे उदाहरण भी उतने ही कम मिलते हैं जितने शारीरिक सबलता के साथ मानसिक दुर्बलता के मिलते हैं।

शारीरिक, मानसिक (चाहे मानसिक अत्यन्त अधिक नहीं भी हो) सबलता में कुछ जलवायु सम्बन्धी कारण भी रहते हैं जिन कारणों से विविध देशोंकी और प्रदेशों की जनता में सबलता भिन्न भिन्न मात्रा में रहती है। शीतल देशों की और प्रान्तों की जनता अधिक सबल होती है। और भी अनेक प्रकार के कारणों से विभिन्नता रहती है। गुजरातवालों से काठीयावाड़ी अधिक बलवान् होते हैं। मेवाड़वालों से मारवाड़वाले ज्यादा बलवान् होते हैं। इसतरह व्यापार करनेवालों से मज़दूरी, श्रमादि करनेवाले लोग ज्यादा बलवान् होते है। इसी प्रकार सबलता अनेक कारणों की अपेक्षा से है। क्षत्रिय के लिये तो शारीरिक और मानसिक बल परिपूर्ण होना प्रथम गुण है। पूर्व काल में इसही (गुण सम्पन्न) तरह के लोगोंके समुदाय को क्षत्रिय जाति नाम दिया गया है। आजकल अनेक जातियाँ अपने को क्षत्रिय कह जाने के निमित्त प्रयास कर रही हैं परन्तु अपने में वह गुण है वा नहीं इसका कोई ध्यान नहीं रखती। क्या क्षत्रिय कहे जाने पर उसको गुण के सम्पादन का प्रयास प्रारम्भ होगा!

अपनी जाति की परिस्थिति की ओर आवें। हम निःसन्देह क्षत्रिय सन्तान हैं ऐसा अपनी जाति उत्पत्ति के इतिहास से प्रगट है और हम (समस्त) जाति के मनुष्य चाहे अधिक इतिहास न भी जानें किन्तु इतना तो बालकसे वृद्ध तक जानते हैं कि मूलमें हम जैन क्षत्रिय हैं तथापि क्या इससे हमारी गणना क्षत्रियेंमें हो सकती है

और यदि गणना हो भी सकती हो तब भी क्या हमारेमें क्षत्रियत्व मौजूद है? आँखोंके अंधेका नाम भी नैनसुख पा सकता है। परन्तु नैनसुख नाम धारियोंमें आखोंकी ज्योति नहीं भी पाती है।

हम यदि संसारमें पूर्वजोंके क्षत्रियत्वको प्रमाणित करना चाहते हैं तो हमको अपने आपमें भी वर्तमान क्षत्रियत्व भी कुछ अवश्य प्रदर्शित करना पड़ेगा। अस्तु प्रत्येक ओसवाल बन्धुके लिये शारीरिक और मानसिक बलसे परिपूर्ण रहना उतना ही आवश्यक है जितना आवश्यक उसके लिये पूर्वजोंकी इज्जत और पूर्वजोंका रक्त अपने कुलमें कायम रखना है।

वर्तमानकालमें हमारी अधिकांश जनतामें शारीरिक और मानसिक बलकी अत्यंत कमी है जिसके अनेक कारण हैं। विशेषकर छोटा व्यापार करनेवालेंमें, गुमाश्तगिरी करनेवालेंमें, छोटी उम्रमें विवाहितोंमें और ग्रहस्थकी अधिक चिन्ताओं में मग्न रहनेवालेंमें तो कमी अधिक ही पाई जाती है।

देशी रजवाड़ोंमें निवास करनेवालेंमें तथा विशेष कर राज्योंमें नौकरी करनेवालेंमें मानसिक बलका अब भी पता अपनी जातिमें मिलता है। क्षत्रियत्वकी झाँकी भी वहीं अपनी जातिमें होती है। अन्य स्थानों की अपेक्षा मारवाड़ निवासी अपने स्वजाति बन्धु शारीरिक बलमें अधिक उत्तम हैं किन्तु अनेकोंका परदेश भी रहना होते रहनेसे मारवाड़की सबलताका प्रकाश मन्द पड़ने लग गया है। यद्यपि हमारी सबलता आज पतन होते होते एक सूक्ष्म अंश मात्र रह गई है तथापि अन्य वैश्य जातियोंकी अपेक्षा हममें शारीरिक और मानसिक बलकी कुछ अधिकता अवश्य देखी जाती है जो हमें अपने

पूर्वजोंकी क्षत्रियतामें विश्वास करा देनेमें समुचित होती है। किन्तु इतनेसे सूक्ष्म अंशसे हमारी जाति न तो क्षत्रिय ही मानी जा सकेगी और न हम अपनी, अपने कुटुंबकी और अपनी संपत्तिकी भी रक्षा कर सकेंगे।

(आ) आय और व्ययः—

मनुष्यके लिये अपने जीवन निर्वाहके निमित्त निरोगी और सबल शरीरके अतिरिक्त कुछ ऐसी अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं जिनकी पूर्ति, चाहे कैसी भी करे, मनुष्यको करनाही पड़ता है। ये आवश्यकताएँ पाँच हैं। वायु, जल, भोजन, वस्त्र और घर। इन पाँच आवश्यकताओं में प्रथम (हवा) के वगैर एक पल भी काम नहीं चल सकता। किन्तु वह सर्वत्र मिल जाती है इसलिये प्रयत्न भी नहीं करना पड़ता। द्वितीय (जल) के वगैर भी अधिक दिन काम नहीं चल सकता किन्तु इसके लिये भी विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता क्योंकि यह भी आकाशसे खूब ही मिल जाया करता है। चतुर्थ और पंचम आवश्यकताएँ ऐसी हैं जिनके वगैर, चाहे कोइ विरले मनुष्य अति कष्ट सहकर और अभ्यास करके जैसे तैसे अपना काम चला सकें किन्तु साधरण तया मनुष्य का काम नहीं चल सकता और उसको उन (वस्त्र तथा गृह) के लिये प्रयत्न कर योग्य उपाय करही लेना पड़ता है और तृतीय आवश्यकता (खुराक संबंधीं) तो ऐसी है जिसकी पूर्ति मनुष्यमात्रको करनी पड़ती है। उसके वगैर, चाहे कुछ दिवस सप्ताह, माहतक कोई जीवित भी रहसके किन्तु कोइ भी अपना शरीर अधिक समयतक स्थिर नहीं रख

सकता और इस तरह शरीर स्थिर न रखकर कोइ भी मनुष्य अपना जीवन कायम नहीं रख सकता।

प्रत्येक मनुष्य के हृदयमें जीवनकी अधिकाधिक इच्छा रहती है। गृहस्थ लोग कुटुंबके वा शरीरके भागों के प्रेममें, साधु लोग साधनाके प्रेममें और स्वार्थत्यागी लोग विश्वसेवा अर्थात् ईश्वर सेवाके प्रेममें इस जीवनकी इच्छा रखते ही हैं। इसलिये प्रत्येक अपनी उदरपूर्ति अपने अपने भिन्न प्रकार के प्रयत्नों द्वारा करते रहते हैं ताकि उदर देवताके दंड से (क्षुधा कष्टसे) बचते रहें और जीवन कायम रहने के लिये शरीर यथेष्ट अवस्थामें स्थिर रहे।

सौभाग्य से जिनको पूर्वजोंसे इतनी आय वा सम्पत्ति प्राप्त हुई हो कि जिससे वे सकुटुंब अपनी जीवनकी आवश्यकताएें पूर्ण कर सकें और यदि उनको उतनी संपत्ति से तथा आयसे उतने ही में संतुष्ठता हो और अधिककी इच्छा न हो तो उनको तो किसी अन्य प्रकारके प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है। ऐसे आययुक्त और संतोषी मनुष्य प्रति लाख एक भी शायद ही मिल सकते हैं।

शेष मनुष्यों को किसी प्रकार का प्रयत्न करना ही पड़ता है जिससे आवश्यकता तथा इच्छाओंकी पुर्ति हो। माता, पिता, साथी, भाई आदिके द्वारा तथा अनेक प्रकारके संस्कारों के द्वारा मनुष्य का ऐसा अभ्यास हो जाता है कि वह असावधानीसे अपनी आवश्यकताओं को वढ़ाता चला जाता है और इच्छाएँ उससे अधिक गतिमें अर्थहित बढ़ती रहती हैं। फलस्वरूप मनुष्य का ध्यान सदा उन अमर्यादित इच्छाओं की पूर्तिमें अमर्यादित रूपसे ही रहता है। वह जीवनके मूल उद्देश्योंको भी भूल जाता है और उसको अपने जीवननिर्वाह के नामपर

(भ्रममें) अमर्यादित इच्छाओं की पूर्तिमें लगा रहना पड़ता है। ऐसी अनावश्यक इच्छाओं से और अनावश्यक प्रयत्नों से विरले ही विवेकी मनुष्य बचते हैं।

उदर पूर्ति के साथ ही साथ अनेक प्रकार की स्वादिष्टता की इच्छा बनी रहती है। तन ढक लेने के साथ जरा रंगविरंग चटक मटक के वस्त्रों की भी उमंग रहने लगती है। रहने के लिये साधारण मकान के साथ में सजे सजाये भवनों की भी अभिलाषा रहती है। आभूषणादिसे देह के शृंगार करने की भी लगन रहने लगती है और यह भी हार्दिक इच्छा रहने लगती है कि मनुष्य जन्म पुनः मिलेगा वा नहीं, इस लिये हर प्रकार के भोग प्राप्त हो जावे तो बहुत ही अच्छा हो। इत्यादि इच्छाओं को हृदय में रखते हुवे उदर पूर्ति नामपर (पेट भराई के नाम पर) साधारणतया प्रत्येक मनुष्य जीविका उपार्जन में लगता है। कोई मानसिक परिश्रम द्वारा, कोई शारीरिक परिश्रम द्वारा, कोई चोरी डाके के द्वारा, कोई ठगी के द्वारा, और कोई भिक्षा के द्वारा उपाजन करते हैं। खेती, दस्तकारी, मजदूरी आदि करने वाले श्रमी शरीर से परिश्रम कर उपार्जन करते हैं। वाणिज्य, लिखा—

१ प्रति मनुष्य आमदनी रुपये।

	वार्षिक	मासिक	दैनिक
अमेरिका	१०८०	९०—०	३—०
आस्ट्रेलिया	८१०	६७—८	२—४
ग्रेट ब्रिटेन	७५०	६२—८	२—०
कैनेडा	६००	५०—०	१—१२
भारत	३६	३—०	०—१—७

"हो रहे हैं दीन हम हो ! सब पराई चालसे
फूले फले यदि प्रेम करले हम स्वदेशी मालसे।"

पढ़ी, हुकूमत, वैद्यक शिक्षकी आदि लोग मस्तिष्क के श्रम से उपार्जन करते हैं राजा, जमीदार, आदि कर लगान इत्यादि संग्रह कर उपार्जन करते हैं। भिक्षुक भिक्षा माँग कर जीविका उपार्जन करते हैं चोर, डाकु, ठग, अपनी हिकमत से जीविका उपार्जन करते हैं। प्रत्येक किसी न किसी प्रकार जीविका उपार्जन अवश्य करता है। चाहे सदुपायों वा दुरुपायों से, चाहे दुःख सहकर चाहे सुख सहकर सफल होता है या असफल होता है।

प्रत्येक प्रयत्न की सफलता निर्भर है प्रयत्नकर्ता की योग्यता, श्रम और अन्य अज्ञात आवश्यक साधनों की उपलब्धि पर, जिसको भाग्य भी कहा जाता है।

हमारी ओसवाल जाति विचारवान् जाति है चाहे उसमें विचार शक्ति की प्रवीणता न भी हो तथापि हमारी जाति के व्यक्ति अपने आयव्यय पर अधिकतया विचार अवश्य करते रहते हैं। इस जाति में ऐसे व्यक्ति अधिक नहीं मिलेंगे जो आज का कमाया आज ही पूरा कर दें और कल के लिये भाग्य पर भरोसा और आशा रखें।

अस्तु प्रत्येक पुरुष अपने तथा कुटुम्ब के जीवन निर्वाह अर्थात् जीविका उपार्जन के लिये प्रयत्न करते ही हैं। ग्रामों के निवासी लोग ग्रामों में वोहरागत, दुकानदारी, तथा अनाज, कपास, रूई, घी, ऊन आदि का व्यापार करते हैं, खेती आदि कृषकों द्वारा अपने घरू भीं करा लेते हैं इसमें यदि अच्छी आय हो जाती है, तो उनकी जरा आस पास के ग्रामों में कीर्ति बढ़ जाती है जिससे उनको अपने मृतक पूर्वजों को राख के ढेरों में लौटते हुये से उठाने की इच्छा उत्पन्न होती है जिसकी पूर्ति वे उन मृतकों का मोसर अपने ग्राम के तथा

आसपास ग्रामों के स्वजाति भाई और अन्य व्यवहारी लोगों को सीरा या लाडु जिमा कर करते हैं अब तो इस योग्य भी हो जाते हैं कि मौका पड़े तो किसी को ताना भी मार दें कि अभी तुम्हारे पूर्वज (बड़ेरे) तो राखमें ही लौट रहे हैं । नतीजा इस कमाइसे किये मोसरका यहांतक होता है कि जिसकी हैसियत मोसर करने योग्य नहीं होती वह भी गुप्त रीतिसे कन्या का रूपया लेकर या इस्टेट मारगेज रखकर ही मोसर करते है जिससे पूर्वज (बड़ेरे) राख में नहीं लौटे रहे और ताना नहीं दीलावें ।

इसी तरह पूर्वजोंके समय से जिन २ लोगोंसे व्यवहार चला जाता है उनसे व्यवहार कायम रखने के निमित्त विवाहोंमें जीमने के लिये, मोसरों में जीमने के लिये उनको अवश्य बुलाते हैं नहीं तो क्या जानेगे कि अब पिछले योग्य नहीं रहे, इस लिये व्यवहार बंद कर दिया । बाहिरी दीखावे में किसी तरहका फर्क नहीं आना चाहिये, चाहे अंदर गुप्त में कन्याओंके रूपये ही उनसे गिनवा लिया जावें । इस प्रकार कन्या विक्रय के बीज उन में प्रवेश होते हैं और किसी दिन अंकुर निकल कर इतने फल फूल कर हमारे सन्मुख आ खड़े होते हैं कि वे प्रगट रूपसे भी कन्याओंका द्रव्य लेते नहीं हिचकिचाते । जैसा कि कोइ व्यापारी अपनी वस्तुका मूल्य लेते हुवे तथा अधिकसे अधिक देनेवालो को वस्तु बेचते हुवे नहीं हिचकिचाते हैं । यह कभी कन्या के घर सगाई उपरान्त जाते हैं तो पानी भी नहीं पीते, भोजन भी नहीं करते । विवाह पहले ही जो करना होता है कर चुकते हैं ।

यदि ग्रामवासियों का वहाँ व्यापार आदि किन्हीं कारणोंसे न चले तो नजदीक के नगरोंमें जीविका उपार्जन के लिये आते हैं । यदि

कोइ धंधा हाथ आ जाता है तो वहीं रहने लगते हैं और अब तो इनमें नगर निवासियों का बढ़िया वस्त्र आभूषण का रोग भी प्रविष्ट होने लगता है। लालच और भी बढ़ता है और व्यापार धंधे में चालाकियाँ करना भी आरंभ करते हैं। कुछ पैसा पास में जुड़ जाने पर लालच और भी बढता जाता है। गुप्त कन्या विक्रय का अभ्यास पूर्व से इनको होता है। अब ये अपने इस कुकर्म से नगरों को भी अपवित्र करते हैं और नगरो में भी इस अपवित्र वायुको फैलाते हैं। यदि इन नजदीकी नगरोंमें उन्हे धंधा नहीं मिले तो फिर दूर प्रान्तों में जाते हैं वहीं अच्छी कमाई कर अपने ग्राम में आते हैं। विवाह आदिमें बढ़िया वस्त्रोंका, आभूषणोंका और वैश्यानृत्यादि करानेका खूब दिखावा करते हैं जिससे असमर्थ लोगों में भी यही रोग फैलते हैं। उनकी आर्थिक स्थिति को हानि पहुँचाते हैं और अन्तमें उसी दशा में (कन्या पर रूपया लेनेकी दशामें) इनको भी पहुँचना पड़ता है।

अब जरा नगरों में भी आवें। नगरों में निवास करने वालें में धन्धों का प्रश्न सदा बड़ा टेढ़ा रहता है। इसके कितने ही कारण राजकीय होते हैं और कितने ही व्यापारियों की पारस्परिक व्यवस्था के अभाव से होते हैं। इसी तरह नौकरियोंका हाल होता है। नौकरियाँ तबही मिला करती हैं जब उत्तम योग्यता हो और प्रसंग भी (सिफारिश भी) अच्छी हो। इसके अतिरिक्त स्थान कहीं खाली न हो तो योग्यता और प्रसंग भी क्या कर सकते हैं।

कितनेही धंधे ऐसे होते हैं जिनमें आय हो सकती हैं किन्तु उनके करने योग्य योग्यता नहीं, कितनेही धंधे कुलकी इज्जतके योग्य नहीं

समझे जाते, कितने ही धंधे जातिकी शोभाके योग्य नहीं समझे जाते, कितने ही धंधे व्यक्तिगत रूचिके विरुद्ध होते हैं, कितने ही धंधोंके करने योग्य मूल धन अर्थात् पूंजी पास नहीं पाती और कितनोंही को कोई ऐसा सहायक नहीं मिलता जिसके तनकी (श्रमसे), मनकी (सलाहोंसे) वाधनकी (पूंजीसे) सहायतासे कोई धंधेसे लग सके । इस दशामें धंधा पाना आजकल प्रायः नगरोंमें तो भाग्याधीन हो रहा है । अच्छे अच्छे शिक्षित नौकरी धंधेकी तलाशमें फिरते रहते हैं । अच्छे अच्छे खानदानी इमानदार कहे जानेवाले भाई इसी प्रकार देखे जाते हैं ।

अलबता उन लोगोंकी दशा ठीक है जिनकी दुकानदारी और लेन देन बहुत समयसे कई पीढ़ियोंसे अच्छा चल रहा है किन्तु वे भी आज कल खर्च योग्य आय ही कर पाते हैं । अधिक धन नहीं कमा सकते हैं यह भी अच्छा ही है । इसके अतिरिक्त उनकी सन्तानको दुर दुर तो नहीं घूमना पड़ता है । किसीकी मानहती तो नहीं सहनी पड़ती हैं और कुछ लोगोंके खयालके मुताबिक इज्जतका पदही और क्या है—

उधर उन धनाढय भाइयों की भी अवस्था आयके लिहाज से अच्छी है जिनकी अनेक नगरोंमें दूकानें चलती हैं मुनीम लोग उनके धनको बढ़ाते रहते हैं ऐसे धनाढय भाइयों पर जाति का कल्याण बहुत कुछ निर्भर है क्योंकि धन की पूर्ति इन्ही लोगों से हो सकती है यदि इनका ध्यान इधर जाति हितव्यय करनेमें नहीं हो तो सार्वजनिक हितमें तो इनका ध्यान हो ही कब सकता है ? ऐसी दशामें तो इनको भाग्यवान् कहते हुवे जी हिचकिचाता है

क्योंकि इनका भाग्य कहाँ जो इनका रुपया जातिहित जैसे सुकृत में लगे। भाग्यवान् वही है जिसका तन, मन या धन किसी व्यक्ति जाति या देशके उत्थानमें उपयोग हो। यदि धन कहीं जमा है तो एक धातुका पिंड मात्र है। यदि अपने ही लिये उपयोग होता है तो प्रशंसा की बात ही क्या है। लक्ष्मी सदा चंचल है एक दिन जावेगी तो अवश्य, यदि उसका उचित उपयोग नहीं किया गया तो यह दुर्भाग्य ही समझियेगा।

इस प्रकार अधिक संख्या ग्रामनिवासी भाईकी हैं जिनसे कम नगरों के मध्यस्थ स्थितिवाले लोगोंकी है और इनसे कम धनाढयों की है (जिनके पास आवश्यकता पूर्ति के लिये धन के अतिरिक्त अत्यधिक धन है) इन सबकी आयकी अवस्था कैसी है यह ऊपर वर्णन किया जा चुका है। जिनके जागीरोंकी आय हैं उनका भी समावेश धनाढयोंमें ही किया है इनके अतिरिक्त और कुछ सज्जन ऐसे भी हमारी जातिमें पा सकेंगे जिनके वास्तवमें आय कुछ नहीं है और या तो अपने संबंधियों की सहायता पर अथवा कर्ज ले लेकर अपना गुजारा करते है और अपना आलस्य तब तक नहीं छोडेंगे जब तक कि उन्हें वह सहायता वा कर्ज़ा मिलता रहेगा।

इसी तरह कुछ वृद्ध सज्जन, विधवाएँ तथा बालक तथा प्रमादी आलसी भाई भी हमारी जाति में ऐसे पाते हैं जो व्याज पर अथवा मूल धन में से खाकर अपना निर्वाह करते हैं।

चाहे अल्प संख्या में कहीं पा जावे किन्तु हाथ की मजदूरी वा दस्तकारी आदि से जीविका निर्वाह करना अपनी जाति में आदरयुक्त नहीं समझा जाता इस लिये इस प्रकार के व्यवसायी वहुत कम

मिलते हैं, जो दस्तकारी के कारखाने चलाते हैं। कोई छोटे छोटे चलाते हैं तो कोई बड़े बड़े चलाते हैं प्राक्त हमारे मारवाड़ी भाई इन कामों में बहुत कम मिलते हैं या तो कुछ गोटे के या कुछ अन्य वस्तुओं के कारखानेदार अत्यन्त अल्प संख्या में पाये जा सकते हैं।

देशी रियासतों में कुछ हमारे भाई ऐसे भी मिलते हैं जिनको केवल राज्य नौकरी पसन्द है। चाहे घर बैठकर कर्ज करके गुजारा कर लेंगे परन्तु व्यापार धन्धा कभी नहीं करेंगे। इसको तो करने में उनको कुल की आबरू को धक्का पहुँच जानेका भय है।

अब जरा बहुत बड़े बडे नगरों में रहनेवालों की ओर भी तो आवें। वहाँ जितने भी मारवाड़ी भाई रहते हैं सब आय के निमित्त ही। शायद ही कोई सैर के निमित्त रहते हों। कोई दलाली करते हैं तो कोई गुमाश्तगिरी करते हैं कोइ छोटी दूकानदारी करते हैं तो कोइ बड़े व्यापार करते है। इनमें बड़े व्यापार वाले जो बहुत कम हैं शायद ही कभी इस बात पर ध्यान देते हैं कि हम इतनी आय जो कर रहे हैं द्रव्य प्रतिवर्ष बढ़ा रहे हैं यह किस लिये बढ़ रहे है? इस से हमें कुछ हमारे सुख में भी वृद्धि हो रही है या नहीं। यदि दुर्भाग्य से घट रहे हैं तो इस (धंधा) व्यापार करने में क्या कोइ भविष्य में बड़ा लाभ मिलने वाला है? लेखकका तो ख्याल है कि लोगों का इस विषयमें कोई उद्देश्य नही रहता, कोइ सिद्धान्त नहीं रहता। बस एक जीवन का धर्म ही आय उत्पन्न करना समझ कर उसही में लगे रहते हैं। उसमें लगे रहनेकी कितनी आवश्यकता है इसका कुछ विचार नहीं रहता और उनके इस अविचारसे जीवन निर्वाहको कुछ सहायता नहीं

मिलती । छोटी दुकानदारीवाले गुमाश्तगिरी वा दलाली करनेवाले तो यहाँ तब ही रहते हैं जब मूल स्थानमें कोई आय नहीं होती इसलिये जितनी आय यहाँ रहने पर हो जाती है उसको अहो भाग्य मानते हैं । जीवन निर्वाहमें जो सुख दुःख उठाना पड़ता है वह तो भाग्यकी बात है यही हाल सब नगरोंमें बम्बई, कलकत्ता, मद्रास आदिमें देखा जाता है ।

इनको सदा ही खयाल भी रहता है कि हमारा यहाँ का निवास द्रव्य उपार्जनके निमित्तही है यदि यहाँ किसी भी उपायसे अधिक द्रव्य उत्पन्न हो जावे तो अपने निवास स्थान (मूलग्राम) जाकर सुखसे खाया करें, या बहुत ही ज्यादा हो जावे तो इस बड़े शहरकी सैर किया करे और सुखसे जीवन सब घरवालोंके साथ यहीं पर व्यतीत करें । इस खयालमें उनको न तो अपने आरोग्यका, न श्रमका और न अन्य किसी बातका विशेष खयाल रहता है किन्तु उस ध्यान में सट्टेकी तरफ ध्यान रहता है जिसके चुंगलमें फस फस कर अनेक बड़े बड़े धनाढ्य तथा कठिन परिश्रमसे उत्पन्न करनेवाले अनेक गुमाश्ते, दलाल तथा छोटे मोटे दुकानदार भी अपना द्रव्य बर्बाद कर देते हैं और भाग्यसे कोई इस व्यसनसे वा द्रव्य हानिसे बचते हैं ।

इस तरह बड़े बड़े व्यापारियोंकी संख्यामें हमारे स्वजातीय कम होते जाते हैं उनका व्यापार घटता जाता है तथा दलाल गुमाश्ते तथा छोटे दुकानदारोंकी आर्थिक स्थिति उन्नत नहीं होने पाती । जिनकी होती हो उनको भाग्यसे ही समझीयेगा ।

अब जरा व्ययकी और भी दृष्टि करें । चाहे बड़े व्यापारी हो वा छोटे दुकानदार, चाहे नौकर हो वा मालिक हो, चाहे बड़े नगरोंमें

रहते हों वा छोटे ग्राममें रहते हों, चाहे वृद्ध हो वा बालक हो और चाहे आय होती हो वा आय नहीं होती हो। यह व्यय ऐसी जबरदस्त वस्तु है जो यह तो नित्य ही चाहिये ही, चाहे थोड़ा करना पड़े वा ज्यादा करना पड़े परन्तु इसके किये बगैर हमारा छुटकारा ही नहीं है क्या इसके बगैर भूखे रहे, नंगे रहे, घर बार बिना रहे कैसे रहें। इस व्यय देवताकी गुलामीसे पिंड किसी भी प्रकार तो नहीं छूटता और उन पशुओंकी तरह जो यह भी विचार नहीं करते, मालिकको आवश्यकता है वा नहीं है। गाड़ीको गर्दन पर अपने आप उठाकर भागने लगते हैं और गाड़ी गर्दनपरसे अलग हो जाती है तो फिर फिर उस गर्दनपर उठाकर भागनेके उत्सुक रहते हैं। हम भी व्यय करनेके इतने अभ्यासी हो जाते हैं कि आवश्यकता और अनावश्यकताका विचार किये बगैर ही व्यय कर दिया करते हैं और इस प्रकार उस परिश्रमको हम वृथा गवा देते हैं जो हमें उस अनावश्यक व्यय किये हुवे द्रव्यके उपार्जनमें करना पड़ा था तथा जिस परिश्रमके फलस्वरूप प्राप्त द्रव्यका सदुपयोग कर उस परिश्रमको सार्थक सफलीभूत किया जा सकता था।

खेद तो इस बातका है कि इस विषयकी शिक्षामें कहीं भी स्थान नहीं दिया गया देखा जाता है। मनुष्यको कौन कौनसे खर्च अवश्य करना ही चाहिये? कौन कौनसे खर्चेमें कमी करते रहना चाहिये कौन कौनसे खर्च कमी करना चाहिये। इत्यादि शिक्षा यदि उचित रीतिसे मिला करे तो मनुष्यके जीवनको इतना कष्टमय न बनाना पड़े। कितनी ही चिन्ताएँ कम हो जावें।

हम लोगोंके भोजनमें जो व्यय होता है क्या वह सारा ही आवश्यक व्यय है? क्या वह उदर पूर्तिके निमित्त है? अथवा हमारी स्वाद लोलुपताकी पूर्तिके निमित्त है। यदि स्वाद लोलुपता किसी नगरसे उठ जावे तो संभव है कि वहांके औषधालय और जेलखाने सुनेसे नजर पड़ने लगे।

हमारे जाति के स्त्री, पुरुषों, बालिकाओं और बालकों के वस्त्रों पर जो व्यय होता है क्या वह उनका तन ढ़कने के तथा लज्जा ढकने के ही निमित्त होता है अथवा कोमल, चटक, मटक, रंग विरंगताकी शौकीनातमें व्यय होता है। यदि जाति के मनुष्य इस शौकीनात के फैशन के फ़ीतूर से किनारा कर ले तो निश्चय ही जातिमें से दुराचार की तो जड़ ही भस्म हो जावे।

यदि जाति के मनुष्य आभुषण तथा अन्य अलंकारों का तथा शृंगारों का त्याग कर दें तो निस्सन्देह जाति के मनुष्योंमें लोभ, लालच, असंतोषकी जड़ उखड़ जावे।

इस भांति दुर्व्यसन, विवाहोंमें किये जानेवाले अधिक व्यय, निरुपयोगी रस्मों को चालू रखनेमें निरर्थक व्यय और कीर्ति के भ्रममें जो व्यय किये जाते हैं यदि उनसे छुट्टी पा लेवे तो जाति में चोरी, ठगाई, बेइमानी करनेवाले बहुत ही कम पा सकें।

ओसवाल जाति के भोजन तो प्रसिद्ध हैं। इतने उत्तम बढ़िया भोजन कौनसी जातिमें बनाये जाते हैं। इतने स्वादिष्ट भोजन अन्य जातिमें कब बनाये जाते हैं? किन्तु यह अभिमान करनेकी कोई बात नहीं है बल्कि खेदकी बात है कि हम लोग जीभ के गुलाम अधिक हैं। भोजनमें तो तीन गुण पर्याप्त हैं। प्रथम वह अरोचक नहीं होना

चाहिये अर्थात खानेमें अरूचि उत्पन्न नहीं होना चाहिये । द्वितीय वह बलवर्द्धक होना चाहिये और तृतीय गुण तथा पाचन में उत्तम होना चाहिये । ऐसा नहीं होना चाहिए जिसकी प्रकृति पाचनमें अनुकूल न हो तथा किसी प्रकार का उदरमें या रक्तमें विकार उत्पन्न करनेका दुर्गुणी उस पदार्थमें न हो किन्तु हम लोगों में मिष्टान्न बगैर तो किसी का आदरसत्कार ही नहीं होता । और मिर्चमसालों बगैर तथा खटाई बगैर तो किसी शाक की स्वादिष्टता ही कहां होती है ?

ओसवाल जाति के पहनाव की ओर भी देखें तो कह सकते हैं कि हमारा पहनाव सादगी से बिलकुल खाली है । हमारे यहां की स्त्रियों की सजधज क्या वेश्याओं की सजधजसे कुछ कम है ? उनको तो इतनी सजधज जगतको अपनी ओर आकर्षित करने के लिये करनी पड़ती है, अपनी दूकानदारी के निमत्त करनी पड़ती है किन्तु अपने यहाँ की स्त्रियां भी घरसे बाहर यदि अपने को सजा धजाकर निकलती हैं तो इसमें क्या लाभ है ? एक सुअवसर पर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित स्त्रियों के झुंडको देखकर लेखकको यह विचार मनमें उठा कि यदि इनके आभूषणादिको द्रव्यरूपमें बदल कर उस रुपयेका व्याज ही उपजाया जावे तो उससे इस जातिके इस नगरनिवासी नवयुवकोंको बड़े बड़े उच्च शिक्षा दी जा सकती है । उसीमें से कन्याओं को उच्च शिक्षा दी जा सकती है और उसीमें से दीन पुरुषोंकी प्रतिपालना हो सकती है परन्तु आज तो उसके प्रतिकूल इस प्रकार की जो सजधज हो रही है उसका फल सजधज देखनेवालोंमें और सजधज करनेवालों में विलासिताके भावोंकी और भोगोपभोग के भावोंकी वृद्धिके सिवाय अधिक क्या है ? परन्तु ऐसे विचारों तक पहुँचनेमें अभी बहुत समय लगेगा ।

विवाहोंमें कितने व्यय उपयोगी और आवश्यक हैं? कितने वृथा आडम्बर हैं। अमुक रस्म तो अवश्य होना चाहिये चाहे उसमें कुछ भी तात्पर्य नहीं नजर आता हो चाहे उसमें किये जानेवाले खर्चोंसे विवाह आज सुखकारी किन्तु कुछ दिवस पश्चात् ही महा कष्टकारी प्रतीत होनेकी संभावना हो इत्यादि प्रकारसे लोग रूढ़ी भक्त होकर अनेक प्रकार के निरर्थक व्यय करते हैं। हमारे धनिक भाई जो उन अधिक व्ययोंको सहन कर सकते हैं जो निरर्थक व्यय करते हैं मुर्खतावश उनकी समानता करनेमें ऐसे अंधे हम लोग हो जाते हैं कि अपनी हैसियत कितनी है इसका कुछ भी विचार नहीं रहता और अनावश्यक व्यय कर डालते हैं।

विवाहों में राजस्थान के अनेक नगरों में और ग्रामों में अवतक भी वेश्यानृत्य (रांडियों का नाच) गाना वजाना आदि कराया जाता है जिसमें रुपया तो विलकुल व्यर्थ जाता ही है किन्तु इसके अतिरिक्त देखनेवाले भाई दुराचार सिवाय में सीखते हैं। जहाँ ये प्रथा वन्द कर दी गई हैं वहाँ पर वेश्या जातियों की संख्या कम होगई है वल्कि कहीं कहीं तो विलकुल भी नहीं रही है। जहाँ शोभाके वहाने से अभी तक वुलाई ही जाती हैं वहाँ अनेक युवक दुराचार ग्रस्त

---

१ व्यर्थ व्ययको निकालने में तथा गरीवोंका भी समाज में निभाव होने के लिये पालखेड़ (जिला नासिक) में संवत १९७७ के द्वि० श्रावण शुक्ल ५ को ऐसे प्रस्ताव पास किये गये हैं कि किसी की इच्छा न हो तो वह अपनी वेटी के व्याह में आसपास के गांववालों को कुंकुम पत्रिका नहीं देवे। सिर्फ गांव में प्रत्येक स्वजातिय के घर १-१ सेर गुड़ वांट देवे, कच्ची रसोई द्वारा ही जातियों को जिमावे, सेवग ब्राह्मण जो विवाह में काम करते हैं उन्हें जिमावें।

नासिक जिलेमें विवाहमें त्याग १०१ से ज्यादह सेवकों को नहीं दिया जाता। सेवकों को ओसर मोसरमें पक्की रसोईमें वारह आनेसे ज्यादह नहीं मिलते।

पावेंगे। इस पर भी जहां के लोग इस को बन्द नहीं करते उनकी क्या प्रशंसा की जावे ! घर में रुपये की बचत हुवे, दुराचार फैलने से रूके और समझदार लोग प्रशंसा करे ऐसा कार्य करने में जो गफलत रखे उसके बराबर महा समझदार और कौन हो सकता है। जाति में धनी भी होते हैं, गरीब भी होते हैं और मध्यस्थ स्थिति के भी होते हैं सब बराबर स्थिति के नहीं होते। इसके अतिरिक्त जहां जाति के मनुष्यों की जन संख्या अल्प होती है वहाँ तो समस्त जाति को एक साधारण गृहस्थ भी जिमा सकता है। किन्तु जहां अत्यन्त अधिक संख्या हो वहाँ मध्यस्थ स्थिति का गृहस्थ भी शायद ही जिमा सके। जहां पर बढ़िया भोजन बनाने की रीति अनिवार्य हो तथा मय नौकरों चाकरों के जीमने आने की रस्म हो वहाँ तो केवल धनिक ही जीमण कर सकते हैं किन्तु कितने ही कम समझ भाई प्रायः ऐसे ताने मार दिया करते हैं कि जिससे ऐसे खर्चीले जीमण मध्यस्थ और असमर्थ स्थितिवालों को भी करते देखा जाता है पश्चात् इन भाईयों को कजक बोझ से कष्ट पाते भी देखा जाता है, जायदाद (मकान) भी बेचते देखे जाते हैं गहन रखते देखे जाते हैं। इस दशा में इन जीमणों के कारण मुल में एक तो वह ताना जनी ही है और दूसरी वजह ताना जनी करनेवालों के तानों से वृथा दबना है और बहु व्यय कर देना है। जातीय जीमण कोई सौदा नहीं हैं। लेने को देने स्वरूप नहीं हैं। वह तो प्रेम व्यवहार है। एक प्रेम से बुलाता है दूसरा प्रेम से स्वीकार करता है। यह आवश्यक नहीं है कि बदला चुकाने के निमित्त उन बुलानेवालों को अवश्य बुलाया जावे। अपनी स्थिति योग्य हो उतने ही बन्धुओं को

निमंत्रण करना तथा अपनी स्थिति के योग्य ही सामग्री बनाना उचित है। यदि बदला चुकानेका हिसाब समझा जावे तो उतनी ही बार उनको बुलाना चाहिए। न्यूनाधिक बार नहीं। उतना ही केवल खिलाना चाहिए न्यूनाधिक नहीं। वैसी ही और वही वस्तुएँ खिलानी चाहिए अन्य नहीं। यह सौदा वा बदला कितना हीन दृष्टि गोचर होता है, कितना असुविधा जनक होता है, कितने पतित विचारों का प्रदर्शक है! उसके प्रतिकुल में वह प्रेममय निमंत्रण और स्वीकृति कैसे उच्च सहानुभूति पूर्ण वर्ताव की द्योतक है। अतएव जो व्यय दबाव से किया जाता है और कराया जाता है यह एक प्रकार का अनावश्यक व्यर्थ व्यय ही है। यदि अपनी स्थिति से अधिक व्यय स्वेच्छा से किया जाता है तो वह भी अनुचित है क्योंकि उससे भविष्य में कष्ट उत्पत्ति की ही सम्भावना है।

इस प्रकार विविध प्रकार के विविध व्यर्थ व्यय स्थान स्थान पर रूढियों में फसकर लोग करते हैं। कहीं भाट बुलाये जाते हैं जो अश्लील मजा के दिखाते हैं और द्रव्य ऐंठ लेते जाते हैं। कहीं बागबहारी लुटाई जाती है जिसको लूटने में अनेक मनुष्यों को चोटे आ जाती हैं। कहीं कितने ही सँड मुस्टँड लोगों को जो रात दिन निकम्मे बैठे रहते हैं कीर्ति के नाम पर रूपये बाटे जाते हैं और इस तरह उनकी मुफ्त खाने की आदत बढ़ाई जाती है। इत्यादि अनेक प्रकार के व्यर्थ खर्चे कोई अपनी इच्छा से, कोई जाति की प्रचलित रूढियों से और कोई दबाव के कारण किये जाते हैं जिनसे यदि चाहें तो छुटकारा हो सकता है।

इसी तरहकी निरर्थक और निर्लज्ज रस्म आगरणी की है जो गर्भ रह जाने पर और बालक जन्मनेके पूर्व प्रायः की जाती है। जितना रस्म की योग्य पालन करने में खर्च किया जाता है यदि उतनाही खर्च गर्भवती की योग्य सम्हाल रखने तथा प्रसव कालमें उत्तम सम्हाल करने पर किया जावे तो वह स्त्री और बालक अनेक संकटों से वच सकते हैं। उत्तम स्वास्थ्य युक्त हो सकते हैं। उनके शरीरमें यथेष्ट शक्ति संग्रह हो सकती है किन्तु उनके लिये व्यय शायद पास में नहीं पाता है किन्तु उस आगरणीके जीमण करने के लिये पाजाता है। मानो इस गर्भ रह जानेका ढिंढोरा पीटा जाता है। क्या नवीन वात हुई है जो ढिंढोरा पीटा जावे। स्त्री पुरुषोंके सन्तान उत्पन्न हुआही करती है।

इसके अतिरिक्त सवसे अधिक भयंकर और घातक मोसरकी प्रथा के पालन में जाति इतना व्यर्थ व्यय करती है कि जिससे अनेकों परिवार दुख पाते हैं और इस व्यर्थ व्ययको मजबूर होकर करते हैं।

जो जाति ऐसी अहिंसा धर्मी है कि यदि कोई कीड़ी, मकोड़ा आदि अपनी मत्युसे भी मर रहा हो तो उसको खेद उत्पन्न होता है वही जाति एक अपने वीचमें रहने वाले मनुष्य के मरने पर मिष्टान्न उड़ाती है यह कितना निर्दयता और निर्लज्जता का कार्य है। यदि कोई मनुष्य चाहे वृद्ध होकर मरा है तो क्या यह हर्षका विषय है? मृत्यु चाहे शत्रुकी ही हो खेद ही का विषय है किन्तु हम लोगों ने उस खेद के उपलक्ष में मिष्टान्न खाना स्वीकार कर कैसा अनर्थ किया है और कर रहे हैं। भोजन का सवंध चितके हर्ष के साथ है किन्तु हमने स्वाद लोलुपता के वश होकर मृतक के नाम पर मिष्टान

खाना खिलाना आरम्भ कर दिया है। हमारे हृदय की पवित्रता इससे कैसी झलकती है। इसके अतिरिक्त इस अनावश्यक रिवाज के (मोसर) करने में कितने लोगोंका गाढ़ी परिश्रम की कमाई का व्यर्थ व्यय होता है कितने को घरबार गहन रखने पड़ते हैं यह अलग है इस व्यर्थ व्ययमें ग्रस्त लोग स्वाद लोलुपता और रूढ़ि भक्ति के कारण अत्यन्त दुखी हो रहे हैं पर उनसे यह बुराई नहीं छोड़ी जाती। लोग इस व्यर्थ व्यय करनेके लिये अनेक न्याय विरुद्ध कार्य कर लेते हैं और अनीति का द्रव्य संग्रह कर लेते हैं परन्तु इस बुराई को अवश्य करते हैं क्योंकि उनके विचार में यह मृत्युकों की सेवा है! और भक्ति है!! मृतकों की सेवा भक्ति यदि किसी प्रकार से हो सकती है तो उपाय है (१) उनके सिर पर शेष रहे हुवे ऋण [कर्ज] को अदा (चुकता) कर देना (२) मृतक आत्मा की भक्ति मानकर ही अति दीन दुखी लोगों की सेवा करना, शुश्रूषा करना और उनके दुख को कम करना। इस मोसर निरर्थकता पर उपर भी बहुत कह दिया गया था इसलिये इसके विषय में सिर्फ इतना ही और कह देना काफी है कि इसमें जो व्यय किया जाता है वह अनावश्यक और व्यर्थ व्यय है।

ऊपर जो अनेक प्रकार के हानिकारक, और अनावश्यक व्ययोंका जिक्र किया गया है उससे लेखक का तात्पर्य यही है कि इन व्यर्थ व्ययोंकी अनावश्यकताओंको हमें समझ लेना चाहिये। और जो द्रव्यके लिये वृथा श्रम करते थे और उपार्जन करते थे उस कष्टसे बचना चाहिये और उस समयको स्वजाति हितके कार्योंमें, देशहितके कार्योंमें अथवा संसारके हितके कार्योंमें लगाना चाहिये।

जिस तरह हमारी गफ़लनसे हम अनेक प्रकारके अनावश्यक व्यय करते हैं जिनकी ऊपर आलोचनाकी है। उसी तरह हमारी गफ़लतसे हम अनेक प्रकारके आवश्यक कार्योंमें बहुत कम व्यय करते है यह भी उससे भी अधिक बड़ी बुराई है।

हम लोग अपने स्वास्थ की शुद्धता और वृद्धि के निमित्त उपर्युक्त खर्च नहीं करते हैं तंग, गन्दे, बगैर खुली हवा के मकानों में रहनेसे हमको नफरत नहीं होती और हम सस्ते भाड़ेके मकानों में रहकर वैद्य डाक्टरों को रुपये ठगाते रहते हैं। हम लोग सस्ते विदेशी वस्त्र खरीद २ कर अपने देशके कतैयों, जुलाहों को हानि पहुचाते हैं और उनको लाभ पहुचाते हैं जो हम पर बल पूर्वक शासन करते हैं। हम लोग जाति के लाभ निमित्त खली पाठशालाओंमें, बोर्डिंग हाउसो में, गरूकुलों में, सभाओं में, समितियों में, अनाथालयों में इतना कम द्रव्य दिया करते हैं कि उनकी स्थिति धनाभाव के कारण प्रायः दुर्बल रहती है। जब तक हमको आकर किसी ने नहीं कहा हो हमने किसी संस्थाको यथाशक्ति द्रव्य प्रदान किया हो, ऐसा स्मरण शायद ही हमको है। यदि किसी के बगैर मांगे हमने दिया होता तो वास्तव में हमारी अपनी जाति के प्रति अपनी सच्ची लगन प्रकट होती, यदि किसीके मांगनेपर हमने दिया है तो विशेष प्रशंसाका काम हुवा ही क्या है परन्तु किसी के मांगने पर भी यदि जाति हितके काम करनेवाली संस्था को या व्यक्ति को हम सहायता नहीं करें तो यह हमारे लिये खेद जनक और लज्जास्पद है। वर्तमान काल में प्रथम तो जाति के लिये कार्यकर्ताओंका ही अत्यन्त अभाव सा ही है, और जो इने गिने कार्यकर्ता हैं उनके प्रयत्न से यदि कुछ संस्थाएँ जाति

हित निमित्त खुली हैं जो भी यदि धनाभाव से रूखी सूखी रहें तो उन संस्थाओं के कार्यकर्ताओं का उत्साह कैसे बढ़ सकता है। नवीन कार्यकर्ता कार्यक्षेत्र में कहां से और कैसे आ सकेंगे। जाति में तो अविद्या का खूब पसारा हैं। अनेक कुरितियाँ नित्य जाति का रक्त शोषण कर रही हैं और जातियाँ छोटी से लेकर बड़ी से बड़ी तक उन्नति की दौड़ में आगे निकल जानेको प्रयत्न शील हो रही है। कन्याओं के लिये जाति में योग्य वर नहीं मिलते, कारण कि योग्य बनाने के प्रयत्न और साधनों की ही कमी है। अनेक युवक नौकरी धन्धों के निमित्त इधर उधर तलाश में फिरते हैं पर योग्य धन्धा हाथ नहीं आता, लोगों की तन्दुरस्ती घटती जा रही है, शरीरबल घटता जा रहा है, ऐसी दशा में ओसवाल जाति हितकारिणी सभा समितियों की कितनी आवश्यकताएँ हैं ऐसी सभा समितियें स्थान स्थान पर प्रान्त प्रान्त में और एक सारे देश भर की खुलने की परम आवश्यकता है। जब हम अपने व्यय में ऐसे व्यय को स्थान देकर जातीय संस्थाओं को निश्चित रूप से सहायता देंगे तब ही विचार सफल होवेगा।

हमारी जाति महाजन नामसे भी संबोधितकी जाती है। तदनुसार हमको अनेक महत्व प्राप्त करनेका आदर्श हृदयमें अंकित रखना चाहिये। यदि इतना हमसे किसीसे कभी नहीं भी हो सके तो कमसे कम महाजनके प्रचलित व्यवहारिक अर्थको तो चरितार्थ करते ही रहना चाहिये। अन्य वर्गोंकी अपेक्षा आर्थिक बुद्धिमें महाजन विशेष चतुर समझे जाते हैं। धनोपार्जन सब वर्ग करते हैं किन्तु आर्थिक स्थिति महाजनों जैसी किसी अन्यकी उतनी उन्नत नहीं रहती जिसका

कारण यह है कि महाजन लोग द्रव्य उपार्जनमें जिस तरह चतुर होते हैं उसी तरह व्यय करनेमें भी चतुर होते हैं किन्तु अन्य वर्ग उतने चतुर नहीं होते हैं और उन्हें अन्तमें महाजनोंके पास कर्ज़ लेनेके लिये आना ही पड़ता है।

अन्य महाजन कहलानेवाली जातियोंकी अपेक्षा हमारी ओसवाल जाति इस गुणमें पीछे है जिसका कारण हमारेमें अपनी क्षत्रिय काल की मानसिक परिस्थिति है जो वंशानुक्रमसे चली आती है जिसके ही कारणसे हममें अपनी जाति, वंश और कुलकी परिस्थितिके गौरवका (आत्म सन्मानका) भाव बना हुवा है और उसके कारण हम अनेक धंधोंमें प्रवृत्त होना पसन्द नहीं करते हैं चाहे उनके करनेमें किसी प्रकारकी अनीति वा हिंसा से हमे दूषित नहीं होना पड़ता। इस प्रकार हम आयके विषयमें अन्य महाजन जातियोंसे पीछे रह जाते हैं और इसी प्रकार हम व्यय करनेमें भी अधिक मजबूर उसी कारणसे होते हैं। पूर्व गौरवकी रक्षाके निमित्त तथा वंशानुक्रम के स्वभावसे कितने ही प्राकारके व्ययों के हम आदी हो गये हैं।

इस प्रकार आय में कम और व्यय में अधिक रहने के कारण आर्थिक स्थिति में अन्य महाजन जातियों की अपेक्षा हम लोगों में महाजनी कम है। लेखक का तो मत यह है कि जो हममें पूर्वजों के प्रताप से आज भी आत्म सन्मान का भाव विद्यमान (मौजूद) है। यह हमारा सौभाग्य है । यदि चतुराई से उसका उपयोग किया जावे तो वह भाव हमको भावी उन्नति के निमित्त प्रोत्साहन भी दे सकता है । आय में बाधा नहीं पहुँचा सकता और न निरर्थक व्यय ही हमसे कराता है।

किन्तु जब हम उस भाव की अति कर देते हैं तो वह आत्म सन्मान से परिवर्तित (बदल) होकर मिथ्याभिमान हो जाता है जो हम लोगों को वास्तव में अनेक प्रकार से बाधक ही होता है।

"अर्थ" के विषयमें विचारोंमें आज इतना अनर्थ बढ़ गया है कि उसके कारण व्यक्ति, जाति, देश और जगत् भी भारी संकटमें हैं। जिसने अर्थ ही को सब कुछ मानलिया है और इसके लिये वह अन्य लोगोंके साथ यहाँ तक कि अपने भाईके साथ भी द्रोह, ठगी और कलह करता है वह स्वयं बर्बाद होता है, और संसारमें कष्टका प्रचार करता है इसलिये कष्ट बढ़ते ही जा रहे हैं। दूसरी ओर जो अर्थको अनर्थका मूल समझ कर द्रव्योपार्जन नहीं करता है वा प्रमादसे, आलस्यसे कुछ भी परिश्रम न करता है वह भी संसारमें संकट अधिकाधिक बढ़ा रहा है। इस सबका सार यह है कि व्यय अनावश्यक नहीं करना चाहिये। व्ययकी पूर्तिके लिये परिश्रम करना चाहिये और अत्यधिक आयके लिये अनीति करना नहीं चाहिये।

(इ) विवाह और कुटुम्ब:—

आरोग्यता तथा भोजनादि मनुष्यकी अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं। चाहे उतनी आवश्यक नहीं सही किन्तु विवाह भी मनुष्य के लिये एक आवश्यकता ही है।

क्षुधादि (भूख, प्यास, वगैरह) रोग तो हममें जन्म काल से ही उत्पन्न हो जाते हैं, जिनका निवारण हम खा पीकर नित्य प्रति कर लिया करते हैं। यह (कामवासना का) रोग कुछ उम्र हो जाने पर निकलता है, जब कि इतनी समझ हममें आ जाती है कि अमुक कार्य में बड़ा आनन्द है और अमुक कार्य में बड़ा कष्ट है।

उस ही उम्र में आनन्द प्राप्ति के उदाहरण स्वरूप अनेक प्रकार की बातचीत इधर उधर सुनते रहने से, अनेक प्रकार के दृश्य दृष्टि गोचर होते रहने से, पढ़ने वाचने से इस विषय के प्रसंग (कथादि) आने से तथा इसके साधन आसपास नजदीक दृष्टि गोचर होने से मन में उस आनन्द को चख कर अनुभव लेनेकी उमंग उत्पन्न होती है। यदि साधन प्राप्त सहज में हो जाते हैं तब तो उस आनन्द के स्वाद का मनुष्य अधिकाधिक लोलुप बनता जाता है क्योंकि मनुष्य स्वभाव ही से आनन्द की तलाश करनेवाला होता है और उसका स्वाद चखनेवाला होता है। वह वासना बढ़ती ही रहती है ज्यों ज्यों उसकी पूर्ति की जाती है। खुजली कुचलने पर जिस तरह दूनी बढ़ती है उसी तरह कामवासना भी भोगोपभोग से बढ़ती ही है। किन्तु जिस तरह भोजनसे पेट भर जाता है किन्तु स्वाद लोलुपता नहीं मिटती और पेटमें जगह हो तो और अधिक खानेको हम तैयार रहते हैं। उसी तरह भोगादिसे वासना दूर नहीं होती। इन्द्रियाँ अन्तमें अवश्य जवाब दे देती है और उस समय शरीरसे भोग करनेको हम असमर्थ हो जाते हैं और भोगादिका सहज त्याग हो जाता है तथापि मन तो यही चाहता है कि पुनः वही यौवनावस्था (जवानी) हमको मिल जावे और इन्द्रियां सशक्त हो जावे और खूब विषयभोग भोगें और आनन्दका स्वाद लिया करें। इसके निमित्त अनेक प्रकारके धातुओंकी फूंकी हुई औषधियाँ भी खाया करते हैं जिन से कभी तो शक्ति प्राप्ति हो जाती हुई भी देखी जाती है किन्तु बहुधा अनेक रोग ऐसे उत्पन्न हो जाते हुवे भी देखे जाते हैं जिनका कष्ट उस आयुमें सहन नहीं कर सकनेसे मृत्यु तक हो जाया करती है, अथवा शरीर या मस्तिष्क बिगड़ता हुवा भी प्रायः देखा जाता है।

यदि प्रारंभ ही से ऐसी ही प्रत्येक बात चीत सुननेको मिले, ऐसे ही कार्य देखनेको मिले, ऐसा ही वांचना पढ़ना आदि मिले जिनमें कामवासनाका, विषययुक्त प्रेमका और आनन्देच्छा का परिचय करानेका प्रभाव न हो और ऐसे ही भोजनादि तथा बर्तावके प्रत्येक पदार्थ प्राप्त होवे तथा ऐसी ही चारों ओरकी परिस्थिति होवे जिसमें कामोत्पत्ति करनेवाला कोई प्रभाव नहीं हो, मनुष्यके मनमें काम जागृति नहीं हो सकती और वह मनुष्य आयुपर्यन्त निर्विषयी रह सकता है। उसी अवस्था में यदि उत्तम शिक्षा, संगति, आत्मज्ञान और आत्मोद्धार के निमित्त उचित अभ्यास और समय (आयु) प्राप्त हो जावे तो मनुष्य अपनी साधना से परम सिद्धि भी साध सकता है और नर से नारायण भी हो सकता है। इसी हेतु से पूर्वकाल के महर्षियों ने आजन्म ब्रह्मचारी रहनेवालों की वीरता की बड़ी प्रशंसा की है और धर्म शास्त्रों में ब्रह्मचर्य पालन के महान् फलवर्णन किये हैं। उन्होंने जिस ब्रह्मचर्य को ब्रह्मचर्य बतलाया है वह यह नहीं है कि स्त्री पुरुष केवल परस्पर शरीर से न भोगे किन्तु उस वास्तविक ब्रह्मचर्यका स्वरूप यह है कि स्त्री या पुरुष (एक दूसरे को) मन में भी, वचन में भी और शरीर से भी कभी काम भाव का (एक दूसरे में से आनन्द का) विचार भी नहीं लावे, वचन भी नहीं बोले और शारीरिक स्पर्श भी नहीं करे (आनन्देच्छा से स्पर्श न करे)। उसी प्रकार मन के भाव और वचन और काया के व्यवहार रखें जिस तरह कि प्रत्येक भाई और बहिन परस्पर रखा करते हैं। ब्रह्मचर्य पालन करनेवालों के लिये संसार के सब स्त्री पुरुष भाई और बहिन

के ही समान हैं। इस प्रकार के मन, वचन, कर्म के व्यवहार रखते हुवे जो ब्रह्म में (अर्थात् आत्मानन्द में) लीन रहता है आनन्दी अर्थात् परम सुखी रहता है वही वास्तविक ब्रह्मचारी है।

किन्तु जिनकी कामवासना विविध कारणोंसे उत्पन्न तो होती है उसके साधन उन्हें प्राप्त नहीं होते हैं उनको अनेक प्रकारकी शारीरिक नैतिक और मानसिक हानियां हो जाती हैं। उनके शरीरमें कितने ही तरहके रोग हो जाते हैं। उनके मस्तिष्कमें विकार होने लगता है और वे दुराचार में भी प्रायः प्रवृत होने लगते हैं। जिस तरह कि भूखा मनुष्य भोजन अधिक काल तक नहीं मिलने से भोजन चुरानेके लिये अथवा छीन झपट लेनेके लिये मजबूर हो जाता है और ऐसा नहीं करता है तो अपना शरीर बल तो अवश्य कम ही कर देता है।

किन्तु ब्रह्मचर्य पालनका व्रत करके यदि कोई मनुष्य शरीरसे तो काम भोग सेवन नहीं करता है किन्तु मनमें तो विषय भोगकी चिंतवना किया करता है तो भगवद्गीता की मान्यतानुसार तो वह महापापी[1] है।

इस कामोत्पत्तिके अतिरिक्त मनुष्यके स्वभावमें निजवंश अस्तित्व की भावना भी प्रायः किन्हीं प्रकारोंके संस्कारोंके वश अथवा प्रकृति देवीकी लीलाके वश अवश्य रहती है। मनुष्य यह चाहता है कि संसारमें मैं सदा जीवित रहूं। परन्तु यह असम्भव है क्योंकि सब ही मनुष्य संसारमें मरते हैं तो मैं कब बच सकूंगा। तथापि

---

१ जैन शास्त्रोंके अनुसार भी पापी है। क्योंकि जैन धर्ममें भावोंसे ही पुण्य और भावोंसे ही पाप होता है। "भावो हि पुण्याय मतः शुभः पापायचा शुभः"

यह तो सम्भव है कि मैं नहीं मेरा वंश इस संसारमें हमेशा रहे और सुख पूर्वक रहे। अपना वंश कायम रखनेकी इच्छा से वा कहा जा सकता है कि वंशके रूपमें अपने आपको कायम रखनेकी इच्छासे तथा वृद्धावस्थामें सेवा सहायता प्राप्त करनेकी इच्छासे, सन्तानकी ईच्छा किया करता है। जिसमें भी पुत्र की अधिक करता है क्योंकि वह तो वृद्धावस्थामें उसके ही पास में रह कर सेवा भी कर सकेगा और कन्या तो कर नहीं सकेगी। और वंशका नाम भी तो वह ही कायम रख सकेगा और वंश को आगे चला सकेगा। इस प्रकार सन्तान की ईच्छा मनुष्य हृदय में एक विशेष स्थान रखती हैं। प्रकृति देवीने मनुष्योंके हृदय में सन्तानेच्छा रख कर और अपने वंश रक्षा की ईच्छा न केवल मनुष्यों के हृदयों में किन्तु पशु पक्षियों तक के हृदयों में रख कर और इस प्रकार उनको सन्तान प्रेम के वश कर के उनसे सन्तान पालन का परिश्रम करा कर इस संसार को चलाते रहनेका कैसा अद्भुत कौशल दिखाया है।

इन्हीं तीनों कारणों से अर्थात् एक तो संसार की परिस्थिति में कामवासना से बचना अत्यन्त दुष्कर होने से, दूसरे कामवासना की पूर्ति में तात्कालिक आनन्द अनुभव होनेसे और तीसरे उसकी सन्तानेच्छा भी कामवासना की पूर्तिसे ही सफल होनेकी सम्भावना से मनुष्य जातिने धर्म शास्त्रोंपर श्रद्धा रखते हुवे भी ब्रह्मचर्यको स्तुत्य और ब्रह्मचारियों को पूजनीय मानते हुवे भी ब्रह्मचर्य को केवल इतने से रूप में व्यवहारिक स्वीकार किया कि मनुष्य केवल उसी स्त्री या पुरुष से परस्पर संभोग कर सकेंगे। जिनके विवाह की अर्थात् जिनके सम्बन्ध की स्वीकृति जनसमुदाय के सन्मुख और एक निश्चित

विधिपूर्वक रीति रस्म हो करके हुआ करेगी। जो इस नियमके विरुद्ध कोई चलेंगे वे समाजमें अपराधी माने जावेंगे। इनका संभोग कार्य व्यभिचार अर्थात् नियम विरुद्ध समझा जावेगा और वे घृणा की दृष्टिसे देखे जावेंगे और निन्दनीय और दंडनीय होंगे और जो विवाह करके परस्पर उक्त कार्य करेंगे वे सदाचारी समझे जावेंगे।

उधर महर्षियोंने देखा कि जनता का जो निर्णय है सच्चा है। अपनी दृष्टिमें ब्रह्मचर्य सर्वोत्कृष्ट वस्तु है किन्तु यदि पूर्ण रूपमें उसे नहीं पाल सकते तो ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप जनता पर लादना उचित नहीं है। किन्तु जिस रूपमें सबही पालन कर सकते हैं उसी रूपको सब जनताके लिये "धर्मानुकूल" निश्चित करना उचित है। इस प्रकार विवाह संस्कारपर धर्मकी भी मोहर लग गई और विवाह संस्कारके द्वारा पुरुष धर्मपति और स्त्री धर्मपत्नी कही जाने लगी।

संसारके समस्त देशोंमें इसी प्रकार के निर्णय हो हो कर व्यभिचार बन्द हुवे हैं। सद्व्यवस्था बढ़ी है और धर्म का पालन हुवा है। असभ्य जातियों तक में यह प्रथा फैल गई है जिससे समाजकी रक्षा हुई है।

इस प्रकार विवाहको सदाचार और धर्मका आश्रय मिल जानेपर भी कई एक लोगों ने ब्रह्मचर्य के लाभ समझ कर उसके संबंधमें व्रत लिया है और आज भी ऐसे अनेक पालन करनेवाले अनेक देशोंमें स्त्रीपुरुष मौजूद हैं। वैसे ही संसारमें अनेक व्यभिचारी भी मौजूद हैं जो घृणा की दृष्टिसे देखे जाते हैं और निन्दित तथा दंडित भी होते हैं।

इस प्रकारसे विवाह भी मनुष्य के जीवनका एक अत्यन्त महत्व-

पूर्ण सुअवसर है। और उसके महत्त्व के कारण ही उस अवसरपर यथासंभव धूमधाम करने की प्रथा भी सवही देशोंमें प्रचलित हो गई है।

इसी आर्यावर्त (भारतवर्ष) में एक समय ऐसा था जव विवाह उद्देश्य को लक्ष्यमें रखकर किये जाते थे। वर और कन्याकी रुचि देखकर ही उनका विवाह करते थे और जिस गुणमें जिसकी अधिक रुचि देखते उसी गुण के वर कन्याओंका परस्पर लग्न किया जाता था। यदि कन्याको पढ़ने, लिखने, आदि की अधिक रुचि देखते तो उसके लिये वैसाही वर खोजा जाता था। यदि वरमें वीरता का भाव अधिक देखते तो कन्या भी साहसी स्वभाव की खोजी जाती थी। यही कारण था कि उनकी सन्तान किसी विशेष गुणमें प्रवीण होती थी। उनका विवाह भी तब ही किया जाता था। जब विवाह करने की आवश्यकता को उनके मातापिता अनुभव करने लगते। अन्यथा उनके शरीरको, वीर्यको, विद्याको, बुद्धिको और संसारके विविध क्षेत्रों के अनुभवको बढ़ने देनेका खूब मौका दिया जाता था। तब ही महान पुरुष उन युगलों के द्वारा संसारमें उत्पन्न होते थे।

इस जमाने में तो विवाह का मोह हो गया है। माता पिता विवाह करने के लिये उत्सुक रहते हैं और जहां तक शीघ्र हो सके वालक वालिकाओं का विवाह कर अपने कंधेका वोझ उतारने की कोशिश करते हैं। उस शुभ अवसर को देख कर जीवन सफल कर लेनेको लालायित रहते हैं और शीघ्र ही पौत्र (पोता) देखने के लिये भी उमंगें रखते हैं।

किन्तु कम उम्र में विवाह कर देनेसे उनका शारीरिक विकास

रूक जावेगा, अधपका वा कच्चा वीर्य पतन होनेसे वीर्य सदा के लिये पतला पड़ जावेगा, गर्भ रह जावेगा तो बालिका कष्ट सहन नहीं कर सकेगी। इस उम्र के स्त्री पुरुषों की सन्तान सबल उत्पन्न नहीं होगी। बालक पिता न बनेगा। पढाईका श्रम न कर सकेगा और स्त्री प्रसव काल में से उठ खड़ी हो सकेगी वा नहीं इत्यादि का माता पिताको कुछ ज्ञान नहीं होता और अज्ञान वश सन्तान को विवाह देते हैं और सन्तान को संकटपूर्ण जीवन बिताने को मजबूर कर देते हैं। सगपन के पहिले निम्न लिखित बातोंपर अवश्य ध्यान देना चाहिए:—

१—वर कन्याकी आयु, शरीर, स्वास्थ, आचार, स्वभाव, रूप, धर्म, कुल और बुद्धिका विचार।

२—कन्याके पिता को ध्यान देने योग्य:—

१—कमसे कम लड़कीका विवाह १३ वर्ष पहले न करे, और वह २० वर्षके लड़केके साथ सगपनके समय विवाह योग्य आयुका विचार पहले कर लेना उचित है। १३ वर्षकी लड़की ३० वर्षके लड़केको नहीं ब्याहे।

२—वर का शरीर निरोगी, हृष्ट पुष्ट होना चाहिये उसे किसी प्रकारका व्यसन नहीं होना चाहिये।

३—वरकी कुल परीक्षा अवश्य करना चाहिये, जिनको अपनी कन्या देना हो उनके ज्ञात हो सके उतनी ४—५ पीढ़ियों तकका इतिहास उनका आचार, सदाचारता, सांसर्गिक रोग, उपदंश, प्रमेह, कोढ़, बवासीर क्षय आदिकी तलाश करना चाहिए।

४—कन्याके अनुरूप रूप वरका होना उचित है। यदि ऐसा न हो सके तो सुस्वरूप कन्या साधारण रूपवान् लड़केके साथ सगपन करनेमें हानि कम है। कन्या सुन्दर सौंदर्यशाली और लड़का कुरूप बुरी सूरतका अच्छा नहीं।

५—वर—लड़का की बुद्धि, विद्या अध्ययनका ध्यान रखना ज़रूरी है।

६—दस वीस हजारकी पूंजी होना परमावश्यक है। यदि लड़का योग्य और कमाऊ है तो पूंजीकी कोई आवश्यकता नहीं।

७—कन्याको अपने गांवसे दूर ऐसे गांवमें देना उचित है। पहले एक कन्याको जिस गांवमें दी हो वहां दूसरी नहीं देना तथा एक घरमें पहले दी हुई कन्याके घरमें दूसरी कन्या नहीं देना।

८—जिस गांवमें कन्या देना हो वह गांव कुछ बड़ा हो, वहांपर समाजके कमसे कम १०—२० घर अवश्य चाहिये।

९—अपनी कन्याके स्वभावको जानकर लड़केका स्वभाव देखे।

१०—सर्वथा अपनी कन्याको इस लड़केसे सौख्य मिलेगा ऐसा विश्वास होनेबाद सगपण करे, शेष सारी बातोंसे वरकी जांच अच्छी होना चाहिये क्योंकि घर हानिकी कोई चिन्ता नहीं, पर वर हानि नहीं चाहिये। वरकी योग्यताका अधिक विचार करें।

३—बेटेके बापको निम्न लिखित बातें ध्यानमें रख सगपन करना उचित है ।

१—लड़की निरोगी, सुशील, परिश्रमी, मितव्ययी, विनय-लज्जा और मर्यादायुक्त, विलासहीन, सादी, सरल है वा नहीं ?

२—लड़कीके कुलमें, वंशमें परंपरागत अपस्मार, प्रदर, कुष्ट, बवासीर आदि रोग है वा नहीं ? कन्याके २—४ पीढ़ियोंका इतिहास, आचार, धर्मकी तलाश करना उचित है ।

३—कन्याके मातृ पक्षमें कोई सांसर्गिक रोग है वा नहीं ?

४—कन्याको बन्धु अधिक है वा भगिनी ? वा भ्रातृसौख्य है वा नहीं ? कन्याके मातुल पक्षका भी इसी प्रकार विचार करे । अधिक बन्धु होना आवश्यक है ।

५—कुल परीक्षाके लिये कन्या विक्रय तथा वृद्ध विवाह इनके घरमें हुआ है वा नहीं ?

६—लड़केके स्वभावके विरुद्ध लड़कीका स्वभाव होना अनुचित है ।

७—रूपविभिन्नता भी कभी कभी दुःखदायक होती ।

बड़ी बड़ी बातोंका उल्लेख हो चुका है। ज्योतिष सामुद्रिक द्वारा भी शुभाशुभ लक्षण देखे जाते हैं । किन्तु इस जमानेमें समाजकी वर्तमान हालत देखते उतने कड़े नियमोंकी कोई जरूरत नहीं है । अब तो किसी प्रकारके जांच की कोई जरूरत ही नहीं ऐसी परिस्थिति निर्माण हो रही है, अस्तु । अधिक नहीं तो उपरोक्त बातोंका विचार

वर कन्याकी जांचके समय किया जाय तो वे अपनी ज़िम्मेवारीसे मुक्त हो सकते हैं।

ऊपरोक्त बातों की ओर लक्ष कम देने से ही हम लोगों की शारीरिक शक्ति अत्यन्त कम होती है। हम लोगोंकी स्त्रियों की तन्दुरुस्ती और उम्र कम होती हैं। और हममें से अनेकों को दो दो बार तीन तीन बार चार चार बार विवाह करना पड़ता है। जिसके कारण अनेक कुँवारोंको अविवाहित ही रह जाना पड़ता है जिस कष्ट को वे ही जान सकते हैं जिनपर वह कष्ट बीत रहा है। उत्तम तन्दुरुस्ती वाले नौजवान अविवाहित कष्ट भोगते हैं और जब उन्हें वंश चलाने का विचार आ जाता है तब बिचारे द्रव्य व्यय करने को उतारू होते हैं। यदि उतना द्रव्य पास में होता है तब तो कर ही लेते हैं अन्यथा मुँह धोये हुवे योंही रह जाते हैं। इनमें से कुछ ही सच्चरित्र निकलते हैं शेष विषय वासना को नहीं जीत सकने से किन्हीं स्वजातीय या अन्य जाति की सधवाओं या विधवाओं को कुमार्ग में प्रेरित करनेकी कोशिश करते हैं। इस प्रकार व्यभिचार फैलाते हैं। यदि कोशिश

---

१ "मनुष्य अपने गाय, वैलों, घोड़ों और कुत्तोंका जोड़ा लगाने के पूर्व विचार करते हैं तथा जाँच कर जोड़ा स्थिर करते हैं। किन्तु जब अपने वह अपनी सन्तान के विवाह का समय उपस्थित होता है तब वे इन सब उत्तम विचारों को भूल जाता है:—"

—डार्विन।

१२ वर्षकी कन्या को उत्पन्न हुई प्रजा कैसी बलवान होगी? कितने १६ वें वर्ष में कई बच्चों के पिता बन बैठे है, यह अत्यन्त विचारणीय है लेकिन इधर कोई ध्यान नहीं देता। १२ वर्ष तक विवाह न करने का मनुजी भी कहते हैं यदि योग्य वर न मिले तो १५ वर्ष तक कन्या का विवाह नहीं करना। वर की परीक्षा कर कन्या का विवाह करना चाहिये ऐसा अमेरिका में कानून है।

—पं० मदन मोहन मालवीय।

किसी की नहीं चलती तो वे वेश्या गृह देखने को लाचार होते हैं और धन वा शरीर को खराब करते रहते हैं। यदि ग्राम में वेश्या नहीं होती है तो किसी गरीब स्वजातीय या अन्य जातीय स्त्रीको द्रव्य के लोभ से फँसा लेते हैं। इस तरह वे और उनके वंश बर्बाद होते हैं।

जिनकी स्त्रियां जापों में या क्षय रोग में या अन्य किसी रोग में मरती हैं, उनको भी द्रव्य या उत्तम आयवालों को तो कन्याएँ सहज ही में मिल जाती हैं। बाकी अनेक विधुर (रंडुवे) रह जाते हैं जिनमें से कुछ तो किसी लालची को फँसा कर और रूपया खर्च करके किसी बालिका को जो उनकी बेजोड़ उमर के लिये अयोग्य होती हैं विवाह कर लेते हैं। बालिकाएँ दस दस बारह बारह वर्ष में होती हैं। वर तीस पैंतीस में होते हैं। बालिका घरमें रहती है बाहरवाले जाने ही क्या ? लोग कहते हैं लड़का तो ठीक ही है। ४० से तो बहुत नीचे ही है कोई बुरा नहीं है। बस कन्या तीन गुने वरके साथ बाँध दी जाती है। उनमें उम्रका इतना अंतर रहता है कि जिसके कारण दोनोंमें यथार्थ प्रेम और स्नेह होना कठिन है। यदि कहीं पहली या दूसरी स्त्रीने ५० के लगभग वा ऊपर दगा दिया अर्थात् परलोक प्रस्थान कर गई तो फिर कष्ट का पार ही नहीं है क्योंकि घरमें न तो भोजनादि का योग्य प्रबंध पाता है और न घरमें कोई बोलने बतलानेवाला या जी की बात कहने, सुननेवाला पाता है तथा अभी कामवासना भी अधिक नहीं तो थोड़ेसे ही अंशमें, इंद्रियोंमें नहीं तो मनमें तो उत्पन्न रहती है। जिसकी भी शान्ति किसी तरह करना चाहिये तो द्रव्य खर्च करे वगैर तो अब

काम नहीं चलता। द्रव्य का लालच दे दिलाकर किसी तरह अपना मतलब साधते हैं। कन्या तीन चार गुणी उम्र के बरके साथ और कभी कभी तो दादा तक की उम्रवाले के साथ बांध दी जाती है! सुधारक विरोध करते हैं, नगर वा ग्राममें निन्दा होती है, होने दो। अपना मतलब बन जाना चाहिये। जो कहे सो कहने दो। इस तरह वृद्ध भी विवाहित[1] हो जाते हैं। वृद्धोंके घरोंमें जो नववधू आनेपर हास्य और खेद होते हैं उनके लिखनेमे लेखनी शर्म खाती है। उनका अनुभव तो उस तरह के पड़ोसमें रहने से ही अच्छी तरह से हो सकता है।

एक बालविधवाकी हृदय-द्रावक आह! सुनियेः—

माता पिताने मुझको दुलहिन बना के मारा।
दो दिन बहार गुलशन मुझको दिखा के मारा॥
अंगोंमें मेरे बाटना मातम का बस लगाया।
बाली उमरमें खूनी मेहेंदी लगा के मारा॥
मैं तोड़ देती कंगना होता जो होश मुझको।
बस मेरे हाथ कोरा कंगना बंधाके मारा॥
शादी हो अष्ट वर्षा गौरी के तुल्य है वह।
बस ऐसे लोगोंने ही गाथा रचा के मारा॥
सेहरे के फूल ताजे मुझने भी न पाये।
जब कि सुहाग मेरा घोड़ी चढ़ा के मारा॥

---

१ बेटा पोता बराबरीका शरम जरा भी नहीं आवे।
उमर पुरी साठ बरसकी नवी विंदणी मन भावे॥
मसाणामें ले गया लाकड़ा मरणकाल नहीं लंबो छे।
तो भी बुढो परणे बाला ओ भी एक अचंबो छे॥

फेरों की चोर हूँ मैं अब धर्म वीर बेशक ।
मैं कोई सुख न देखा दुखने जलाके मारा ॥

(ओसवाल नवयुवक)

किन्तु इतना सा लिख देना अनुचित नहीं है कि जिस किसीको अपनी वृद्धावस्थामें शरीर की शक्ति कायम रखनी हो, घरमें लज्जा, आदर और सदाचार कायम रखना हो, अपनी स्त्रीका सौभाग्य चिरकाल तक रखनेकी इच्छा हो और गृहस्थ सुख के मूल कौटुंबिक शान्ति की अभिलाषा हो उसको तो वृद्धावस्थामें विवाह करने से अवश्य बचना चाहिये। जिससे कुआरों की हक शफ़ी (अनधिकार चेष्टा) नहीं हो, नौजवान कुँआरों की संख्या नहीं बढ़े, जिनको उम्रभर कुँआर रहना पड़े, बालविधवाओं की संख्या वृद्धि नहीं हो, व्यभिचार जातिमें उत्पन्न नहीं हो सके और जगत्में इस प्रतिष्ठित जाति की प्रतिष्ठा कायम रह सकें। इस विषयमें भारतपिता महात्मा गान्धी के उद्गार विचारणीय हैं। वे यहां उद्धृत किये जाते हैं। "आत्मज्ञानी होनेका दावा करनेवाले हिंदुओंको बालविवाह, वृद्धविवाह जैसी अनात्मिक क्रियाओंको करते देखकर मुझे उनके आत्मज्ञानीपनेपर दया आती है। बालविवाह और वृद्धविवाहोंको विवाह नहीं कहा जा सकता। संसार का कोई भी नैतिक धर्म उनकी पुष्टिमें नैतिक दलीलें नहीं दे सकता। जो क्रियाएं नैतिक धर्मसे विरुद्ध हैं वे सरासर पाप हैं और जो धर्म ऐसी क्रियाओं का समर्थन करता है मैं उसे धर्म नहीं कह सकता। क्योंकि किसी भी धर्मको तभी तक जीवित रहनेका हक्क है जब तक कि वह न्याय एवं नीतिपर अवलंबित है।"

जिन नौजवान लोगों की स्त्रियें शीघ्र मर जाती हैं किन्तु उनके पास

द्रव्य यथेष्ट नहीं होनेसे उनमें जिनका विवाह नहीं होता उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय होती है। उनमें से कुछ ही सच्चरित्रता से अपना जीवन व्यतीत करते हैं, अन्यथा तो प्रयत्न कर स्वजातीय या विजातीय विधवा स्त्रीको अपने मायाजालमें फंसा कर उससे गुप्त प्रेम प्रारम्भ कर लेते हैं। अथवा उस नगरमें निज जाति भाइयों में यदि प्रथा चालू होती है और विरुद्ध न समझी जाती हो तो अन्य जाति किसी गरीब विधवा स्त्रीको घरमें पासवान रखकर अपनी काम वासना तृप्त किया करते हैं। जैसा कि राजपूताने के बड़े नगरोंमें जोधपुर, जयपुर, अजमेर, उदयपुर आदिमें होता है।

इसीतरह जो कुँआरे रह जाते हैं और उम्रभर वधू प्राप्त न होगी ऐसी निराशा जिन्हें हो जाती है वे भी या तो वे वेश्या गमन की ओर प्रवृत्त होते हैं अथवा वही मार्ग ग्रहण कर या तो किन्हीं विधवा या सधवा स्त्रियों को कुमार्ग में फसाने का प्रयत्न करते हैं या किसी गरीब जाति की व्यभिचारिणी स्त्रीसे गुप्त संबंध स्थापित कर लेते हैं और तंदुरुस्ती तथा द्रव्य की हानि उठाते रहते हैं।

कितनेही निर्लज्ज ऐसेभी होते हैं जो अपने घर की स्त्री के अतिरिक्त भी बाहर की स्त्रियों से विषय सेवन करने में प्रयत्न शील रहते हैं। और कितने तो ऐसे भी क्रूर होते हैं कि व्यभिचार के निमित्त एक या अधिक स्त्रियाँ (पासवान) लाकर घर में अपनी स्त्री के सीने पर मूंग दलने के लिये रख लेते हैं और उनसे व्यभिचार सेवन करते हुवे स्त्रीके सन्मुख तनिक भी लज्जित नहीं होते। किन्तु स्त्रीके प्रति रोष तथा अभिमान प्रगट करते हैं। ऐसी स्थितियाँ कुछ वर्ष पहिले आजसे भी अधिक थीं। ग्रामों में ऐसी स्थिति प्रायः नहीं हुआ करती।

हम लोगोंकी औसत उम्र इस जमानेमें २५ वर्षके लगभग होती है जब कि अन्य कितने ही देशोंके निवासियों की इससे द्विगुण होती है। आज से ५० वर्ष पहिले यदि कहीं किसी नौजवान पुरुष या स्त्रीकी मृत्युके समाचार सुने जाते तो लोग अत्यन्त आश्चर्य में पड़ जाते क्योंकि प्रायः लोग अच्छी ही उम्र पाया करते थे। किन्तु आजकल नौजवान मृत्युओं के समाचार सुनकर उतना आश्चर्य नहीं किया जाता क्योंकि आजकल तो इतनी नौजवान मृत्युएँ ! होने लगी हैं कि अब तो यह एक साधारणसी बात हो गई है।

बाल विवाह के परिणाम का करुणाजनक दृष्टांत।*

एक गृहस्थ आत्मकथा के रूप में लिखता हैः—

" सोलह वर्ष की उम्र में मेरी शादी हुई, मेरे पिता वृद्ध होनेसे मेरी माताने आग्रह कर मेरे पिता के जीवन में मेरा विवाह करना निश्चित किया। जिस वख्त मेरी स्त्रीकी अवस्था १२ वर्ष की थी उस वख्त मेरा विवाह कर दिया। विवाह पूर्व पाठशाला में मैं एक चंचल और उद्यमी विद्यार्थी गिना जाता था परन्तु ब्याह होते ही मेरी स्थिति पलट गई, स्त्रीमें मैं अत्यन्त आसक्त रहने लगा और इस का फल यह हुआ कि मेरे शरीर में आलस्य का साम्राज्य जम गया और दिनको भी मैंने अभ्यास करना छोड़ दिया, पाठशाला में अध्यापक पाठ पढ़ाते उस समय भी मेरा ध्यान पुस्तक से निकल कर स्त्री के दर्शन में लग जाता था। अन्त में मैं अभ्यास में पीछे रहने लगा, मेरी चंचलता हवा होगई, मेरा उद्यमीपना किस प्रकार दूर हो गया यह समझ कर शिक्षक कई बार आश्चर्य करते थे। उसी वर्ष

---

* कर्तव्य कौमुदीसे उद्धृत

मेरे पिता का देहान्त हो गया और मैं परीक्षा में अनुतीर्ण हुआ। मेरी माता के पास कुछ पूँजी थी इस लिये उसने मेरे पढ़ाने का कार्य प्रारम्भ रक्खा। दूसरे वर्ष इस क्लास में मैं पास हुआ, परन्तु आगे के क्लास में फिर एक वर्ष असफल हुआ, इससे मैं अब अभ्यास करने से घबराने लगा, विशेष में एक नई उपाधि जागृत हो गई। इस वर्ष में मेरी स्त्री के एक पुत्री हुई और फिर मेरी स्त्री तथा मेरी माता का स्वभाव एक दूसरे से प्रतिकुल होनेसे घर में रोज क्लेश होने लगा, इन सब उपाधियों से छुटने के लिये मैंने पाठशाला छोड़ दी और स्त्रीको साथ ले अलग रहने लगा। तुरन्त कुटुम्ब पोषण की नई चिन्ता प्राप्त हुई तब मैंने नौकरी ढूँढी। अभ्यास कम होनेके कारण मुझे बहुत कम वेतन की नौकरी मिली परन्तु उस में ही मैं किसी तरह अपना निर्वाह करने लगा।

" आज मुझे २७ वर्ष हुए हैं परन्तु अभी मेरी हालत कैसी है वह कहते हुए मेरी आँखों से अश्रु बहने लगते हैं। मेरे ३ पुत्री व १ पुत्र है और वे सदा बीमार रहते हैं। इस लिए औषधि लानी पड़ती हैं, मुझसे विशेष परिश्रम का कार्य नहीं होता, कमर में बादी आगई हैं, पग दुखते ही रहते हैं, खाना भी नहीं भाता, अजीर्णता, खट्टीड-कार दिन भर आया करती है, कम पगार में सब कुटुम्ब का खर्च भी नहीं निभता इसलिय मुझे मेरी स्त्री हमेशा कहती है कि कुछ अधिक उद्यम करो परन्तु मैं किस तरह उद्योग करूँ? नौकरी के सिवाय कोई भी अधिक भार का कार्य करनेकी मुझे सामर्थ्य नहीं। औषधी खाता हूँ लेकिन उनसे रोगोंका नाश नहीं होता और नई चैतन्यता नहीं आती। जो ऐसी ही हालत रही तो मैं समझता हूँ कि

मैं ३० वर्ष की उम्र पूरी होनेके पहिले ही इस दुनियाँ से प्रस्थान कर जाऊँगा ! और मेरे बालबच्चों को रोगिष्ट तथा निर्धन छोड़ जाऊँगा ।

अनेक ऐसी ही मृत्युऐं होती हैं आश्चर्य होवे ही क्यों ? इस नौजवानोंकी (पुरुषों और स्त्रियों की) बढ़ी हुई मृत्यु संख्या के कारण ही आयु पर्यंत के कुआँरों की, विधुरों की (रंडुओंकी) और विधवाओं की संख्या जातिमें बढ़ती जा रही है ।

पुरुषों की जो दशा है उसका परिचय तो ऊपर कराया ही गया था, अब जरा विधवाओं की दशा का भी किंचित् मात्र अवलोकन कर लेना उचित ही होगा ।

जाति की अनेक विधवाऐं ऐसे कष्टमय दिन व्यतीत कर रही हैं कि उनके पास भर पेट खा सकने तक का साधन नहीं है । पति ने जो थोड़ासा द्रव्य मृत्यु समय उसके पास छोड़ा था वह भी जाति के कायदे ! के मुआफिक मोसर कर देनेमें समाप्त हो गया। जेवर बेच देना पड़ा और घर गिरवी रख देना पड़ा । न तो कोई सहायता प्रगट या गुप्त रूपसे देने वाला है और उन को सहायता लेकर जीवन वितानेसे तो मर जानाही अच्छा लगता है किन्तु उन्हों ने सुना है कि आत्मघात तो महा पाप है । इस लिये मरना भी होगा तो भूखसे ही मरना होगा । परन्तु सहायता लेकर तो जीवन नहीं बितावेंगी । किसी संबंधी ने कुछ ऋण भुगतान कर दिया तो ठीक है नहीं तो कर्ज लेकर ही जीवन बितावेंगीं। जब आवेगा तब भुगतान करदेंगी । परन्तु इन भोली स्त्रियों को यह भी पता नहीं कि पति के जीते भी संबंधियों ने नहीं दिया तो अब वे क्या देंगें । हाँ अलबता उनकी इच्छा है कि यदि घर में बैठे २ करनेकी कोई मजूरी ही मिल जावे

तो कर लिया करूं। परन्तु मजदूरी दिलानेवाले और लाकर देने-वाले दयालु परिश्रमी कहां बैठे हैं। दो दिन दे देगें, बस तीसरे दिन खाने की फिर वही चिन्ता आ उपस्थित होगी। परमात्माही जानता है कि तीसरे दिवस कैसे गुजरान चलेगा। शायद घरकी कोई अनुपयोगी वस्तु बेचकर काम चल जायगा और धीरे धीरे उपयोगी वस्तुएँ भी बेच देना होगा।

कहीं उपरोक्त हाल मिलेगा तो कहीं यह हाल मिलेगा कि कोई पुरुष कुछ दिन सहानुभूति दिखलाकर उसके जी से जी जोड़ लेता है और अन्तमें उसको कुमार्ग में घसीट लेता है। किन्तु दुर्भाग्य से जब गर्भ आदि रह जावे तो आकर बात भी नहीं करता है। संसारमें वह बदनाम होती है, पुलिस आकर तंग करती है, बच्चा उत्पन्न होता है और जाति बिरादरीवाले जातिसे उसे पृथक कर देते हैं। उसका बच्चा या वह स्वयं भी मर जावे तो भी उसे जलाने तक को नहीं जावेंगे! उसका जीवन अत्यन्त दुःखमय बीतता है और अन्तमें कोई न कोई हलकी कहीं जानेवाली कौम का पुरुष विषयेच्छा से ही उसे आश्रय देता है। जिसके यहां कष्ट सहकर भी आयु व्यतीत करतीं हैं ये कुमार्ग में घसीटनेवाले पुरुष कभी कभी तो देवर या जेठ या श्वशुर तक भी होते हैं! जिनको निज स्त्रीका परलोकवास हो जानेपर ऐसा कुकर्म करनेकी नौबत आती है और कभी स्वजाति के वा अन्य जाति के पुरुष उसको लावारिस माल समझकर अपने चंगुलमें फांस लेते हैं ये भी प्रायः बड़ी उम्र के कुआँरे या रंडुएँ ही होते हैं। इन कुकर्मों को पहले गुप्त रीतिसे प्रारम्भ किया जाता है, परन्तु जब प्रगट हो जाने के आसार बनते हैं तो पुरुष अपनी

१ पंचोंके कायदों से पुरुष गुन्हेगार नही! धन्य है!!

पवित्रता बताने के लिये किनारा कशी करही जाते हैं और गर्भपात भ्रूणहत्या आदि के दुष्प्रयत्न उस बिचारी अबला को ही करने पड़ते है। जिनमें कभी कभी पुलिसद्वारा भी संकट उपस्थित होते हैं, इज्जत खराब होती हैं और न मालूम कष्टोंका कहां अन्त होता है। कितने ही ऐसे मामलेंमें पुरुष भगाकर अन्य ग्राम या नगर ले जाते हैं। और कुछ दिवस पश्चात् छोड़कर चले जाते हैं वहां उसकी क्या दशा आगे होती है ! परमात्मा ही जानता होगा।

कहीं ऐसा भी है कि पति कुछ अच्छा द्रव्य छोड़कर जाता है। अब कामियोंको दो स्वार्थ साधन होनेका मौका आता है काम और लोभ दोनोंकी सिद्धि ! उसके लिये वे जीतोड़कर परिश्रम करते हैं कभी नौकर रहकर, कभी गुमास्ते रह कर और कभी संबंधी बनकर और हिलना मिलना वढ़ाकर कामभात्र हो ही जाते हैं। पासमें द्रव्य होनेसे आवश्यकता पड़े और नगरमें कोई जानने पहचाननेवाले ही कम मिलें। वो लोभी और कामी द्रव्य और यौवन वीत चुकने पर शीघ्र ही रास्ता नापता है और पीछे उन अबलाओंकी गति किस अवस्था तक पतित ! होती है इसको भी परमात्मा ही जानता है।

जो उपरोक्त वर्णन विधवाओंके सम्बन्ध में किया है वह अत्यन्त संक्षेप में किया है और अल्प ही किया है और वही किया है जो स्वयं विविध स्थानोंमें देखा है और जिसका अनुभव अत्यन्त दुःखके साथ हुवा है। विधवाओंको यवनों के घर में! वेश्याके घर में !! और विक्रय करनेवालों के चंगुल में फँसी हुईको पाया है (जिनके उद्धार करनेके शुभ प्रयत्न में भाग भी लिया है और उनको उस चंगुल से मुक्त कर ठीक ठिकाने करनेका कड़वा अनुभव भी किया है)

तब यह वर्णन पाठकों के सन्मुख रखा है। सम्भव है कुछ पाठकों को यह वर्णन यहाँ लिखना नहीं रूचा हो उनके विचार में अपनी जाति की बुराइयाँ प्रगट में लाना अनुचित है। इस विचार से उन को खेद पहुँचा होगा।

कृपा करके वे महाशय लेखक को क्षमा करे क्योंकि उसने तो इन बातों को सदा अप्रगट रखा किन्तु जब योग्य उपाय विचारने के लिये स्वजातिके सन्मुख वर्तमान परिस्थिति रखनेका अवसर आया तब उनको प्रगट करना अत्यावश्यक होगया। इस कारण यहाँ बाध्य होकर प्रगट किया है। जिन महाशयों को ऐसी बातें निगाह में रखना आवश्यक प्रतीत हो या तो वे इस विषयों में रूचि रखकर जहाँ अवसर हो जाननेका प्रयत्न करते रहे। यदि इतना नहीं हो सके तो जाति प्रबोधक[1] मासिक पत्र (जो मोती कटरा आगरासे प्रकाशित होता है) मँगवा कर पढ़ते रहें तथा उस के पूर्व वर्षों के अंक मँगवा कर पढ़े तब उनको जैन विधवाओंकी दुर्दशा का पता अधिक लग जावेगा।

उपरोक्त वर्णन में विधवाओं की दशा में जो दुर्दशा का चित्र है उसमें कितनी ही साधारण बातें जैसे कि विधवाओं को अशकुन रूप मानना और कुटुम्ब में उनको काले वस्त्र पहनाये रखना जिससे वे अपने को सदा पापिनी, अपराधिनी और अभागिनी मानती रहें, और उनके साथ सासुओं का तथा घरवालों का सहानुभूति हीन वर्ताव होता है, आदि पर कुछ विशेष नहीं कहा गया है। पाठक इतने वर्णन से जाति की विधवाओं के क्षेत्र से कुछ परिचय कर

१-अब बन्द हो गया है।

ये न समझ जावें कि सबही विधवाओं की यही दशा है, नहीं न तो सब पुरुषोंकी यह दशा है और न सब विधवाओं की यह दशा है। किन्तु बात यह है कि ऐसी दशा शनैः शनै बढ़ती जा रही है। जिस पर कि समाज आँख मींच कर बैठी हुई है।

यदि समाजने शीघ्र इस परिस्थितिपर ठीक तौर से ध्यान नहीं दिया तो इससे भयंकर हानि होगी ! यह कहना निरर्थक है कि ऐसी दुर्दशा १०० में से कितनी विधवाओंकी है। महाशय, आपके मस्तक पर से वा मूंछ परसे कोई एक बाल भी खेंचने लगे तो आप क्यों उससे लड़ने लगते हैं ? मस्तकपरके सहस्रों क्या लाखोंबालोंमेंसे एक बाल खेंच लिया जिसमें ही आप लड़ने लगते हैं। कारण कि आपको दर्द होता है। तो क्यों जातिके एक व्यक्तिके पतन पर आपको दर्द नहीं होता ? अनेकके पतनपर भी तो नहीं होता ! क्यों होने लगा। होवे तब, जब कि जातिका बीज (वीर्य) आपमें हो। मस्तकके बाल तो फिर भी बहुत उत्पन्न हो जावेंगे बढ़ भी जावेंगे और नाईके हाथसे आखिर उन्हें कटवाना ही होगा; किन्तु जातिभाईयोंकी पतित दशा हो कर जो स्वजातियोंकी और सहधर्मियोंकी घटती हो रही है। वह सहज ही रूकना भी मुश्किल है, बढ़ना तो दूरकी बात है। सिरके बाल तो अधिक बढ़ने पर बोझरूप मालूम होंगे। परन्तु ये जाति भाई और सहधर्मी भाई अधिक बढ़ जावेंगे तो बोझरूप नहीं होंगे किन्तु आपकी संघ (समुह) शक्तिको बढ़ावेंगे। इसलिये यह कहना बहुत ही बेजा है कि कितने ऐसे उदाहरण हैं ? आपकी और हरएक की दृष्टि ऐसे उदाह-

---

१–सबकी न सही फिर भी बहुभाग की दुर्दशा है। और १०० में ९९ विधवाएँ अपशकुनमूर्ति समझी जाती हैं। और सधवाओं की अपेक्षा विधवाओंका स्थान नीचा तो माना ही जाता है।

रणोंको सर्वत्र निगाहमें ही कितनी रख सकती है? जहरी छाला तो जरासाही बुरी चीज है। वह सारे शरीरके अस्तित्वके लिये ही खतरनाक है।

विधवाओंकी परिस्थिति ऐसी दर्दनाक होते हुवे भी अभी तक विधवाओंकी संख्या बढ़ानेके कार्य हमारी जातिमें बन्द नहीं हो सके हैं। ये कितनी खेदकी बात है!

हमारी पंचायतें जो या तो लग्नोंके वा मृत्युओंके जीमण करानेका वा तरह तरहकी लागें वसूल करनेका केवल कार्य करती हैं। किन्तु समयोपयोगी सुधार प्रचलित करनेकी ओर ध्यान नहीं देती। वे ही विधवाओंकी संख्या बढ़ानेकी और स्वजातिके कष्ट बढ़ानेकी जिम्मेवार है। देशभरमें, समाजमें, जातिमें, उपदेशको द्वारा और धर्म गुरुओं द्वारा वाल विवाहके निषेधका इतना उपदेश होते रहनेपर भी बाल विवाह रोकनेका नियम वे अभी तक नहीं बना सकी और अपनी शक्तिसे बाल विवाहको भी बन्द नहीं कर सकी! अब तक भी बाल विवाह होते हैं तो उन पंचायतोंसे जाति, समाज, और जगत्का लाभ ही क्या है? और पंचायतों की इस लापर्वाह रहनेपर बाल विवाह निषेधका जब सरकारी कानून बन जावेगा और उसके अनुसार बाल विवाह नहीं भी करनेवालोंपर आशंका होनेके कारण कितनी आपदाएँ यदि जातिके लोगोंपर और उनकी स्त्रियोंकी इज्जतपर आवेंगी तथा जातिकी स्वतंत्रता छिनी जायगी उसका दोष भी क्या पंचायतों पर ही नहीं है? इसी तरह पंचायतोंने शनैः शनैः अपनी सारी शक्ति अपनी लापरवाहीसे खोई है।

यदि विवाह किये जानेमें इन बातोंपर ध्यान रखकर किये जाते

कि वह कन्याकी उम्रमें उचित अंतर है वा अनुचित अंतर है ? दोनों के रूप गुण परस्पर मान्य है वा अमान्य है ? इनके विवाह इस उम्र में होना उचित है वा इतने वर्ष ठहर कर होना उचित है ? इसका विवाह हो जाना शीघ्र और अत्यन्त आवश्यक है वा नहीं है ? प्रत्येक दशामें इनका विवाह होना अत्यन्त अनावश्यक और हानिकारक है वा नहीं ? तो हमारे जातिकी अत्यन्त अव्यवस्थित स्थिति कदापि नहीं होगी। न तो अयोग्य विवाहही होते और न विवाह योग्योंके लिये रोकही रहती।

योग्य कन्याएँ योग्य वरोंके साथ विवाहित तभी हो सकेंगी और गृहस्थ जीवन तब ही सुधार सकेगा, जब जातिमें कन्याओं और बालकोंको योग्य बनानेके लिये खूब प्रयास होगा। इस ओर लक्ष्य न होनेसे भी जातिमें वर कन्याके संबंध करनेमें अत्यन्त कठिनाइयाँ उपस्थित हो रही हैं।

हम लोगोंकी यह आदत सी होगई है कि पांच सात गाँववाले लोगों से ही जिनके साथ हमारा खूब परिचय है, सम्बन्ध करते हैं। ऐसा करनेसे हमें अनेक कठिनाईयोंका सामना करना पड़ता है। योग्य वर वधु नहीं मिलते हैं तो भी जैसा तैसाही संबंध कर लेते हैं कारण यह है कि हम अपने काम धन्धेमें ऐसे फंसे रहते हैं। दूर देशोंमें क्या हो रहा है ? वहां हमारे स्वजातियों के घर है या नहीं ? उनकी स्थिति कैसी है ? आदिका ज्ञान नहीं होता है, इस अज्ञानता के कारण हम अपनी प्यारी संतानको इधर उधर ही किसी के गले बांध देते हैं। एक और बात है, बहुतसे लोग अपने सुभीते के अनुसार लड़कीको अपने गांव या शहरमें ही जहां वे रहते हैं,

ब्याह देते हैं। ऐसा करने से उन्हें अपनी लड़कीसे समय २ पर सहायता मिलती रहती है। यद्यपि ऐसा करना बुरा नहीं है किन्तु लड़की के सुखकी तरफ ध्यान देना भी पूर्ण आवश्यक है पर होता क्या है कि उसका सुख तो कहीं उड़ता फिरता है और अपना सुख आ घुसता है। मैं पहिले लिख चूका हूँ जहाँ अपना स्वार्थ है वहाँ लड़की के सुखका कुछ भी विचार नहीं किया जा सकता है। लड़की को दूर देशमें विवाहने से हम डरते हैं और शंकाएँ करने लगते हैं कहीं जाति भिन्नता तो नहीं है ? ऐसे संकुचित संबंधोको छोडकर खूब परिचय करके योग्य स्थानमें लड़की देने से कुछ भी संकोच न करना चाहिये। ऐसी व्यवस्थासे मनोनुकूल वरकन्याके चुनाव का अवसर मिलेगा। वरकन्याके गुणोंका मिलान करनेकी भी यही अच्छी तक है। केवल भाषा की कठिनाई से अनेक सुविधाओं की तरफ नजर नहीं दी जाती है। मैं मानता हूँ कि एक मारवाड़की कन्या पंजावमें देनेसे उसे भाषाकी काठिनता अवश्य रहेगी पर इस कठिनतासे अनेक वड़ी २ कठीनाइयाँ सुलझ जायंगी।

एक वात और भी है। ओसवालोंमें दो भेद हैं—एक दसे—छोटे साजन दूसरे वीसे—वड़े साजन। उनमें परस्पर रोटी व्यवहार वहुतसे प्रान्तोंमें होता है किन्तु वेटी व्यवहार अभीतक कहीं नहीं होता है। बेटी व्यवहार होनेमें कोई आपत्ति भी नहीं है और न कोई ऐसा तात्विक भेद ही है जिससे वेटी व्यवहार न हो सके। पहिले सभी एक ही थे किन्तु कुछ काल वाद एक निर्मूल कारण की ओटमें ये विभाग होगये और विभागों के साथ ही वेटी व्यवहार भी वन्द हो गया। जैसा की आजकल देशी व विलायती पार्टीके होनेसे हुआ है।

ऐसे भदों को दूर किये विना वैवाहिक उलझनोंका अन्त होना कठीन है।

विवाह वास्तवमें सुखी गृहस्थ जीवनका एक खास साधन है। किन्तु योग्य साथी मिलने के अभावमें तथा कितने ही मजबूरी खर्च सिरपर हो जानेके कारण वह कष्टप्रद भी बन गया है। किन्तु चाहे कैसा भी हो विवाह किया और कुछ समय बाद बालबच्चे भी हो जाते हैं और एक कुटुम्ब बन जाता है। कोई माता है तो कोई पिता है, कोई भाई है तो कोई वहन है, कोई स्त्री है तो कोई पति है, कोई भोजाई है तो कोई देवर है, कोई जेठ है तो कोई श्वसुर है; बस एक पूरा कुटुम्ब बन गया।

यदि ये सब उत्तम व्यवस्था में रहे तो सब सुखी रह सकते हैं और स्वार्थान्ध होकर अव्यवस्थित रहें तो सब दुखी रहते हैं। उत्तम व्यवस्था का मूल मन्त्र यही है कि जो उम्र में बड़े हैं वे अपने आप को छोटों के शासन और स्वामी (मालिक) नहीं समझे किन्तु उन के संरक्षक (गार्डियन) मात्र समझे उनके प्रति स्नेह तथा सहानुभूति रखना अपना कर्तव्य समझे, उनकी रक्षा करनेका उनको योग्य बनाने का बड़ों को अधिकार है वे तो ट्रस्टी हैं। जिस तरह ट्रस्टी संपत्ति को बढ़ा सकता है किन्तु स्वार्थ सिद्धि नहीं कर सकता उसी तरह माता पिता, बड़े भाई वहिन आदि पुत्र पुत्रियों को और छोटे भाई बहिनोंकी रक्षा करने के निमित्त है, उनको अधिक योग्य बनाने के निमित्त है, न कि उनकी सेवाओं से स्वार्थ सिद्धि करनेके लिये है। इसी तरह पति भी संरक्षक है न कि स्वामी। अपने को स्वामी मान कर अनेकोंने बड़े दुष्कृत्य किये हैं। स्वामी और

संरक्षक में बड़ा अन्तर है। स्वामी अपनी संपत्ति को दान कर सकता है विक्रय कर सकता है और स्वार्थ सिद्धि के लिये खर्च भी कर सकता है परन्तु संरक्षक नहीं कर सकता। कन्या दान[1] शब्द ही गलत शब्द है। कहीं दानों में कन्यादान को वर्णन नहीं किया गया है। दान करते करते ही अपने को विक्रय के अधिकारी भी लालची लोग मानने लग गये। स्त्रियों को नीज सम्पत्ति मान कर उनके साथ मनुष्य जैसे व्यवहार के स्थान में पशुओं के समान व्यवहार करने लग गये।

इसी तरह जो उम्र में छोटे हैं वे अपने से वड़ों को अपने संरक्षक और पूज्य मान कर उन वड़ोंमें विश्वास और आदरभाव रखते हुवे जो शिक्षाएँ और आज्ञाएँ उनको वड़े देवें उनको पालन करें। वड़ों से ज्ञान और अनुभव सीखें और अपना जीवन मार्ग वड़ों की सहायता से सरल कर लें। यदि कभी वड़े अनुचित आज्ञा दे दें जिसको पालन करना छोटा कर्तव्य विरुद्ध समझे तो छोटे का कर्तव्य है कि विनयपूर्वक अपने विचार वड़ों के सन्मुख रखे, विनय का त्याग कदापि भी नहीं करे, चाहे अन्तरात्मा की आज्ञा के सन्मुख सिर झुका कर वह अपने वड़ों की आज्ञा का पालन न भी कर सके। जहाँ वड़ों में वड़प्पन का अभिमान और छोटों में विनय हीनता उत्पन्न हो जाती है तथा जहाँ स्वार्थपरता अधिक मात्रा में वढ़ जाती है वहीं कलह उत्पन्न हो जाता है, और कौटुम्बिक जीवन दुःखमय वन जाता है और वैसी दशा में अंग्रेज लोगोंकी तरह

---

१ जैन शास्त्र में इसे कुदान कहा है। परन्तु न तो यह कुदान है न सुदान दान ही नहीं है।

कौटुम्बिक व्यवस्था रखना ही आवश्यक और लाभदायक हो जाता है। जिसमें पुत्र का विवाह होते ही वह कुटुम्ब से अलग रहने लगता है।

जो विवाह कर लेते हैं किन्तु उनके सन्तान यदि नहीं होती तो अपनी कुटुम्ब और सन्तान इच्छा की पूर्ति के लिये किसी बालक को या युवक को गोद लेते हैं, प्रत्येक नगर और ग्राम में ऐसे उदाहरण पाये जावेंगे। जहाँ तक हो सकता है नजदीक सम्बन्ध के लड़के को लेते हैं। उनकी पालना करते हैं, विवाह करते हैं और उनकी सन्तान का विवाह करते हैं। इस प्रकार अपनी इच्छा पूर्ति करते हैं।

जैन लॉ के अनुसार विधवाको भी पुत्र गोद लानेका पूर्ण अधिकार है। पति की मृत्यु होने पर पुत्र के अभाव में विधवाको पूर्ण अधिकार होते हैं, तथापि नजदीकी सम्बन्धवालों का गोद आने में प्रथम अधिकार रहता है। इस कारण अदालतों में खूब मुकदमें बाजियाँ ओसवाल जाति में चलती हुई देखी जाती हैं, तथा दोनों ओर का खूब द्रव्य बर्बाद होता हुआ देखा जाता है। इसी तरह गोद लिये हुवे लड़के में और उसकी विधवा माता में भी परस्पर खूब ही मुकदमें बाजी होती हुई देखी जाती है। लड़का कहता है कि माता घर के सब द्रव्य को बर्बाद करती है, अपनी बेटी को देती है, मन माने दान पुण्य करती है, उसको भोजनार्थ आवश्यक खर्च से अधिक का क्या अधिकार है? उधर माता की ओर से दावा पेश होता है कि मैं इसको गोद नहीं लाई थी किन्तु मैने इसको नौकर रख लिया था और मेरे द्रव्य को और काम काज को संभालता था। अब न तो मेरी सेवा करता है और न मुझे मेरी रकम ही संभलाता है, मैं खर्च से भी तंग हूं, भूखों मर रही हूं।

इस प्रकार गोद में अनेकों झगड़े खड़े होते रहते हैं और आखिर वही जीतते हैं जिनके पास मुकदमा एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी अदालत तक लड़ने के लिये काफी द्रव्य और साहस होता है। अन्यथा सच्चे भी हार जाते हैं और झूठे भी जीत जाते हैं।

यह गोद की प्रथा अधिकतया हानिकारक ही प्रमाणित होती है, परन्तु नाम चलाने की इच्छा और सेवा प्राप्त करने की आशा में गोद लिया जाता है किन्तु फल स्वरूप दुःख उठाते हुवे अनेकों को प्रत्यक्ष देखा है।

पारसी लोगोंमें लड़का गोद लाने की प्रथा नहीं है, किन्तु यह प्रथा है कि जिसके सन्तान नहीं होती हैं वे अपना द्रव्य स्वजाति की संस्थाओं को दान कर जाते हैं। अथवा सार्वजनिक हितकारी संस्था ओं को अपनी संपत्ति दान कर जाते हैं। इसी कारण से उनकी स्वजातीय संस्थाएँ उत्तम आर्थिक स्थिती में होती हैं जिनसे उनकी समस्त जाति की उन्नति और प्रतिष्ठा इतनी बढ़ रही है।

किसी स्त्री या पुरुष के पास दस हजार की पूँजी है, यदि उसके रिश्तेदार में सब उससे अधिक धनवान् हैं। तो उनके लड़के गोद लेने के बजाय वह यदि स्वजातिय अनाथालय से दस बालक लाकर एक एक हजार की पूँजी से उनको धन्धा करा दे और उन पर अपना निरीक्षण रखे तो उनमें से अधिकतर ऐसे निकल जावेंगे जो उसकी वृद्धावस्था में सेवा करेंगे। और उम्र भर उसको स्मरण रखेंगे। और कदाचित् उनमें से किसी के पास द्रव्य होगया तो उतना ही द्रव्य उस प्रतिपालक पिता के नाम पर वो उत्तम कार्य में धर्मार्थ भी

लगा देगा। इस तरह जाति के १० अनाथों की पालना हो जावेगी, सेवा भी प्राप्त हो जावेगी और पुत्र भी १० हो जावेंगे, पर ऐसी सुमति उत्पन्न हो तब ।

विवाहिक योग्यायोग्यता के विवेक के अभाव में कौटुम्बिक सुख शान्तिके नियमों के पालन के अभाव में और अपने वफादार बच्चों को पहचानने की बुद्धि के अभाव में हमारा गृहस्थ जीवन जैसा सुखमय ! हो रहा है, उसका प्रतिदिन अनुभव हमको होता रहता है जिसका तनिक चित्र इस उपरोक्त वर्णन में दरसाया गया है ।

गृहस्थ धर्म की तपस्या साधु धर्म से भी अत्यन्त कठीन है । जो उस कठिन तपस्या में सफल होता है वही गृहस्थ और साधु दोनों का प्रतिपालक है। नहीं, नहीं; संसार के संचालकोंमें से भी वह एक है ।

(ई) सदाचार और शिक्षा ।

क्षुधा, तृष्णा, कामवासना, और सन्तानेच्छा केवल मनुष्य में ही नहीं होती, किन्तु पशु पक्षियों में भी होती हैं, मनुष्य यदि पशु आदि प्राणियों से उच्च पद में हैं तो केवल सदाचार से है । जितने भी संसार के धर्म हैं उनके मूल संस्थापकों ने सदाचार के प्रचार के निमित्त ही उनकी स्थापना की थी । किन्तु पिछले अनुयायियोंने तथा प्रचारक वर्गने सदाचार को गौण रूप दे दिया और उनकी साम्प्रदायिक भिन्न क्रियाओंको मुख्य रूप दे दिया, जिसके फल स्वरूप भिन्न भिन्न धर्मों में परस्पर कदाग्रह हो रहा है और सदाचार की मात्रा कम होती गई ।

जिस धर्म में जितना अधिक सदाचार पाया जावेगा उतने ही

अधिक काल तक वह संसार में टिकेगा और यदि किसी धर्म में सदाचार नहीं होता तो वह शीघ्र ही संसार से विदा हो गया होता। धर्म देह है तो सदाचार प्राण है।

परन्तु प्राय: देह के मोह में ऐसे लीन हो जाते हैं कि प्राणोंकी परवाह भी नहीं रहती। इसी प्रकार साम्प्रदायिक बाह्य क्रियाओं में हम लोग ऐसे लीन हो जाते हैं कि उन क्रियाओं के मूल सदाचार को ही अपने पास सुरक्षित नहीं रख सकते। जो मान, पूज्य भाव, श्रद्धा और व्यवहारिक प्रयत्न हम सदाचार के बाहरी अंग उपांगों के प्रति रखते हैं वह सदाचार के प्रति हमसे नहीं होता।

यह बड़े भाग्य के उदय से और बड़ी तपस्या करने पर मनुष्य जान पाता है कि वास्तविक धर्म का सच्चा रूप तो सदाचार ही है। अपने अपने मस्तकपर भिन्न २ तर्जकी पगड़ी, साफे टोपटोपियां शोभा दे सकती हैं; किन्तु बगैर मस्तकके किसी भी अर्थ की नहीं। इसी प्रकार पहले सदाचारकी आवश्यकता है। तब आगे भिन्न २ बाह्य क्रियाओंकी। क्योंकि पहले तो मस्तककी आवश्यकता है तब पगड़ियों आदिकी।

इसी कारण प्राचीन कालमें बड़े २ राजा तथा अन्य प्रतिष्ठित पुरुष अपने पुत्रपुत्रियोंको परम सदाचारी गुरुओं के पास भेज देते थे और गुरुकुलमें रहकर गुरुजीके सहनिवास से ऐसे उत्तम संस्कार उनमें पड़ जाते थे कि जब वे बड़े होते तो विलक्षण महापुरुष निकलते थे। ये गुरु ब्राह्मण होते थे जो गृहस्थ होते हुये भी निर्लोभी सदाचारी और अत्यन्त सादा किन्तु विद्याभ्यास पूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। इनकी हार्दिक रुचि विद्या पढ़ने और पढ़ानेमें

ही रहती थी। राजा तथा प्रतिष्ठित पुरुष इनको अत्यन्त आदरपूर्वक निमंत्रित करते, इनको भक्तिपूर्वक भोजन कराते तथा द्रव्यभेट करते। वे आवश्यकतानुसार द्रव्य स्वीकार करते और उस द्रव्यसे शिष्य वर्गकी प्रतिपालना करते। अपने निमित्त आवश्यकता कभी उपस्थित होती तो भिक्षाद्वारा भी शिष्योंके गृहसे सामग्री माँग लाते और पूर्ति कर लेते। शिश्यवर्ग गुरूजीको ही पिता और गुरूपत्नीको ही माता समझते उनकी सब प्रकारसे सेवा टहल करते और उनके वस्त्रतक धोकर लाते थे। इस प्रकारके गुरूकुलमें शिक्षा और संस्कार प्राप्त करके जब वे शिष्य अपने २ घर आते थे और जो जीवन व्यतीत कर दिखाते थे वास्तवमें वह सदाचार का चित्र था। विद्वत्ता का और अनूभव का भंडार था। उन्हें पुस्तकें घोख २ कर नेत्र और मस्तिष्क खाली नहीं करना पड़ा था। उन्होंको तो गुरूजीने जो कहानियाँ कहीं थी, उनका ही महत्व महान् अनुभवपूर्ण था। किन्तु आज ऐसा सदाचार कहां प्राप्त किया जा सकता है?

सदाचार कहें किसे? इसकी व्याख्या तो इतनी लम्बी चौड़ी है कि वर्णन करते करते लेखनी ही थक जावे। यदि अत्यन्त संक्षेपसे कहें तो कह सकते हैं कि सद् अर्थात् सत्य, शुभ, उत्तम विचार करना, वचन मुखसे निकालना और शरीरसे कार्य करना इस प्रकार के आचार अर्थात् आचरण, व्यवहार का नाम सदाचार है। व्याख्या इतनी सी है किन्तु इसका दायरा (हद) इतना बड़ा है कि बड़े २ गुण इसीमें समावेश हो जाते हैं, यद्यपि जगतमें तो अपने व्यवहार के लिए केवल इतना सा दायरा (हदबन्दी) सदाचार का मान लिया है कि जो अपनी स्त्रीके तथा पतिके अतिरिक्त अन्य स्त्रीसे मैथुन सेवन

नहीं करे वही सदाचारी है किन्तु नहीं, सदाचार का अर्थ बहुत विस्तृत है।

जो किसीको नहीं सताता है, तथा किसीकी आत्माको कष्ट देनेमें उसकी स्वयंकी आत्माको कष्ट होता है। जो कभी भी झूठ नहीं बोलता है चाहे उसको कितना भी द्रव्यका लाभ होता हो वा चाहे कैसा भी कष्ट उठाना पड़ता हो जो अन्य किसीकी भी संपत्ति को उसकी आज्ञा बगैर कभी नहीं काममें लेता है; जो विवाहित पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियोंको माता और बहिन के समान मानता है और अपनी स्त्रीके प्रति भी किसी तरहसे जबरदस्ती का वर्ताव नहीं करता है अर्थात् उसको अपनी मिल्कियत मानकर उसके साथ हरतरहका मन माना वर्ताव नहीं करता है, किन्तु मित्रता पूर्वक व्यवहार रखता है। जो अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति मात्रकी कामना रखता है तथा जिसने अपनी आवश्यकताएँ यथा सम्भव कम कर दी है और कम करने का प्रयत्न करता रहता है। जो चाहे अत्यल्प क्रोध कभी कर लेवे, किन्तु इतना क्रोध कभी नहीं करता जिसमें भान भूल कर अनुचित शब्द मुँह से निकाल दे वा अनुचित व्यवहार किसी के प्रति कर दे; जो अपने किसी भी गुण का अभिमान नहीं रखता है और न बनावटी विनय अधिक प्रदर्शित करता है; जो मन, वचन, कर्म के वर्ताव में एक समान रहता है मन में कुछ और कहने में कुछ और करने में और ही कुछ इत्यादि से बिलकुल नफरत करता है; जो अधिकाधिक असंतोषी नहीं होता जाता है ज्यों ज्यों उसको अधिक सम्पत्ति प्राप्त होती जाती है, जिसके हृदय में न्याय अधिक बसता है पक्षपात का पता भी नहीं

लगता; जो किसी से भी द्वेष करना या रखना चित्त के लिये एक महान् आपत्ति मानता है। जिसको कलह करना पसन्द नहीं है किन्तु शान्ति स्वभाव ही अधिक पसन्द है। जिसको ओलम्मे और कड़वे वा मिठे ताने किसी को देना रूचता ही नहीं है और न किसी की चुगली करना रूचती है। जो न तो कभी अत्यन्त दुःखी अवस्थामें घबराता है और न कभी सुखी अवस्थामें उन्मत्त होता है, जो कभी किसी की निन्दा करना अपनी जिह्वा को वा लेखनी को अपवित्र करना समझता है; जो कभी किसी के साथ विश्वासघात नहीं कर सक्ता; जो सत्य उसीको कहेगा, जिसको उसका हृदय सत्य मानेगा और असत्य उसीको कहेगा, जिसको उसका हृदय असत्यही मानता होगा। जो न तो अधिक हास्य स्वभाव वाला होता है और न निरर्थक भयभीत रहने के स्वभाववाला होता है; जो कभी भी विशेष चिन्तातुर नहीं रहता और जो किसी भी मनुष्य से चाहे वह कैसा भी बुरा हो घृणा नहीं करता है। केवल बुराईसे घृणा करता है। इतने गुण जिसमें हो वह ही सदाचारी है वही धर्मात्मा है। जितने अंशमें उक्त गुण हो उतने ही अंशमें सदाचारी और धर्मात्मा है। कोई यदि नित्य ईश्वर को भजता है, पूजापाठ करता है, तिलकछापे लगाता है, तीर्थ जाता है सामायिक प्रतिक्रमण करता है, मांस, मदिरा, कन्दमूलको स्पर्श तक नहीं करता, जलकाय और वनस्पति काय के जीवोंकी रक्षाके निमित्त कच्चे जलका और लीलोत्रीका त्याग रखता है। वायुकायके जीवों की रक्षाके निमित्त मुखपर मुखपति सदा वंधी रखता है तथापि उसको सदाचारी तवही कहा जा सकता है जब कि वह ऊपर वर्णन किये हुवे गुणों से युक्त हो।

परलोकके हित के निमित्त दान देना, व्रतादि करना, ध्यान करना, और गृहस्थको त्याग कर साधु हो जाना, आत्मोद्धार के निमित्त साधनाएँ करना इत्यादि सब साधनाएँ तबही सफल होगी जब कि पहले सदाचारकी प्राप्ती करली जावेगी अन्यथा इनसे इष्टसिद्धि कदापि नहीं हो सकेगी।

आज कल जबसे कि उपदेश वर्ग को अपनी अपनी साम्प्रदाय कायम रखने की अधिक चिन्ता पड़ी है तबसे उनके उपदेश भी इस सदाचार प्राप्ति पर तो बहुत ही कम होते हैं किन्तु अन्य बातों पर जिनकी आवश्यकता पहले दर्जे की नहीं है उन पर अधिक होते हैं। उदाहरण के लिये देखिये। लीलोत्री के त्याग के विषय में कितना जोर दिया जाता है। मुझको केला खाते हुवे देख कर एक बार एक भाई चिल्ला उठे अररर? आज बीज के दिवस केला खाते हो मैंने उत्तर दिया कि भाई साहब ऐसा क्या महान् अपराध मैंने कर दिया। यदि में आज केवल केले भक्षण करके अपना निर्वाह कर लूँ तो मैं केवल एक प्रकार के (वनस्पति काय के) स्थावर जीवों की जिनकी संख्या भी अधिक नहीं होगी हिंसा करके अपना निर्वाह करता हूँ किन्तु आप यदि लीलोत्रीका बीज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी आदिको त्याग करके सूखी लीलोत्रीं तथा अन्य रोटी आदि भोजन, चूल्हा जला कर तैयार कर, निर्वाह करते हैं तो आप को कितनी हिंसा, कितने काय की, कितने अगणित जीवों की हिंसा करनी पड़ेगी ? छहों कायमें शायद किसी कायकी हिंसा बचेंगी, लीलोत्री जो सुखाकर बाजारोंमें बेची जाती है उसकी हिंसासे भी बचा समझना भुल है।

क्योंकि खानेवालेपर उन सब प्रक्रियाओं के आरंभ समारंभ का दोष अवश्य रहता है। जो खाद्य वस्तु पर की जाती हैं इसी कारण तो मांसाहार करनेवालोंपर सब पर पाप समझा जाता है चाहे हत्या करनेवाला एक ही होता है अस्तु; सूकी खाने से भी वनस्पति कायकी हिंसासे तो बचे नहीं इस प्रकार लीलोत्रीका त्याग करनेसे और अधिक हिंसाके अपराधी बने। किन्तु यदि वनस्पति त्याग स्वाद त्याग के निमित्त किया जाता है तो कोई इन तिथियोंमें विविध प्रकार की नमकीन वस्तुएँ, विविध प्रकारकी मिठाईयां और विविध प्रकारके सूखे शाकादिको जो केवल स्वाद के लिये खाये जाते हैं त्याग नहीं करता है। गन्ना (सांठा) खानेमें अधिक हिंसा है ? वा खांड खानेमें अधिक समारंभ और हिंसा है ? अब विचार लीजिये कि हमारा लीलोत्री त्याग क्या महत्व रखता है ? क्या लाभदायक है ? ओह। हम तो उस दिन हरे दाने भी काममें नहीं ले सकते हैं। बहुत बड़ा त्याग है ? सूखे पत्तों सेही दाने बन गये होंगे ? अल्-बता एक कारण है जिससे यह प्रथा प्रारंभ हुई हो अर्थात् हमारेमें किसी जमानेमें लीलोत्री (साग) अत्यधिक खानेका प्रचार होगा। जिससे हमारे आरोग्य को भी हानि पहुंचती देखी होगी और माहमें १० दिवस छुडाकर उसका योग्य उपाय इस तरह किया गया होगा। किन्तु आजकल तो वनस्पति अधिक प्रमाणमें प्राप्त होना ही दुर्लभ है। मारवाड़ जैसे देशमें तो अधिक दुर्लभ है तब ऐसी दशामें इसके व्यवहारका किंचित् भी भय नहीं है किन्तु इसके त्यागको अधिक महत्व मिल जानेसे फल यह हुवा है कि कितने ही मनुष्य आयुपर्यंत के लिये वनस्पति (हरी) मात्रका त्याग कर देते हैं

जिससे उनके शरीरमें कुछ ऐसे रोग हो जाते हैं जो हरी वनस्पतिसे शरीरको एक प्रकार का ताजा तत्व नहीं मिलने से उत्पन्न होना विशेष संभव होता है।

एक यह भी विचारणीय विषय है कि हमने मांसाहार का त्याग उसमें हिंसा होने के कारण कितनी ही पीढ़ियोंसे कर दिया है। अब हमारे शरीर का बल कायम रखने के निमित्त केवल दो वस्तुएँ हैं, वनस्पति और दूध, (घी आदि दूधमें ही समावेश हैं)। दूधमें जो हिंसा है वह वनस्पतिसे कुछ कम नहीं है, किन्तु अत्यन्त अधिक है। कारण कि वनस्पतिमें तो केवल प्रायः स्थावर जीवोंकी ही हिंसा है, किन्तु दूधमें महान् हिंसा इस कारण है कि हम अपनी जबर-दस्तीसे किसी पशुके बच्चेका हक मारकर उसकी माता का दूध हम पी जाते हैं और नाममात्र के लिये उस बच्चेके लिये छोड़ देते हैं ताकि वह जीवित रह सके। क्या हम अपनी स्त्रीका दूध अपने बच्चेको नहीं पीने देकर अन्य को पिलाना स्वीकार करेंगे। यदि हिंसासे डरकर वनस्पति और दूधका त्याग हम करने लगें तो हमारी शारीरिक-ताकत को अत्यन्त धक्का पहुंचना भी संभव है क्योंकि इन्हीं प्राप्त शक्तिसे हमारा जीवन चलता है। बगैर हिंसा जीवन कायम नहीं रह सकता। अनावश्यक हिंसा का त्याग अवश्य करना चाहिये और इसका प्रयत्न अवश्य करते रहना चाहिये कि मुझसे हिंसा व्यर्थ नहीं हो। जिस हिंसा से बचनेमें जीवन का अस्तित्व और शारीरिक बल खतरेमें पड़ जाता है उस स्थावर जीवोंकी हिंसा का त्याग करनेका प्रयत्न करना और शारीरिक बलमें दुर्बलता स्वीकार कर लेना गृहस्थ वर्गके लिये न तो आवश्यक है बल्कि अनुचित भी है

क्योंकि उनको अपनी आत्मरक्षा के निमित्त और उदरपूर्ति के निमित्त शरीर बलकी आवश्यकता अत्यन्त[१] है।

हमारी त्याग की दशा उस पुत्र के समान हो रही है जिसके पिताने मृत्यु समय उसको यह उपदेश दिया था कि "कौड़ी पैसो तक की कदर करना इनको व्यर्थ नहीं गंवाना"। पिताके वचन, आज्ञा और उपदेश को अक्षर अक्षर पालन करने की पितृभक्त पुत्रने कोशिश की और सदा घर में जितने पैसे होते कौड़ियाँ होतीं तो उन को बड़े आदर की दृष्टि से देखता। उनको आवश्यकता के अवसर पर भी खर्च नहीं करने की कोशिश करता जहाँ तक हो सकता उनको बड़ी ारी संभाल के साथ संग्रह करके रखता। सदा इन के संग्रह की चिन्ता रखता और इस प्रकार अपने को मानता कि मैं अपने पिताका बड़ा आज्ञापालक भक्त हूँ किन्तु घर में जो रुपये थे, मोहरें थी, हीरे, पन्ने आदि जवाहिरात थे उनकी उसे विशेष परवाह नहीं रहती। कोई उन्हें चुराले तो फिक्र नहीं, कोई लेकर न दे तो परवाह नहीं, और कोई सम्पत्ति पड़ी पड़ी खराब हो जावे तो उसको क्या।

उसको तो बस कौड़ी पैसे की रक्षा और संग्रह का विचार रखना है उनको कदापि खराब नहीं होने देना है। रूपयों के खर्च में कोई कमी की उसे जरूरत नहीं उसे तो केवल अपने पिताकी आज्ञा को अक्षरशः पालन करना है। इसका फल यह हुवा कि कुछ

---

१ हरित काय का विधान मामूली गृहस्थोंके लिये नहीं है वल्कि नैष्ठिक श्रावक को भी चार प्रतिमा तक उसके त्याग की आवश्यकता नहीं है। जो लोग अभ्यास के लिये त्याग करते हों उनसे हम कुछ नहीं कहते परन्तु जो लोग रूढि के कारण या अपने को व्रती सिद्ध करने के लिये दूसरोंको उलहना देते है वे दंभी हैं।

ही वर्षों में नाम मात्रकी सम्पति उसके पास रह गई और शेष सब सम्पत्ति विदा हुई ।

इसी प्रकार हमारे धर्म शास्त्रकारों का मूल उद्देश्य तो था कि हम इतने बड़े विशाल दयालु बन जावें कि मनुष्यों के, पशुओं के, पक्षियों के, सूक्ष्म जन्तुओं के अतिरिक्त स्थावर जलकाय और वनस्पति काय के जीवों को भी अनावश्यक कष्ट न दें, उनके प्राण लेने से बचें और शक्तिभर उनको सुख पहुँचावे । यदि अनिवार्य रूप से उनकी हिंसा आवश्यक ही हो तो उसमें भी विवेक रखें ताकि व्यर्थ न होवे । किन्तु धर्मोपदेशकों द्वारा वा माता पिता द्वारा जो धर्म शिक्षा तथा जो संस्कार हम में पड़ते हैं उनमें यही होता है कि हम सूक्ष्म जन्तुओं की हिंसा का विचार रखें, कच्चा जल अधिक न काम में लें, वनस्पति (लीलोती) का त्याग रखें । कारण कि हमको तो यही उपदेश मिला है कि कीड़ी आदि सूक्ष्म जन्तु तथा जल काय और वनस्पति काय के जीवों तक की दया पालो और हम भी उस पुत्र की तरह ही यथार्थ ज्ञान ग्रहण नहीं करके रत्न तथा बहुमुल्य वस्तुओं की ओर लक्ष्य न देने की भाँति मनुष्य दया को भूल जाते हैं । और कौड़ी पैसों की कदर करते रहने की तरह केवल सूक्ष्म जीवों की रक्षाका ख्याल रखते हैं इस तरह हम अहिंसा वृतसे और सदाचारसे खाली हो जाते हैं ।

यदि हम लोग आज मनुष्य दया करते होते तो संसारमें हमारी कितनी भारी शान शौकत होती ? क्या हमने कभी मनुष्य दयामें नाम पाया है ? क्या कभी हमने गरीब मनुष्योंके उद्धारके निमित्त दीन आश्रम (Poor Houses) खोले हैं जहां अशक्त और अपंग मनु-

ष्योंको रखकर उनकी पालना की जावे ? क्या हमने औषधालय खोले हैं जहां गरीब मुफ्त इलाज करा सके ? क्या हमने अकाल पीड़ितों की सहायता करनेमें वा बाढ़ पीड़ितोंकी सहायता करने में अग्रभाग लिया है ? क्या दीन दुखी मनुष्योंकी सेवामें हम लोगोंने उचित श्रम लिया है ? धन व्यय किया है ? दुर्व्यसनियोंको शराब आदिके व्यसन छुड़ाकर उनपर महान् उपकार किया है ? क्या हमने कभी प्यासे अछूत भाईयोंको पानी पिलाया है और उनका जीवन सुधारने-का प्रयत्न किया है ? नहीं किया है। यदि किया भी है तो अत्यन्त कम। इसी तरह तो रत्न खोये हैं।

हमने यदि मांसाहारका त्याग कर रखा है और कभी पशु भी हत्या होनेसे द्रव्य व्यय कर बचाये हैं तो यह भी कोई बहुत बड़ा त्याग नहीं किया है, बहुत बड़ा धर्म नहीं कर दिया है। यह तो अहिंसा पालनका एक अत्यन्त सूक्ष्म अंश मात्र है। यदि किसी मांसा-हारीसे मांसाहार छुड़ा दें तो पशु छुड़ानेसे तो यह भी अधिक उत्तम होगा।

इस पशु रक्षासे हमने केवल पैसे ही चले जानेसे बचाये हैं अर्थात् एक रूपयेमें केवल पैसे भर अहिंसा ही पालन कर सके हैं आर सूक्ष्म जन्तुओंकी और स्थावर जीवोंकी रक्षा करके हमने कुछ कोड़ियों ही चली जानेसे बचाई है न कि घरकी संपत्ति, भूमि या अशर्फियें बचा ली हैं।

इस प्रकार केवल कौड़ी पैसों की बचत करते रहनेवाले और रुपये तथा भूमि संपत्ति खोनेवाले की तरह हम सूक्ष्म जीवों की अहिंसा पालन कर रहे हैं। परन्तु मनुष्य पर हमारे हृदयोंमें

दया नहीं, मनुष्यको हम ठग भी लेते हैं, मनुष्य के साथ द्वेष भी हम कर लेते हैं, मनुष्य पर भारी क्रोध भी हम कर लेते हैं, मनुष्य की सम्पत्ति भी हम हरण कर लेते हैं, मनुष्य के साथ हम असत्य भी बोल लेते हैं, मनुष्यको कटु वचन भी कह देते हैं, मनुष्यको व्यभिचारमें भी प्रवृत्त कर देते हैं, मनुष्यको लालचमें भी फांस देते हैं, मनुष्य पर अभिमान भी जतला देते हैं, मनुष्यसे कलह कदाग्रह भी कर लेत हैं तब हमारा सदाचार कहां? हमारा मूलगुण कहां?

कहा जा सकता है कि पैसे बचाते बचाते रुपये भी बचाने की शिक्षा और अभ्यास हो जावेगा। किन्तु यदि उम्र भर यह शिक्षा प्राप्तिपूर्ण नहीं हो और घरके रुपये तो पूर्ण हो जावें, और कुछ पैसे केवल संग्रह भी हो जावें, तो उनसे क्या काम चल सकता है? इसी तरह पहले हमको सदाचार सीखना चाहिये जिसका मूल है सत्य और अहिंसा, जिनके द्वारा हमारा हृदय परम पवित्र बन जावे और तब हमारे छोटे से त्याग का भी महान् फल होवे। पूर्वकालमें कोई तेलाकरके (तीन उपवास करके) बैठता और साधना करता तो सफल मनोरथ होता था ऐसे अनेक दृष्टान्त प्राचीन साहित्यमें मिलते हैं। किन्तु आजकल तेला आदि करनेवालोंमें सुफल तो शायद ही होता देखा जाता है। किन्तु उनके क्रोधकी बढ़ती हुई तो प्रायः देखी जाती है। इसका कारण यह है कि जिस तरह भूमिको नरम करके उसमें यथेष्ट खाद देकर और उसमें हल चला करके उस भूमिको उर्वरा बनाकर जब उसमें बीज बोया जाता है तो वह उत्तम और शीघ्र फलता है उसी तरह हृदय भूमिको सत्य (परविश्वास) तत्वसे पवित्र करके नरम करके और प्रेम और सदिच्छारूपी खादसे उसको

भर कर जब सद् मननरूपी हलसे उसको सदाचार परिपूर्णरूप उर्वरा बना लिया जाता है तब उसमें से अलौकिक सुफल उत्पन्न हो सकते हैं।

जब यह देखा जाता है कि लोग रात्रि भोजन जिसके कारण अनेक रोगादि की तथा असुविधाओं की भी अधिक संभावना रहती है और जिसका निषेध अत्यन्त जोरदार शब्दों में जैनियों के शास्त्रों में (और वेदान्तियों के शास्त्रों में भी मार्कंडेय पुराणमें तथा महाभारतमें) किया गया है और रात्रि को भोजन पान अभक्ष्य बतलाया है तथापि उस संबंध में तो अधिक ध्यान नहीं देते अर्थात् उस अभक्ष्य को तो सर्वथा त्याग करनेका निश्चय नहीं करते। कंद मूल आदि को जो आलस्य और क्रोध को बढ़ाने वाले हैं, तमोगुण उत्पन्न करने वाले हैं उनका सर्वथा त्याग नहीं करते किन्तु त्याग वनस्पति का पांचों तिथिमें करते हैं जिसका त्याग अत्यावश्यक नहीं है। साधुओं तक के लिये उसके त्याग की आवश्यकता नहीं बतलाई गई है उनके लिये भी उसको अभक्ष्य नहीं माना गया है और मना नहीं किया गया है।

इतना लिखने से लेखक का तात्पर्य यह नहीं है कि उसमें (वनस्पति के व्यवहार में) हिंसा नहीं है। हिंसा अवश्य है किन्तु यह अनिवार्य हिंसा है। पहले हमको निवारण करने योग्य पापों से बचने की क्रियासे निवृत्त होकर तब उस प्रवृत्ति में कदम रखना चाहिये। ऐसा नहीं करना चाहिये कि गुप्त अंग को ढकना जो अत्यावश्यक है उसको तो ढकने का खयाल नहीं रखे और मस्तक ढकने की सभ्यता का पालन करें।

यहि कारण है कि जैनियों पर आज कल संसार हंसता है। नहीं नहीं उनको हीन दृष्टि से भी देखता है जब कि वह जैनियों को एक ओर वनस्पति तथा जल के वर्तने में त्याग रखें वनस्पति तथा जल के वर्ताव में त्याग रखते हुवे दयाधर्मका ढोल पीटते हुवे, खटमलों की, सर्प, बिछुओं की अहिंसा पालन करते हुवे और पशुओं को हत्या होने से बचाते हुवे देखता है और दूसरी ओर मनुष्यों के साथ वर्ताव में ऐसा उदासीन पाता है कि अपने खुद के लिये वे किसी भी गरीबके घर को बर्बाद करते नहीं हिचपिचावे, कसाइयों को रुपया कर्ज दे दें। बड़ा ऊँचा सूद (ब्याज) खावें, अशिक्षितों के साथ गणना में अनीति करें, व्यापार में महास्वार्थी होकर इस बातका विवेक न करें कि हमारा इस व्यापार में तनिक लाभ होगा परन्तु इससे देशका कितना नुकसान होगा। और द्रव्य के लालची बन कर उसमें ऐसे मग्न हो जावे कि किसी दीन दुःखी की हालत क्या है ? उनको कुछ भी फिक्र नहीं ! लेखक की इच्छा तो यह है कि हमको अपने धर्म के वास्तविक स्वरूप को पहचान लेना चाहिये जिसके फल स्वरूप न तो हमारी इस संसार में हँसी होवे न हम हीन दृष्टि से देखे जावे और हमारे बोये बीज का फल भी जैसा हम चाहते हैं वैसा ही उत्पन्न हो।

अनेक पूजा पाठ करनेवालों को, सामायिक प्रतिक्रमण करनेवालों को, व्रत नियम और उपवास करनेवालों को भी जब लेखकने देखा है कि उनमें मानसिक और हार्दिक शुद्धि नाम मात्र भी नहीं होती और उनकी दशा उन क्रियाओं को नहीं करनेवालों से अधिक उत्तम नहीं होती तब उन क्रियाओं के करनेवालों के लिये उपयोगी

और अत्यावश्यक जिस आचार की प्रथम आवश्यकता है उसकी ओर यहाँ ध्यान आकर्षित किया है। किन्तु किसी के धार्मिक भावों पर आक्षेप करने का भाव लेखक का नहीं है। लेखक की सदिच्छा तो यही है कि हमारी क्रियाएँ व्यवस्थित रूप से हों ताकि न तो अव्यवस्था पर संसार हँसे और न हमारी उद्देश्य सिद्धि रूके।

सदाचार का स्वरूप हृदय में अंकित करने के लिये उसकी मूल जड़ को सदा लक्ष्य में रखना चाहिये उसकी मूल जड़ (तत्व) है। सत्य, नीति, न्याय पर अटल विश्वास, हार्दिक रूचि। चाहे उसमें सुख मिले वा दुख मिले, पर उसी पर बलिदान हो जाने को सदा तैयार रहना। जिस तरह पतंगे दीपक की ज्योति के पीछे लगे रहते हैं, चाहे उसी में मरते हैं। इसी का नाम सम्यकत्व या समकित है यही धर्मका मर्म है और उस सत्य और न्याय को व्यवहार में लाने का एक मात्र मार्ग है, अहिंसा जिसका प्राण है प्रेम। प्राणीमात्र पर हृदय में सच्चा प्रेम हो वही अहिंसा है और सत्य को प्राप्त करने में अहिंसा की प्रथम आवश्यकता है।

जिस समय हम लोग सत्य और अहिंसा के उपासक बन जाते हैं तो सभी धर्मों के उत्तम तत्वों का, लाभदायी व्यवहारों का वा कहें उसके खजाने के उपयोग करने का हमें अवसर मिल जाता है। मनुष्य तथा अन्य प्राणियों तक को अपना भाई समझनेका अवसर मिल जाता है, उसके लिये कोई शास्त्र भी झूठा नहीं है क्यों कि उसमें से उपयोगी तत्व को वह ग्रहण करने को सदा तैयार रहता है। उसके लिये कोई मनुष्य बाधक या शत्रु नहीं, क्योंकि वह अपने दोषोंसे दूषितता को पहचान कर दूसरोंके दोषों को भी क्षम्य

मानकर उसके आत्मा की अपनी ही आत्मा की तरह कदर और सेवा करता है। वह किसी बातको इसलिये नहीं माननेकी हठ नहीं करता कि वह उसके शास्त्रमें नहीं लिखी है और न किसी बातको इसी लिये हठपूर्वक मानता है कि वह उसके शास्त्रमें लिखी है किन्तु उसका तो यही उद्देश्य रहता है कि खानमें से रत्नों को और सुवर्णों को खोज खोजकर निकाल लेना और उन खानों के कंकर पत्थरों को छोड़ देना। अपनी खानके कंकर पत्थर भी रत्न हैं ऐसा कभी नहीं हठ करना और न ऐसा हठ करना कि रत्न तो हमारी ही खानमें हैं औरोंकी खानमें रत्न कहां ? वहाँ तो कंकर पत्थर ही हैं। सदाचार की प्राप्ति भी इसी तरह होती है और यद्यपि सदाचार की पूर्ण प्राप्ति तो होना असाधारण बात है। क्योंकि उसकी कहीं हद ही नहीं होती, मर्यादा ही नहीं होती तथापि जब मनुष्य उस सदाचारकी प्राप्ति जरा अच्छे अंशमें कर लेता है तो वह भी उसके जीवनके सौन्दर्य को सुशोभित करने लग जाता है। उसका सौन्दर्य इतना बढ़ जाता है कि उसक दर्शनोंके लिये मनुष्य दौड़ २ कर जाने लगते हैं उसके सौन्दर्य के आगे बड़ों बड़ों की शानशौकत इस तरह प्रकाशहीन हो जाती है और फीकी पड़ जाती है जिस तरह कि चन्द्रक शीतल प्रकाशके सन्मुख तारोंका प्रकाश।

हमारी जाति को शान शौकतकी जितनी इच्छा रहती है उतनी इच्छा शायद ही अन्य जातियों को रहती होगी। यदि वह उस सदाचाररूपी सौन्दर्य को प्राप्त करनेकी ओर अपना प्रयत्न आरंभ कर दे और इस सौन्दर्य को उचित मात्रामें प्राप्त कर लेवे तो उसके सौन्दर्यकी (सदाचारकी) शान के आगे बड़ी २ जातियों की शान शौकत भी लज्जित हो जावेगी।

सार्वजनिक सेवासे भी शान शौकत अधिक बढ़ती है। कीर्तिके भुखे हम लोग सहस्रों रुपया संडों मुस्टडोंको दक्षिणा देकर तथा माल खिलाकर उनको मुफ्तखोर और बेकार आलसी बनानेमें व्यय कर देते हैं। यदि धर्मशाला आदि कहीं बनाते हैं वा पाठशाला आदि स्थापित करते हैं तो उसमें भी सार्वजानिक उपयोग पसन्द नहीं करते तब हमारी सार्वजनिक सेवाके अभावमें शिक्षित और सभ्य समुदायमें क्या शान शौकत बढ़ सकती है? पारसी लोगों के कैसे कैसे बड़े बड़े महान् दान, न सिर्फ अपनी जातिकी संस्थाओंको किन्तु सार्वजनिक विश्वविद्यालयोंको होते हैं। बड़े बड़े दानोंसे छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं। बड़े बड़े दानोंसे औषधालय चलते हैं किन्तु जैन भाइयोंके कितने दान सार्वजनिक हितके निमित्त दिये जाते हैं। क्या जैनियोंमें बड़े धनाढ्य हैं ही नहीं?

जैनियों में धनाढ्य हैं उन्होंने द्रव्य भी व्यय किया है धर्म निमित्त किन्तु उसका फल आज क्या है? जैन तीर्थों के बड़े बड़े मंदिरों की प्राचीन कारीगरी धन के उपयोग से विदेशी कारीगरी के द्वारा ढ़क दी गई है। नहीं, नहीं, मटिया मेट कर दी गई है, हमारे देव मंदिर जो हमारे ध्यान स्थल थे, जहां जाकर हम सांसारिक शान शौकत को भूलकर चिरस्थायी शान्ति के उदाहरण रूप अपने इष्ट देव की वीत राग, शान्त मुर्ति, योगस्थ प्रतिमा को देखकर अपनी आत्मा के मुल स्वरूप की स्वाभाविक शान्ति की झांकी प्राप्त कर और ध्यानस्थ होकर आत्मानन्द में लीन होते हुवे आत्मा को उच्चातिउच्च गुणस्थान पर चढ़ाया करते थे। उसके बजाय वहां सांसारिक शान शौकत की वस्तुओं से परि-

पूर्ण परिस्थिति देखते हैं। जिसमें हमारे इष्ट देव हमसे भी कई गुण अधिक सांसारिक शान शौकतों से सुसज्जित किये हुवे विराजमान हैं। जहां अपने इष्ट देव के उन गुणाभूषणोंका स्मरण भी नहीं आता जिनके कारण हमने उनको अपना इष्ट देव माना है। आज तो उन की बड़ी बड़ी दुकानें चल रही हैं, उनके रुपये का बड़ी बड़ी मीले चलानेके लिये व्याज निमित्त उपयोग हो रहा है। प्रति वर्ष लाभ हानिका आंकड़ा भी शायद ही बनता है क्यों न हो जब उनका स्वरूप ही ऐसी शान शौकतदार है तब लाभ हो वा हानि, आंकड़े की जरूरत ही क्या है? यह है हमारे धनाढ्योंके और दीन दुखियों के धर्म द्रव्यका उपयोग। यदि इसके अतिरिक्त और किसीमें देवद्रव्य का उपयोग होता है तो, वह होता है मुकदमे बाजीमें, अदालतमें और वकील बैरिस्टरोंमें। यदि इस द्रव्यसे अपने इष्ट देवके प्रस्थापित सिद्धान्त अहिंसा के प्रचार के निमित्त संसार की सभी भाषाओंमें अहिंसा धर्मपर और जैन सिद्धान्तके स्वरूप पर निबंध और लेख उत्तमोत्तम प्रकारके लिखवाकर और सचित्र छपवाकर उनका कम मुल्यपर वा मुफ्त प्रचार सारे संसारमें किया जाता तो अपने इष्ट देवकी कितनी अधिक सेवा होती, कितने मनुष्यों को अहिंसा धर्म सिखाने रूप महान् सेवा होती कितना कष्ट और वध रूक कर पशुओंको और मनुष्योंको सुख पहुंचता, कितने विद्वान् इस कार्यमें उपदेशक नियत होकर धन्धा पा जाते और कितने क्षेत्रमें जैन धर्म और अहिंसाका प्रकाश फैल जाता। अलबत्ता जो हमारी आंखोंको जगमगाहट आज वहां नज़र आती है वह नज़र नहीं आती जो सजावट तथा सुवर्णादिके दर्शनसे नेत्रोंकी आज तृप्ति होती है वह तो नहीं होती और हमारे इष्ट देव भी जैसे संपतिशाली आज नज़र आते

हैं वैसे नहीं, किन्तु परमात्म्य स्वरूप की सुशांत अवस्था में नज़र पड़ते ।

किन्तु हमको तो भय था कि कहीं जैन धर्म वाहर देशमें तथा अन्य जातियों में जाकर अपवित्र नहीं हो जावे । किन्तु क्या कंचन को भी काठ लग सकता है ? और इतना होने पर भी जैन धर्म बाहर देशों वालों के पास पहुँचना प्रारंभ नहीं हुआ ?

परन्तु क्या अहिंसा धर्म वहां जानेसे भी कुछ हानि थी अपवित्रता हो जाती ? नहीं, हमको तो सार्वजनिक सेवाकी रुचि ही न थी । व्यापार में रहकर हमने तो स्वार्थपरता ही सीखी और उसी का उपयोग हमने धर्म में किया । उदाहरणके लिये देख लीजिये । तीर्थोंपर जाकर के किस तरह चतुराईसे धन संग्रह वहाँ घी की बोली बोलकर किया जाता है, जिसके द्वारा मनुष्य कुछ न कुछ दे ही बैठता है, नहीं नहीं रूचिसे कितने ही गुणा अधिक दे बैठता है । यह भी तो व्यापारिक बुद्धिका ही तो कौशल है ।

अपनी समझके अनुसार खूब देव द्रव्यका उपयोग किया गया किन्तु उससे वास्तवमें न तो हमारे देवकी कुछ सेवा ही हुई और न मनुष्य जातिकी सेवा ही हुई । तब हमको संसारमें कैसे कीर्ति और शान शौकत प्राप्त हो सकती है ?

सदाचार का ज्ञान कराने के लिये और हमे उसकी ओर बढ़ाने के लिये प्रथम सहायक माता होती है । दूसरे दर्जे पिता होता है, तीसरे दर्जे कुटुम्ब वा पड़ोसी होते हैं और पश्चात् शिक्षा, गुरू, धर्म गुरू, उपदेशक तथा पुस्तक लेखक होते हैं जिनके द्वारा मनुष्य को संस्कार और शिक्षा प्राप्त होती है ।

हमारी माताएं आज किस अवस्थामें हैं। अधिकांश स्त्रियाँ काला अक्षर भैंस बराबर समझती हैं। ग्राम निवासी स्त्रियोंकी प्रायः यही दशा है। नगर निवासी स्त्रियोंमें भी अच्छी पढ़ी लिखी शायद ही मिले वा बहुत कम मिले जिनके हृदयमें उत्तम शिक्षा प्र होनेसे आन्तरिक गुणोंका अच्छा विकास हो गया हो, जिनको वि व्यसनी हो जानेसे अनेक प्रकारका अच्छा ज्ञान हो गया और जिनके संसर्गसे सन्तानमें अनेक उत्तम गुण उत्पन्न जावे और सन्तानमें सदाचार के बीज आरोपित हो जावें। शे स्त्रियां या तो ऐसी साधारण पढ़ी लिखी हैं जो बहुत हुवा तो प लिख लें या प्रतिक्रमण सामायिक स्तवन सझाय मुखसे उच्चारण क लें। इनमें उतनी विद्या नहीं है जिसके द्वारा कुछ गुण उत्पन्न हो ग हों, जिनके कारण सन्तानमें कुछ उत्तम संस्कार उत्पन्न हो सके। शे अशिक्षित (अर्थात् जिन्होंने वर्णमाला ही नहीं सीखी उन) स्त्रियों तो क्या विशेष आशा की जा सकती है ? हमारे में जो अच्छे या ब संस्कार पड़ते हैं वे पहले माता ही की संगतीके प्रभावसे पड़ते हैं आज जो हममें संस्कार हैं उनमें माताके संस्कारोंका भी विशेष भा है, जो हमने शिशु अवस्थामें ग्रहण किया था। हमारी माताओंमें यद्य अनेक संस्कार अनेक कारणोंसे लुप्त हो गये हैं, तथापि वंशानुक्रमसे च आते हुवे कई सद्गुण ऐसे मौजूद हैं, जिनकी कमी अन्य जाती नव शिक्षित स्त्रियोंमें भी देखी जाती है। यद्यपि साधु साध्वी आदि व्याख्यानोंमें समयोचित और आवश्यकता योग्य उपदेश कम होते तथापि इनकी कथाओं द्वारा भी किसी अंशमें स्त्रियोंको कुछ शि अवश्य मिल जाती है, जिसके फल स्वरूप भी सूक्ष्म अंशमें स्त्रियों और सन्तान को किंचित् लाभ भी पहुंच जाता है। मातासे ह

प्रकार हमें किंचित् मात्र शिक्षा मिलती है। पिता, कुटुम्बी, पड़ोसियों आदिसे भी यद्यपि जानते हुवे वा नहीं जानते हुवे सदाचारकी शिक्षा बल प्रयोगसे और भय प्रयोग से किंचित् प्राप्त हुई है। तथापि साथही कितने ही प्रकारकी आवश्यक शिक्षा भी हमको उनके संसर्गमें मिल जाती है। शिक्षक तथा पुस्तकादिके द्वारा भी कितनी ही शिक्षा हम प्राप्त करते हैं जिसको भी बर्तावमें लेनें- पर हमारा ध्यान कम रहता है। केवल जानकारी बढ़ानेपर ही ध्यान अधिक रहता है। बल्कि प्रायः करके शिक्षा सदाचरण के निमित्त प्राप्त करनेकी चेष्टा करनेवाले कम होते हैं किन्तु पेट भराईका साधन उसको अधिक मान लिया जाता है। "सदाचारके लिये अधिकाधिक शिक्षा प्राप्त करो" इस वाक्य को स्वीकार करनेके लिये विरले ही तैयार होते हैं। यदि शिक्षा लोगोंको उपयोगी मालूम होती है तो इसलिये कि उसको प्राप्त करके अधिकाधिक द्रव्य उपार्जन कर लेंगे, जिससे अधिक सुखमय जीवन व्यतीत कर सकेंगे। शिक्षा से जो मानसिक सुधार अपनी जानकारीमें आते हैं उनके प्रति तो यह श्रद्धा हो जाती है कि ये हैं तो लाभदायक और आदरणीय, परन्तु इनको व्यवहारमें लेना हमारे लिये तो मुश्किल है। बस इस प्रकार सदाचार की बढ़ती जैसी हमारेमें शिक्षा के द्वारा होनी चाहिये वैसी नहीं होती। धर्माचार्य वा अन्य उपदेशक का व्याख्यान यदि कहीं प्रभावशाली हो और उनका आचरण भी वैसाही हो अथवा कोई लेख हृदय स्पर्शी हो तो अलबत्ता हमारे हृदयके तारोंको एक बार तो हिला ही डालता है और हमें सद्विचारों की ओर ले जाता है और सदाचरण की ओर भी उठाता है परन्तु यदि हमें अकर्मण्यों की संगति मिल जावे वा दुराचरणियों की संगति मिल जावे तो सब

असर साफ हो जाता है । यदि पुस्तकें या उपदेशक न भी मिले किन्तु अच्छे सदाचारी लोगों की संगतिमें नित्य रहनेका सौभाग्य प्राप्त हो जावे तो भी हम सुधरकर सदाचार की ओर बढ़ते हैं ।

इस युगमें शिक्षा प्राप्त करनेकी ओर रुचि सब ही लोगों में बढ़ रही है । यदि शिक्षा शैली ऐसी हो जिसमें सदाचार उत्पन्न करनेकी शक्ति हो तब तो यह शिक्षा इस संसारको शनैः शनैः स्वर्ग बना देगी, किन्तु यदि इस गुणसे हीन हो तो इस शिक्षासे मनुष्य चाहे और लाभ उठा ले मनुष्यत्वकी ओर आगे नहीं बढ़ सकेगा ।

विद्वानों के साधु महात्माओंके और धनवान् लोगोंके प्रयत्न से स्थान स्थानपर स्वजातिकी ओरसे शिक्षा संस्थाएं स्थापित की जा रही हैं ताकि अपनी जातिमें विद्योन्नति हो । यह हर्षका विषय है कि हमारेमें ऐसे सुविचार उत्पन्न होकर कार्य होने लगा किन्तु हमको यह समझ लेना चाहिये कि यह कार्य करके हम कोई बड़ा भारी कार्य नहीं कर रहे हैं । हमको नित्य भोजनकी आवश्यकता होती है और भोजन उपार्जन के लिये हमें शिक्षाकी आवश्यकता होती है । यदि इसके लिये हम शिक्षालय खोलकर शिक्षा प्राप्त करते हैं तो इसमें क्या विशेष कार्य कर रहे हैं । यहि चार भाई एक रसोई घर से ही भोजन प्राप्त करते हैं तो उनको ही किफायत और सुविधा है । इसी तरह यदि कन्या पाठशालाएँ खोलकर, बालकोंकी पाठशालाएँ खोलकर, छात्रालय खोलकर, गुरुकुल खोलकर और पुस्तकालय खोल-कर हम जाति भाई अपनीशिक्षा संबंधी आवश्यकताकी पूर्ति करते हैं तो इसमें क्या बड़ा उपकार कर रहे हैं परन्तु यदि हम उन शिक्षा-लयोंको यथाशक्ति सहायता नहीं देवें तो अपनी जाति के प्रति यह हमारा

द्रोह (बेवफ़ादारी) अवश्य है और यदि अधिक सहायता देवें तो जातिमें बड़प्पन के अधिक अधिकारी हैं कारण कि जातिमें कोई अगर बड़ा कहलानेके योग्य है तो वही है जो जातिके लाभके लिये, जातिकी आवश्यकताओं की पूर्तिके लिये और जातिके कार्य को अपना ही कार्य समझकर जातिकी अपने तनसे और धनसे अधिक सेवा करता है।

समस्त देशमें, आज हम पीछे हैं और शिक्षा ही की कमी हमारे अधःपातका एक मात्र कारण है। व्यापारिक बातों में बुद्धि के विकाश की अत्यंत आवश्यकता है परन्तु बुद्धिका विकाश बिना कला कौशलकी शिक्षा तथा वैज्ञानिक शिक्षा के स्वप्नवत् एवं भ्रमात्मक है।

"स्त्री वंध्या हो तो कुछ पर्वाह नहीं, दुर्दैवसे उसे गर्भ रह गया तो उसका स्राव हो जाना अच्छा, यह नहीं हो सकता तो गर्भपात होना अच्छा, अथवा जन्मते ही मर जाना अच्छा, लेकिन मूर्ख संतान होना अच्छा नहीं, क्योंकि मरनेका दुःख तो क्षणिक होता है किन्तु ऐसी मूर्ख प्रजा जीवन भर दुःख देती रहती है।"

ईश्वरकी अनमोल देणगी विद्यामृत जगमे छे सार।
विद्या छे उन्नतिको साधन करे प्रेम इनसूं संसार॥
लिखणो पठणो नहीं सुहावे ज्ञान मिलाणो लंबो छे।
धन होकर भी मूर्ख पशुमें ओभी एक अचंभो छे॥

किन्तु इन स्वजातीय विद्याशालाओंकी शिक्षा शैली यदि सार्वजनिक शिक्षालयों से किसी प्रकार से हीन हो तव तो इनका होना निरर्थक है। किन्तु यदि अधिक उत्तम हो तव तो इनकी उपयोगिता अवश्य है, और ऐसी ही शालाएँ प्रत्येक ग्राममें, नगर में और

कस्बों में जहां हमारी बस्ती हो खुलना जाति के लिये लाभ दायक है। ताकि जाति में अधिक पढ़े लिखे और अधिक विद्वान् मिलें। इस विषय में आजकल साधु मुनि आदि भी अच्छा प्रयत्न कर रहे हैं यह हर्ष का विषय है। इन महात्माओं की प्रेरणा से उनमें धर्म शिक्षा भी दी जाती है प्रायः सामायिक, प्रतिक्रमण, देववंदन और जीव विचार तथा नव तत्व की शिक्षा दी जाती है, इनको मौखिक कराया जाता है। इस धर्म शिक्षा से विद्यार्थियोंको चरित्र बल उन्नत करने में कुछ विशेष सहायता नहीं मिलती इसलिये यदि ये अर्थ सहित सिखलाये जावें तथा १८ पापस्थानक के विषयों पर उनको व्याख्यान सुना सुनाकर उनके हृदय तक उन अठारह पापोंकी बुराई की जानकारी उतारी जावे तो उनके चरित्र बलको उन्नत होने में, सदाचार का ज्ञान होने में और सदाचारी बननेमें यह धार्मिक शिक्षा अत्यन्त सहायक हो सकती है और धर्म शिक्षा देनेका हेतु सिद्ध हो सकता है। इसी तरह यदि इन शिक्षालयों में कुछ कुछ हाथका काम भी सिखाया जाया करे तो बड़ा लाभ हो सकता है। कताई बुनाई, पिंजाई, सिलाई, रंगाई, छपाई, लकड़ीका काम, कलईका काम, झलाईका काम, कम्पोजिंगका काम, छापनेका काम, घड़ी साजीका काम और रसोई बनानेका काम इत्यादि हुन्नर ऐसे हैं जिनसे स्वावलम्बी बनाया जा सकता है। ये आसानीसे सिखाये जा सकते हैं और यदि किसी भी धंधे में अच्छी रुचि उत्पन्न हो जावे और प्रवीण हो जावे तो नौकरी के लिये उसे दुर दुर नहीं भटकना पड़ेगा और भूखे भी नहीं मरना पड़ेगा।

यदि प्राथमिक तीन कक्षाओंमें बालक और बालिकाओंको साथ ही

पढ़ाये जावें तो इससे न तो किसी प्रकार की हानि है बल्कि लाभ है। जिन अध्यापिकाओंके पास कन्याऐं पढ़ती हैं उनके पास ही यदि बालक पढ़ेंगे तो प्रथम तो खर्चमें कमी होगी इसलिये अधिक योग्य अध्यापिकाएँ रखी जा सकेंगी। द्वितीय स्वजातीय भाई बहिनोंका परस्पर परिचय हो जावेगा और तृतीय एक दूसरे के साथ सभ्यता-पूर्वक रहनेका अभ्यास हो जावेगा और चतुर्थ बालकों को अध्यापिका ओंके पास पढ़ना अधिक स्नेहयुक्त प्रतीत होगा जिससे वे अधिक उत्तम पढ़ सकेंगे। तीसरी कक्षा की पढ़ाई ९ वें वर्ष तक प्रायः सब पूर्ण कर लेते हैं। इतनी छोटी उम्रमें भी बालक बालिकाओं के साथ पढ़नेकी बातमें आशंका का कोई कारण नहीं है। स्त्री पुरुषों में एक दूसरे से पृथक रहते रहते वह संयम और सभ्यता लुप्त होगई है जो साथ रहनेसे जागृत रहती है। इसका प्रयोग अमेरिका में और एशियामें किया गया है और इसको लाभदायी पाया है, इस संगति से बाल्य कालमें ही संयमका अभ्यास हो जाता है। इसी तरह अपने यहां की पाठशालाओंमें आरोग्यता संबंधी (शरीरबल कायम रखने संबंधी, व्यायाम संबंधी तथा सफाई संबंधी) शिक्षाका भी नियमित रूपसे दिया जाना अत्यावश्यक है। सफाई रखनेमें हम लोग इतने पीछे हैं कि यदि अंग्रेज लोग हम पर हँसे और हमको हीन दृष्टिसे देखें तो आश्चर्य की क्या बात है? हम लोग जेवर पहिननेमें व्यय कर सकते हैं किन्तु कपड़े साफ रखनेमें और मकानकी सफाई रखनेमें खर्च नहीं कर सकते। यदि खर्च नहीं कर सकते तो हाथसे श्रम करके सफाई रख सकते हैं परन्तु हाथसे श्रम नहीं करते। घरमें अनुपयोगी सामान बहुत सा रखेंगे, कचरा बढ़ावेंगे पर हमसे

उसका भी मोह न छुटेगा चाहे वह उम्रभर काममें न आवे परन्तु न तो हमसे वह किसीको दिया जा सकेगा और न फरोख्त ही किया जा सकेगा चाहे हमारी मकान की सफाई में वह अटाला कितना ही बाधक हो। हम लोग सफाई के संबंधमें हमेशा म्युनिसिपल या कारपोरेशनवालोंको दोष दिया करते हैं किन्तु हम स्वयं कम दोषी नहीं होते मकान में हरकहीं नाक साफ कर पोंछ देना, थूंक देना, रास्तेमें पिशाब करनेको बैठ जाना, पानी तथा कूड़ा आदि फैंक देना हमारी आदत हो गई है। कभी कभी तो हम लोग जल के उपयोग करनेमें जल कायके जीवोंकी हिंसा से भयभीत होकरके भी सफाई की ओर अपनी उदासीनता दिखला देते हैं। किन्तु यह बात भूल जाते हैं कि स्थावर एकेन्द्रिय जल कायकी हिंसा से बचकर यदि सफाई न रहकर मैल संग्रह होने देंगे तो बेइंद्रिय त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होगी और उत्पन्न होगा वह मरेगा भी अवश्य। जल काय के जीव तो अपनी स्वाभाविक मृत्युसे मरते हैं, किन्तु इन बेइन्द्रिय त्रस कायके जूओं, लीकों तथा अन्य मेलमें रहनेवाले सूक्ष्म जन्तुओंकी उत्पत्ति और मृत्यु हमारे अज्ञानके कारण होंगे। इसलिये इस कई गुण अधिक हिंसाके दोषी भी हम ही होंगे। इससे तो अच्छा है कि हम उचित सफाई रखनेके निमित्त आवश्यक जलको काम में लेकर यथेष्ट सफाई रक्खा करें, अलवत्ता जलको छानकर काममें लिया करें जिससे त्रस जीवोंकी रक्षा भी की जा सके। इसी ही प्रकारसे आरोग्य संबंधीं कितनी ही बातों का ज्ञान करा देना अत्यन्त आवश्यक है। जिसकी उपयोगिता जीवनमें पद पद पर सिद्ध होगी।

कितने ही शिक्षालयोंमें पढ़ाई पर तो बहुत अधिक जोर दिया

जाता है किन्तु खेल वगैरह पर कुछ ध्यान नहीं दिया जाता। यदि बालकोंको ६ घंटे पढ़ाया जावे तो कमसे कम २ घंटे तो नित्य खेलाना भी चाहिये जिससे उनका दिल बहलाव हो उनमें स्फुर्ती आवे और सहज व्यायाम भी हो जावे अन्यथा बालक सुस्त और ढव्बू बन जावेंगे और पढ़नेमें भी अच्छे नहीं रहेंगे।

इसी तरह पुस्तकालय भी बड़ी उपयोगी संस्था होती है, उनमें जाकर छोटे बड़े सभी लोग विविध प्रकारकी पुस्तकें और समाचार पत्र पढ़ते हैं। घर पर भी पढ़नेको पुस्तकें लाते हैं और पढ़कर नियत अवधिमें लौटा दिया करते हैं। इन पुस्तकालयों में इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि पत्र और पुस्तकें जो यहां भेटमें प्राप्त करके अथवा मुल्यसे खरीद करके पढ़नेके लिये रखी जावें वे बड़ी बुद्धिमानी से चुनाव करके रखी जावें ताकि ऐसे पत्र और पुस्तकोंसे पाठकोंको उचित और आवश्यक लाभ मिले किन्तु हानि किसी प्रकारसे नहीं पहोंचे क्योंकि कई पुस्तकें इस तरह की भी होती हैं।

जितनी भी संस्थाएँ हमारी जातिकी अभी चल रही हैं बहुधा धार्मिक शिक्षा की प्राप्तिके वहानेसे ही स्थापित हुई हैं और धार्मिक समर्थन भी उनको मिलता रहता है और कितनी ही संस्थाओंको कितने ही हमारे धर्म गुरू भी सहायता करवाते हैं। कैसे भी हों ये संस्थाएँ धार्मिकके अतिरिक्त सांसारिक शिक्षा भी देती हैं और हमारी जातिमें शिक्षा प्रचार कर हमको उन्नत ही करती हैं। अनेक स्थानों में ये शालाएँ साम्प्रदायिक होती हैं। कहीं स्थानक वासियोंकी तो कहीं मंदिर मार्गियों की। इन संस्थाओंमें भेद भाव निरर्थक है। उत्तम हो यदि ये संस्थाऐं मात्र ओसवालों की (मिश्रित) हो। उन

में धार्मिक शिक्षा जो जिनको जैसी मान्य हो दी जावे और जो पृथक् किसी को मान्य हो उसको उसकी आम्नाय के अनुसार दी जावे। सरदार हाईस्कूल जोधपुर और ओसवाल जैन स्कूल अजमेर में ऐसा ही है।

प्रथम तो हमारी जातिकी शालाऐं है ही वहुत कम जिसका कारण है कार्यकर्ताओं की कमी तथा अभाव । कन्या शालाऐं तो कितने ही वड़े वड़े कस्वों व नगरों तक में नहीं हैं । जितनी स्त्री शालायें हैं उनमें भी वहुत करके तो प्राथमिक ३—४ कक्षाओं तक शिक्षा दी जाती है, कुछ अंगुलियों पर गिनने जितनी शालाऐं ऐसी हैं जो मिडिल तक या एक दो ऐसी भी हैं जो ऐन्ट्रैन्स तक शिक्षा देती हैं किन्तु इस जमानेमें ज्यों २ अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार वढ़ रहा है त्यों त्यों उच्च शिक्षा की आवश्यकता भी अधिक वढ़ रही है। जो पद पहले ऐन्ट्रैन्स पास हो जाने पर प्राप्त हो सकता था उसके लिये अव वी. ए. पास करनेकी आवश्यकता है। ऐसी दशामें गरीव भाइयोंकी तो वड़ी ही कठिनाई है क्योंकि खर्च पढ़नेमें इतना वढ़ गया है कि साधारण आदमीको तो पढ़ना ही असंभव हो गया है। कितने ही छात्र राजपुतानामें पढ़नेके लिये, उच्च शिक्षाके लिये, पानी वगैर तड़फती हुई मछली की तरह आर्थिक सहायताके लिये प्रयत्न करते फिरते हैं। भाग्यसे ही किसी एक आध को कहीं से सहायता मिल जाती है शेष नाउम्मेद होकर बैठ जाते हैं धनिक भाइयों के लिये यह अपनी जाति सेवाका सुअवसर है ऐसे छात्रों को रूपया ऋण दे करके उनको उच्च शिक्षा प्राप्त करनेमें सहायता दे जिनके लिये उन्हें विश्वास रखना चाहिये कि वे

द्रव्योपार्जन करेंगे तब अवश्य चुका देंगे। ऐसे फंड खोलनेकी महान् आवश्यकता है।

किन्तु इस शिक्षा सहायता को वही कर सकेगा जो शिक्षा की कदर जानता होगा। शिक्षाके भूखों के कष्ट को पहचानता होगा और जातिके प्रति सच्चा सेवाभाव रखनेवाला होगा। ऐसे सुकृतमें निज द्रव्य का उपयोग होना भाग्यवानी है। जिसने पूर्वजन्ममें शुभ कर्म किये हो उसको यह भाग्यवानी प्राप्त हो सकती है। ऐसी संस्था ओसवाल जातिमें खानदेशमें है जो छात्र वृत्ति देकर उच्च वर्गमें शिक्षा प्राप्त करनेवालोंको सहायता देती है। किन्तु प्रथम तो वह एक जिले के लिये है बचत हो तो अन्य जिलेमें सहायता देती है, दूसरे उसका फंड इतना बड़ा नहीं है कि सब स्थानवालें को सहायता दे सके। कॉलेज खोलनेसे पहले इस फंड का खोलना अधिक सहज और उपयोगी होगा और इससे भी अधिक उपयोगी बड़े बड़े शिक्षाकेन्द्रों के स्थानोंमें महावीर विद्यालय जैसे छात्रालय खोलना होगा किन्तु वह उतना सहज कार्य नहीं है।

हमारी जाति की चलती हुई जितनी भी संस्थाएँ हैं उनकी ८० प्रतिशतकी आर्थिक स्थिति दुर्बल पाती है। प्रथम तो अपनी जातिमें कार्यकर्ताओं का ही अभाव है यदि इने गिने कार्यकर्त्ता बिचारे अपना घर का काम छोड़कर जातिके कार्य करनेमें समय देतें हैं, तो लोगों का आर्थिक सहायता देनेमें अनुत्साह देखकर वे स्वयं निरुत्साहित हो जाते हैं। अनेक प्रकारके प्रयत्न उनको संस्थाओंका खर्च चलाने के निमित्त करने पड़ते हैं, जिसमें उनका इतना समय चला जाता है कि संस्थाओंमें किस प्रकार शिक्षादि विषयमें सुधार तथा उन्नति

की जा सकती है इसका विचार करनेका ही उनको अवकाश नहीं मिलता और फल यह होता है कि संस्थाऐं साधारण दशामें चलती हैं अधिक उन्नत नहीं हो सकती।

दूसरी आपत्ति एक यह भी होती है कि जो उन संस्थाओं को अच्छी सहायता देते हैं उन ही को सभापति या प्रधान बनाया जाता है। उन ही के उस संस्था पर शासनाधिकार भी रहते हैं। संस्था उन ही की सहायता पर और मंत्री के परिश्रम पर ही निर्भर रहती है किसी कार्य से नाराज़ होकर पदाधिकारियों और सभासदों में फूट पड़ जाती है और इन दोनों के झगड़ों में संस्था ढिली पड़ जाती है और उठ भी जाती है (अजमेर में ओसवाल जैन बोर्डिंग हाउस ऐसे ही कारणों से उठा था।)

यदि संस्थाओं की आर्थिक स्थिति उत्तम रहती हो तो न तो कार्यकर्ता निरुत्साहित होकर भागें और न कोई मनमानी कर सके कारण संस्था किसी पर निर्भर तो रहे नहीं वह तो सारों पर निर्भर रहे, कुछ रूठ भी जावे तो क्या हो और इस प्रकार संस्था को धक्का न लगे इसलिये हमारी संस्थाओं में ऐसे नियंत्रण की आवश्यकता है जिसमें जाति के प्रत्येक बन्धु से सहायता मिला करे जिसकी जितनी शक्ति हो उससे उतनी ही ली जाया करे और न मूल कोष ही संस्थाओं में होना चाहिये, जिससे कि कार्यकर्ता मनमानी इतनी कर सकें कि फिर उनको किसी से कुछ सहानुभूति की ही आवश्यकता नहीं रहे तथापि संस्थाओं क भवन (मकान) निजी आवश्य होना चाहिये।

हमारी संस्थाओं की आर्थिक स्थिति (आय) तब ही उत्तम हो

सकेगी जब हमारी जाति, शिक्षा के महत्व को अच्छी तरह समझ जावेगी और द्रव्य के सदुपयोग के महत्त्व को अच्छी तरह समझ जावेगी ।

भूलना नहीं चाहिये कि सदाचार के पश्चात् यदि कोई उपयोगी और आवश्यक वस्तु है तो शिक्षा है। सदाचार हृदय को उन्नत करता है तो शिक्षा बुद्धि को उन्नत करती है। अशिक्षित सदाचारी विशेष उपयोगी नहीं तो असदाचारी शिक्षित किसी भी उपयोगका नहीं। सदाचार और शिक्षा दोनों हो तब ही सोना और सुगंधि हैं। यही ज्ञान और क्रिया हैं। ज्ञान बगैर क्रिया अन्ध है और क्रिया बगैर ज्ञान अपंग है। सदाचार सम्यञ्चारित्र का कारण है और शिक्षा सम्यकज्ञान का कारण है।

सदाचार का प्रचार करने के लिये और दुराचार को मिटाने के लिये वा दूसरे शब्दों में कहें तो सामाजिक कुरीतियां मिटाने के लिये कुसंप हटाने के लिये और अविद्या को दूर करने के लिये तथा संप, शिक्षा और सुरीतियों को प्रचार करने के लिये भी हमारी ओसवाल जाति में अनेक मण्डल, सभाएँ, समितिएँ, सोसायटिएँ और महासभा खुली हैं उनका प्रारम्भ समय का जोश देख कर तो उनको शूर वीर कहना भी अनुचित नहीं हैं किन्तु कुछ दिवस पश्चात् ही जब परस्पर ही कार्यकर्ताओं में फूट फैलने लगे, पार्टी वन्दी होने लगे तो न मालुम वह प्रारम्भिक जोश कहां छुप जाता है, जातिभर में सम्प कराने की इच्छा वालों से अपने परस्पर ही सम्प नहीं किया जाता। उनको देख कर लोग हँसते हैं और उनकी मजाक उड़ाते हैं देखो इन्होंने कैसी उन्नति की है?

यदि आपस में पार्टी बन्दी नहीं होती तो सुस्ती और निरुत्साहित फैल जाती है और कार्य कुछ नहीं होता। क्या ही अच्छा हो कि प्रथम आरम्भही में अत्यधिक जोश नहीं दिखलाया जावे। जोश थोड़ा ही रखा जावे परन्तु स्थायी रखा जावे। उसमें सभासद कम होवे तो परवाह नहीं किन्तु ऐसे सभासद नहीं लिये जावें जिनमें किसी सभासद को उज्र हो वा जिनको सभासद बनाने में केवल सभासदों की संख्या मात्र बढ़ती हो। जिनमें सभासद होनेकी योग्यता हो और जो जाति सेवा की रूचि रखते हों उन्हीं को सभासद बनाया जावे। ५० निरूत्साही अकर्मण्य सभासद इतने लाभदायक नहीं निकलेंगे जितने १० उत्साही और स्थायी जोशवाले सभासद लाभदायक निकलेंगे। इन सभाओं को प्रस्ताव कम पास करना चाहिये और उनको कार्य में उत्तम रीति स परिणत करते रहना चाहिये इससे उनमें निश्चय बल की शक्ति उत्पन्न हो जावेगी। इनके अतिरिक्त समय की और नियमों की पावन्दी पर भी यथेष्ट लक्ष रखना चाहिये जिससे न तो कभी फूट पड़ेगी और न स्तुति फैल सकेगी। उन्हें यह भी अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि इस सभा के द्वारा प्रथम हमारा सुधार होवेगा तब जनता का होवेगा। इन बातों के अभाव में कितनी ही सभाएँ अल्प आयु में ही अपना अस्तित्व समाप्त कर देती हैं।

समाचार पत्र आदि भी एक प्रकारकी शिक्षा संस्थाही है जिनका कार्य होता है समाज की परिस्थिति को प्रगट करते रहना और समाजको उचित माग वल पाते हुवे आदश की ओर वढ़ाते चले जाना। प्रत्येक धर्म संप्रदाय, प्रत्येक समाज, प्रत्येक राजनीतिज्ञ और

प्रत्येक तरहके प्रचारक इसी साधनसे वर्तमान छापा युगमें अपना प्रचार कार्य करते हैं।

करीब १० वर्षसे "ओसवाल" नामक एक मासिक पत्र हमारी जातिमें भी चल रहा है। उसका प्रारंभ रायसाहिब श्री किशनलालजी बाफना ने जोधपुरसे किया था और शीघ्रही वहां की ओसवाल यंग मेन्स सोसायटी को प्रकाशनार्थ सम्हला दिया था। कुछ वर्ष पश्चात् अखिल भारतवर्षीय ओसवाल युवक महा मण्डल की स्थापना हुई जिसको सोसायटीने सम्हला दिया। महामंडल स्वयं धराशायी हो गया और इस पत्रको बन्द कर देनेकी नौबत आन पहुँची तब आगरा निवासी श्रीयुत पदमसिंहजीने इसको अभयदान देकर ले लिया। इनने कुछ वर्ष तो संपादन तथा प्रकाशन दोनों कार्य किये किन्तु कुछ वर्ष पश्चात् संपादन का कार्य उन्होंने कितने ही अन्य सज्जनों से कराया और प्रकाशन स्वयं करते रहे हैं। आजकल भी वे ही प्रकाशन कर रहे हैं और सुजानगढ़ निवासी श्रीयुत पृथ्वीराजजी डागा सम्पादन कार्य कर रहे हैं।

श्रीयुत पदमसिंहजीने इसको अब तक जीवित रखा है जिसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं किन्तु इस बातका हमें बड़ा खेद है कि पत्र की दशा इतने वर्ष हो जाने पर भी और योग्य संपादकों के हाथ में जाते रहने पर भी तथा अनेक जाति सेवकों द्वारा चुप चाप घाटापूर्ति होते रहने पर भी ऐसी है कि जैसी प्रारंभ कालमें थी। इस पत्र से जो लाभ जति को पहुँचना चाहिये था नहीं पहुँचा और सदा दरियाफ्त करने पर यही मालूम हुआ कि प्रकाशक महाशयकी ओरसे विलम्ब होता है तथा अन्य त्रुटियां रहतीं है। उधर प्रकाशक महाशय

को सदा आर्थिक शिकायत तथा अवकाश की कमी है । हमारी अल्प सम्मति में यदि उनको अवकाश नहीं है तो प्रकाशन कार्य भी या तो किसी अन्य सज्जन को सौंपना वा कुछ समयके लिये बन्द कर दिया जाना भी बुरा न था ताकि या तो कोई अन्य सज्जन बन्द होता देखकर साहस कर लेते या कुछ समय पश्चात् पुनः निकाला जाता । इस पत्र का हिसाव यदि प्रति वर्ष इस पत्रमें प्रकाशित कर दिया जाता तो भी इस पत्र का जीवन इतना संकटग्रस्त नहीं रहता । जो कुछ इसकी दशा हो रही है उससे तो शीघ्रही इसकी मुक्ति आवश्यक है या तो हिसाव प्रकट किया जावे और आवश्यक सहायता समाजसे भी दी जावे और इसको उत्तम स्थितिमें सुधारकर लाया जावे या बन्द ही किया जावे । ऐसी परिस्थिति तो वांछनीय नहीं है ।

"ओसवाल नव युवक" नामक मासिक पत्र भी कलकत्ते से निकला है । पत्र का प्रकाशन तथा कार्यकर्ताओंका जोश (प्रकाशक ओसवाल नवयुवक समिति की ओरसे कार्य करते हैं) अच्छा उत्साह पूर्ण है किन्तु सम्पादन तथा लेखों में अभी बहुत आगे बढ़ने की आवश्यकता है । इसके संचालकों को धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि इनका जोश स्थायी होगा न कि केवल प्रारंभिक ।

सामाजिक संस्थायें ।

ऐसे तो अनेक गांवोंमें हमारे सुधार प्रिय युवकोंने कई छोटी छोटी संस्थायें स्थापन कर रक्खी हैं, किन्तु जिनका अखिल ओसवाल समाजसे संबंध हैं वे केवल दो ही संस्थायें थी । (१) अखिल भारत-वर्षीय ओसवाल महासभा (२) अखिल भारतवर्षीय नवयुवक महामंडल, महासभाका जन्म वोदवड़में और महामंडलका जोधपुरमें जन्म हुआ

किन्तु अफसोसही क्या बड़ी लज्जाकी बात है इतने बड़े समाजमें महासभा और महामंडल मृत्युशय्यापर सोये हुये अन्तसमयके श्वास ले रहे हैं किन्तु किनके कानों जूं तक नहीं रेंगतीं, बंबई में भी एक युवकमंडल नाम की संस्था स्थापित की गई है और वह मंडल महासभाको हाथमें लेने की महत्वाकांक्षा भी रखता है किन्तु न मालूम क्या हुआ । अबतक महासभाकी कोई चिकित्सा शरू नहीं हुई । हमारे सुधारक बन्धु उतावले बनकर नये नये मंडळ, सभा आदि स्थापित तो कर देते हैं साथ ही समाज को तरह तरह के आश्वासन भी दे देते हैं किन्तु थोड़े समय में जब कार्यका अनुभव होता है तब वे अपनी आरंभ शरू की उतावली मनोवृत्तिपर पश्चाताप करने लग जाते, हमारा यह मंतव्य नहा कि युवक समाज संगठित होने के लिये ऐसी संस्थायें नहीं खोले, हम तो संगठनके लिये ऐसी संस्थाओंको अत्यावश्यक समझते हैं । हमारा अनुभव है कि अपना सर्व प्रकार का बल बढ़ाये बिना अनेक संस्थाओं का आस्तित्व मिट गया है, समाज पिछड़ा हुआ होनेसे वह तो ऐसी संस्थाओंको नहीं अपनावेगा इसलिये स्वावलंबी बनकर लियाकत हो तो जरूर नई नई संस्थाये खोलना चाहिए अस्तु ।

समाजमें संगठनकी अत्यंत जरूरी है, विवाह संस्थामें उच्छंखलता खूब फैल गई है समाज नियम बद्ध नहीं होनेसे तरह तरहके रोगोंका शिकार बन गया, यदि हमें उन्नत होना है, हमें समाजिक सुधार करना हो तो संगठित होना ही पड़ेगा और इसी उद्देश को सामने रख कर मुनि श्री परमानंदजी महाराज (जो कि स्थानक वासी जैन साधु के वेषमें है किन्तु सांप्रदायीक भेद भावको नष्ट करनेवाले एक

आले दर्जेके समाजसुधारक है जिनके हृदय में रात दिन समाज-सुधार की चिन्ता लगी रहती है) ने लग भग १०–११ वर्ष पहले अखिल भारत वर्षीय ओसवाल महासभाको वोदवड़ (खानदेश) में जन्म दिया, और १९१९ के अगस्त मासमें मालेगांव (नासिक जिला) में महासभाके मेम्बरों की जनरल मिटिंग पूज्यवर मानिक लालजी कोचर वकील B. A. L L. B. नरसिंहपुरवाले की अध्यक्षता-में भराई गई। इस मिटिंगमें उपस्थिति लग भग ५०० सज्जनों की होगी। बड़े बड़े व्याख्याताओं के समाजसुधार पर जोशीले व्याख्यान भी हुए, असर भी ठीक पड़ा किन्तु इस अभागे समाज की अवनत दशा का अन्त होना रह गया था। मालेगांव जनरल मिटिंगके बाद मुनि परमानंदजी तथा पूज्य० मानिकलालजीमें मतभेद हो गया। कहा जाता है इस मतभेद का कारण मुनिजी स्थानकवासी जैन होनेसे उनके हाथमें अखिल समाजकी महासभा के सूत्र नहीं रखना चाहिये, इसलिये पू. मानिकलालजीने मिटिंगमें ही ५१ कार्यकर्ताओंकी (वर्किंग कमेटी) एक कमेटी स्थापन कर सभा का आफिस जामनेर रख कर सेठ राजमलजी को मंत्री बनाये, और जाहिर किया गया कि महासभा का ऑफिस जामनेरमें है, मुनिजी भी कब स्वस्थ बैठनेवाले थे, इतने दिनका पाला पोसा हुआ महासभा का वृक्ष सहजासहज दूसरों के हाथ देना अनुचित समझने लगे, यों दोनों पक्ष समाचारपत्रों द्वारा खूब आन्दोलन मचाने लगे, खूब वाग्युद्ध हुआ। अन्तमें मुनिजीने अपनी वोद्वड़ीय सभाकी रजिस्ट्री २६–१–१९२० को करा ली तब जामनेरीय सभावालोंने मौन धारण कर लिया किन्तु अपनी वाग्युद्ध का परिणाम बहुत बुरा निकला, समाजकी हमदर्दी इन दोनों सभावालोंने गमा

दी थी, उचित तो यह था कि जरा दूरदर्शितासे काम लेकर आपसमें मिल जुलकर काम करते। १९१९ की जनरल कमेटी तक समाज इस बातकी राह देख रहा था कि अब शीघ्रही सुधाररूपी सूर्यउदय होगा किन्तु १९१९ के अगस्तमें सारी आशाओं पर पानी फिर गया, अबतक महासभा दफ्तरोंमें पड़ी है १९१९ के वाग्युद्ध के वाद आपसमें सुलह कर दो सभाकी एक सभा कायम रखकर महासभा का कार्यारंभ करनेके लिये समाचारपत्रोंमें आन्दोलन हुआ किन्तु दुःखकी बात यह निकली कि समाजमें कार्यकर्ताओंका अभाव होनेसे कोरे कागजों के घोड़े नाचे, सार कुछ नहीं निकला, दोनों पक्षों से पत्रव्यवहार कर दोनों सभा किसी एक त्रयस्थ व्यक्तिको सौंप देनेकी प्रार्थना की गई किन्तु वही हुआ, मुनिजीकी सभा का दफ्तर आगरेके बाबू पद्मसिंहजी सूरानाके पास पड़ा है और जामनेरीय सभाके कागजात इन्द्रचन्द्रजी नाहटा के पास मोभास पड़े हैं यह हालत हमारी महासभा की है, यदि सभाकार्य अबतक ठीक चलता तो आजतक संगठनकी समस्या हल हो जाती, अनेक प्रांतीय सभायें एवं ग्राम सभायें स्थापन हो जाती किन्तु हमारे दुर्दैवसे हम यह सौभाग्य अवतक नहीं देख सके, बंबईके युवकसंघ मंडलने महासभा का अधिवेशन भरानेकी आशा दिखलाई थी। हम मंडलकी ओर

---

१ निवंध लिखनेपर ओसवाल महासभाके जन्मदाता मुनिश्री परमानंदजी महाराज के पत्र से ज्ञात हुआ कि "आगरासे दफ्तर महासभा का आगया है उनसे कार्य नहीं हुआ...सब सामान पड़ा है कोई चलानेवाला हो तो मैं दे दूंगा।" है कोई समाज कर्मवीर महासभाकी धूरा अपने कंधेपर लेनेवाला, अगर हो तो आगे आवे।

टकटकी लगाये बैठे हैं किन्तु मंडल से इतना कहे बिना नहीं रहते कि वह आरंभ शूर नहीं बने, ठोस कार्य करना है। कलकत्तेमें भी एक युवक समिती स्थापन करीब दो वर्षोंसे हुई है समितीके कार्य-वाहक, अच्छे कार्य करती मालूम होते है महासभाकी तर्फ हम समिती का ध्यान आकर्षित करते हैं।

महासभाके अतिरिक्त दूसरी उल्लेखनीय संस्था जोधपुरका युवक महामंडल है इनकी दशा महासभा जैसी दुःखद है इस युवकमंडलका प्रथमाधिवेशन जोधपुरमें १९२२ के जूनमें पू. मानिकलालजी को-चरके सभापतित्वमें हुआ, बाद अबतक महामंडल कौनसी गुफामें बैठा बैठा तपश्चर्या कर रहा है जिनका अभीतक पता नहीं, महासभा और महामंडल आज कायम रहते तो समाज को हम नये स्वरूप में देखते किन्तु वह दिन देखना हमें दुश्कर हो गया है। सुधारकी आशा नवयुवकोंसे ही की जाती है इसलिये हम नवयुवक बन्धुओं से निवेदन करते हैं कि महासभा तथा महामंडलका शीघ्र कार्यारंभ कर दीजिए।

ओसवाल भूपाल

हमारे बुजुर्गों ने अपने प्रयत्न से और कौशल से ऐसी सभ्यता और उदारता अपने भीतर संम्पादन की थी कि उसको देखकर अन्य सब जातियां दंग रह गई। किसी अत्याचारी से मुकाबला कर रक्षा करने का काम है ओसवाल करने को उद्यत है। किसी पीड़ित को तन से और धन से सहायता की आवश्यकता है ओसवाल ही कर सक्ता है। किसी सार्वजनिक कार्य में दान की आवश्यक्ता है ओसवाल इन्कार नहीं करते। उनके पास किसी काम के लिये जाना

है यदि उनसे नहीं भी हो सके तो भी उत्तर मीठे वचनों से देंगे। इनके परस्पर वर्ताव को, व्यवहार को, बोल चाल को, देखकर तो लोग राजा महाराजों की सभ्यता को भी भूल जाते। ये कभी अह-सान करके जतलाते नहीं थे। यदि काम कराते चार पैसे की मजदूरी का तो लाभ पहुँचा देते आठ पैसे का। और सबके साथ बोल चाल तथा प्रत्येक व्यवहार ऐसा होता था कि उसे देखकर सब को कहते बनता था कि इनकी कृपा और सभ्यता तो राजाओं से भी बढ़कर है इसलिये ये ओसवाल भूपाल है।

स्वार्थपरता से और काल प्रभाव से वह बात अब नहीं रही है तथापि उसका अंश जो अब शेष रहा है यदि वह भी हममें बचा रहे तो हमारी इसमें सच्ची और बड़ी शान शौकत है वह उस पूर्व सभ्यता की स्मारक है। हमारी विनय शीलता, बोल चाल और पारस्परीक व्यवहार और आदर भाव देख कर आज दिन भी लोगों को कहते सुना है कि ओसवाल भूपाल हैं।

आज दिन भी किसी ओसवाल महाशय के घर यदि कोई अपरिचित ओसवाल भी आ जावे तो उसकी जिस सभ्यता से मेहमानी की जाती है वह अन्य लोगोंके घर नहीं देखी जाती। वही सहृदयता और सत्कार हमारी जाति की शान शौकत हैं।

देशी राज्यों के निवासियों में यह सभ्यता अधिक पाई जाती है। छोटे ग्रामों तकमें यह सभ्यता पाई जाती है। बल्कि नगरोंकी अपेक्षा ग्रामोंमें अधिक सहायतासे सत्कार किया जाता है। हमारी सभ्यता परस्पर तो है ही किन्तु अन्य जातियोंको प्रति भी कैसी है कि हम लोग जिन जातियोंको हम सब छूते हैं उनके प्रति

ऐसी असभ्यता प्रदर्शित कभी नहीं करते कि हम तुम्हारे हाथका भोजन नहीं कर सकते हैं, यवन तथा अन्य विदेशी अहिंदू जातियों की तो बात ही पृथक है क्योंकि ये तो हमारे धर्म विध्वंसक के रूपमें यहां आये थे इसलिये इनके साथ इतना असहयोग विचारशील हिन्दुओंमें होनेके कारण रखना पड़ा था।

यद्यपि कितने ही स्थानों में कच्ची, पक्की चौका आदिका भूत हम लोगों में भी घुस गया है इसका कारण यह है कि हमारे लोगोंने वहांके लोगों से अपनेको निंदित होना पसन्द न किया जिन लोगों में उन्हे व्यापार में साथ रहना था किन्तु उन्होंने उसको अपना धर्म तत्व मानकर ग्रहण नहीं किया केवल सामायिक आवश्यकता मान कर ग्रहण कर लिया है। जैन शास्त्रों में कहीं भी इसकी आवश्यकता नहीं बतलाई गई है। इसकी व्यर्थता को, हानि को, असुविधाजनकता को जगत् समझने लग गया है और उसके साथ साथ ही हमारे उन भाइयोंका भूत भी उतर जावेगा और कहीं नहीं उतर सकेगा तो अपने पूर्वजों की भूमि मारवाड़में आकर उतर जावेगा। परन्तु हमारी पूर्व सभ्यता वर्तमान अवस्था देखते हुवे तो खतरेमें नज़र आती है और संदेह यही है कि ओसवाल भुपाल अब शायद कुछ ही दिवस और कहे जावेंगे।

कलकत्ते से देशी विलायती की सेलभेल सम्बन्धी जो झगड़ा शेखावाटी में फैला था उसमें यहां तक तो पारस्परिक व्यवहार हुआ है कि बहन बेटी दूसरे के घर मृत्यु अवसर आदि पर जाती आती तो पानी तक भी नहीं पी सकती थी, कहिये इस दशाका, इस हार्दिक भिन्न भावका भी कुछ ठिकाना है। एक विलायती पक्षवाला और एक देशी पक्षवाला दोनों किसी अन्य के घर एक ही दावत

(जीमण) में जीमणे चले जाते तो देशी पक्षवाले पर सेलमेल हो जानेका दण्ड होता। क्या जातीय मतभेद इस हद तक पहुँचना उचित है कि ऐसा व्यवहार त्याग आपस में हो जैसा किसी शत्रू के साथ शायद भी हो। जातीय मतभेदों पर अधिक से अधिक इतना हो सकता है कि परस्पर एक दूसरे का भोजनका निमन्त्रण स्वीकार न करे जब तक कि वह मामला सुफल न हो जावे किन्तु उक्त व्यवहार अत्यन्त हीन दर्जेका हो जाता है!

इसी तरह आज कल कई घराने जो अपने तई इज्जत में बड़े मानते हैं, जब उनसे कोई उनके पुत्रोंकी सगाई सम्बन्धी बात चीत करने आता है तो कहते हैं कि इतना डोरा (इतने हज़ार रूपये) तो कल एक सगपण वाले आये थे सो देते थे पर हम अभी विचार कर रहे हैं। इस प्रकार की बातें करके डोरा पहरावणी तक खुलम खुल्ला ठहरा लिया करते हैं तब सगाई का दस्तूर करते हैं। कन्या विक्रय वाले तो द्रव्य गुप्त लेते थे किन्तु ये साहूकार तो वर विक्रय प्रगट तया करते हैं। लड़की वाले पर लड़के वालेका हक लड़की लानेका है इसके अतिरिक्त प्रेमवश वा कीर्तिकी इच्छा से कन्याका पिता यदि कुछ खातिरदारी या भेट लड़के वालेको देता है तो यह उसकी प्रशंसनीय खूबीकी बात है और इस ख़ातिरदारी के अतिरिक्त वह यह भी खूबी करता है कि स्वयं यथा संभव कुछ ख़ातिरदारी उनसे नहीं चाहता तिस पर भी इस प्रकार उससे रुपये मज़बूरन रखा कर सगाई करना कितने हल्के दर्जेकी बात है ? क्या ऐसी हल्के दर्जेकी बात कन्या विक्रय से कुछ कम है ? और क्या ओसवाल जातिको शोभा देती है ?

कहां तो हमारे पूर्वजों से प्राप्त हुई वह सभ्यता जिससे हम ५ जातिभाई मिलकर ऐसे प्रेममय विनयशील शब्दों से परस्पर व्यवहार करते हैं कि देखनेवाले हमारी शोभा करते हैं और कहां वह व्यवहार जो कभी कभी हम जब कि किसी धर्म क्रिया के लिये वा पंचायती विचार करने के लिये यदि सम्मिलित होते हैं तो छोटी छोटी बातों पर कलह कर बैठते हैं और सम्मेलनोंमें पारस्परिक ईर्षा; द्वेष या घृणा संग्रह कर वापस लौटते हैं। इनके अतिरिक्त जब कभी किसी एक पार्टीकी ओर से सामाजिक मामले में अथवा एक सम्प्रदाय की ओर से धार्मिक मामले में किसी प्रकार का दोष, अपराध हो जाता है तो उस अपराध की महानता बढ़ाने को विरोधी पार्टी तथा उस दोष को निर्दोष प्रमाणित करने के लिये दोषी पार्टी दोनों में जो कागज़ी घोड़े दौड़ते हैं उनमें एक दूसरे के प्रति ऐसे अपमान जनक शब्द लिखे होते हैं कि उनसे हमारी सभ्यता कूएमें डूब गई सी मालूम होती है। सभ्यता की परीक्षा तो तब ही होती है और उस ही समय हम असफल पाये जावें। यह कितनी खेद जनक बात है।

जब पारस्परिक व्यवहारमें ही हमारा इस प्रकार पतन हो रहा है तब अन्य जातियों के साथ के व्यवहारमें अवनति होनेमें संदेह ही क्या है? पारस्परिक सद्व्यवहारसे मनुष्य की कुलीनता प्रगट होती है, श्रेष्ठता प्रगट होती है यदि इस पूर्व संपत्ति को हमने जो अल्प मात्रामें ही हमारे पास अब रही है खो दिया तो संसारमें हम उस इज्ज़त को भी खो देंगे जो आज भी हमारी है। जाति की इज्ज़त बढ़िया वस्त्रों और गहनों से नहीं है किन्तु इस सद्व्यवहार से ही है और यही सबसे बड़ी हमारी शानशौकत की वस्तु है।

हमारी शिक्षा प्रणालीमें भी इस विनयशीलंता की शिक्षा को स्थान रहना चाहिये, सद्वाक्य उच्चारण करने की शिक्षा को स्थान रहना चाहिये और यथासंभव तो ये शिक्षाऐं पाठशालामें नहीं किन्तु घरमें ही हो जाना अधिक लाभदायक है और व्यवहारिक है।

बालकोंमें जैसे अच्छे या बुरे प्रभाव घरमें, वा संगी साथियेंमें पड़ते हैं वैसे पाठशाला की शिक्षामें उत्पन्न नहीं हो सकते इसालिये उत्तम तो यही कि हमारे घरोंमें ही सबका व्यवहार ऐसा हो जो बालकों और बालिकाओं के ऊपर अच्छा ही प्रभाव डालनेवाला हो तथा बालकों की संगति अच्छी रखने का प्रयास रखें जिससे उनमें अच्छे ही संस्कार पड़ते रहें। इस तरह की शिक्षा के लिये एक उदाहरण है।

एक जपानीने स्वयं भूखे रहकर एक भारतवासी की फलों से जंहाज़में खातिरदारि की। भारतवासीको जब माछूम हुवा कि मेरी खातिरदारी इसने भूखे रहकर की है तब उसने कारण पूछा। जपानीने उत्तर दिया कि मैने देखा कि आपके पास भोजन निमट चुका और इस बार भूखा रहना होगा तो मुझे विचार आया कि मैं भोजन करूंगा और ये भूखे रहेंगे तो अपने देशको जाकर कहेंगे कि जापानी ऐसे निष्ठुर होते हैं कि उनमें खातिरदारी की कुछ भी सभ्यता नहीं है इसलिये जापान की इज्जत रखनेको मैने की थी।

यति और सेवक

(अ) पूर्व काल में यति वर्गने ओसवाल जाति की बड़ी उन्नति की थी। यदि यह कहा जावे कि यति वर्गने ही ओसवाल जातिको प्रारंभ किया और समय समय पर इस जाति की रक्षा करते रहें तो

कुछ अत्युक्ति नहीं है। यदि यह भी कहा जावे कि यति वर्ग की कृपा ही से ओसवाल जातिकी उन्नति हुई थी तो भी कुछ अनुचित नहीं। किन्तु इस जमानेमें जो यति मौजूद हैं उनके प्रति ओसवाल समाज का क्या कर्तव्य है यह विचारणीय प्रश्न है।

आजकल जितने भी यति हैं इनमें अधिक से अधिक १० प्रतिशत ऐसे मिलेंगे जो शुद्ध आचार विचार से रहते होंगे। न तो परिग्रह रखते होंगे और न कुशील सेवन करते होंगे और भिक्षा वृत्ति से रहकर धर्म ध्यान करते होंगे। १० प्रतिशत भी मिलना अत्यन्त कठिन है। १०—२० प्रतिशत ऐसे भी मिलेंगे जिन्होंने गृहस्थ वेष धारण कर लिया है, परस्पर विवाह करते हैं, गृहस्थ और संतान चलाते हैं, इनको कोई यति और कोई महात्मा कहते हैं। तीसरे १०—२० प्रतिशत ऐसे भी यति महाशय हैं जो अपनी गद्दी की प्रतिष्ठा के हेतु से ब्रह्मचर्य तो पालन करते हैं, परिग्रह तो उनसे छूटता नहीं, हर तरह की संपत्ति, भूमि (गुरुको रखते देखा है अतएव वे भी) रखना नहीं त्याग सकते। शेष यति वर्ग तो ऐसे मिलेंगे जो न तो ब्रह्मचय पालन कर सक्ते और न परिग्रह त्याग कर सकते। नाम मात्रको वे वेष धारण किय हुवे हैं किन्तु आचार उनका गृहस्थियों से भी अधिक विगड़ा हुवा है। कितने ही यतियों का आचार तो वेश्याओं के आचार तक पहुँच गया है। ओसवाल जाति में यह दशा है कि रूढि भक्त तो प्रत्येक वर्ग के यतियों से इस कारण विनय प्रदर्शन करते हैं कि ये उन पूर्वचार्यों की सन्तान हैं और स्वार्थी लोग जिन्हें उनसे मतलब होता है उनका आचार विचार कैसा है इस बात की परवाह नहीं करना चाहते उनको तो

अपना इलाज कराने से या झाड़ा झपाटा कराने से मतलब है। अलबत्ता कुछ शिक्षित लोग ऐसे हैं जो चाहे दूसरों के पास किसी कार्यके निमित्त चले जावेंगे परन्तु इनके पास कदापि भी नहीं जावेंगे इनसे घृणाही करेंगे।

इस तरह जिन नगरों में इन लोगों की अधिक संख्या है या इन लोगों का स्थायी निवास है उस नगर के या ग्राम के ओसवाल समाजमें इन यतियों के प्रताप से भी दल बंदी रहती है एक उन्हें मानने वाले दूसरे उन्हें नहीं मानने वाले।

ओसवाल समाज का ध्यान इस ओर जाने की बड़ी आवश्यकता है क्योंकि इनमें जो दुराचारी हैं उनके गृहों में आनेसे, तथा उनके यहां कुटुंब का जाना आना रहने से ओसवाल समाज के चरित्र को तथा इज्जत को खतरा है।

जो प्रथम वर्ग के हैं उनकी तो कुछ भी चिन्ता नहीं है उनसे तो और इस उद्योगमें सहायता प्राप्त हो सकती है। इसी तरह जिन्होंने गृहस्थ धारण कर लिया है उनकी भी अधिक चिन्ता नहीं है उनके साथ तो हमारी सहानुभूति अवश्य रहनी चाहिये ताकि कम से कम हमारी सहानुभूतिके अभावसे तो वे विधर्मी न बन जावें। जो तृतीय वर्गमें है और जो वेष तथा परिग्रह त्याग नहीं कर सकते उनसे हमारा इतना संबंध रहे तो कुछ हर्ज नहीं है कि यदि वे विद्वान् हो तो हम उनको अपने यहां पाठशालादिमें धर्म शिक्षक नियत करें, लग्न जैन विधिसे करानेके निमित्त उनको बुलावें और औषधादिकी सम्मति भी उनसे प्राप्त करें और इस तरहके संबंधसे हम उनको यह समझावें कि आपकी गद्दीपर शिष्य यदि अयोग्य

(भोगविलासी) हो गया तो आपकी और आपके गुरुओंकी बदनामी होगी। इससे तो आप कृपा करके इस द्रव्यको ऐसी संस्थामें प्रदान कर दीजिये जिसमें यति वर्ग को रखकर उच्च धार्मिक शिक्षा तथा उपदेश कला सिखलाई जावे। ऐसे द्रव्यसे ऐसी ही संस्था स्थापित की जानी चाहिये। यदि वे न माने और उनका शिष्य वैसा ही हो तब तो पूर्व गुरूजीके साथ जैसाही बर्ताव उनके साथ उचित है अन्यथा उनके साथ चतुर्थ श्रेणी का वर्ताव होना चाहिये जिसका आगे वर्णन है।

चतुर्थ श्रेणीके यति यतिनियाँ अर्थात् जिनका चरित्र दुश्चरित्र हैं उनको प्रथम तो दुश्चरित्रता तुरन्त त्याग करनेको कहा जाना चाहिये उनसे प्रतिज्ञाके हस्ताक्षर लिये जाने चाहिये। यदि वे स्वीकार नहीं करें तो उनके ऊपर दुश्चरित्रता प्रमाणित करा कर राज्य सहायतासे उनसे वेष उतरवाना चाहिये और जो गृहस्थ उनका साथ देवें उनके विरुद्ध जनताको जगा देना चाहिये, लोक मत तैयार कर लेना चाहिये, और उनको ठिकाने लाना चाहिये।

ये कार्य यद्यपि बड़ा आवश्यक है तथापि इसकी ओर ओसवाल जनताका ध्यान नहीं गया है। यदि न जावेगा तो इनका चरित्र हमारी जातिको हानि पहुँचावेगा। ये कार्य एक योग्य कार्यकर्ता के नीचे स्थायी वेतन प्राप्त कार्य कर्ताओंकी समितिके द्वारा कई माह वा वर्षोंके प्रयत्नसे हो सकेगा। कठिन है, असंभव नहीं है, यदि पांच हज़ार रुपये भी इस कार्यमें लगकर यह कार्य हो जावे तो मैं कहुँगा कि बहुत सस्ता हो गया।

(आ) सेवक–भोजक।

सेवकोंका प्रश्न भी विचारणीय है। हमारे बुजुर्ग हमारे साथ सेवकोंका खर्च ऐसा पल्ले बांध गये हैं जिसमें हज़ारों रुपये ओसवाल

जाति प्रतिवर्ष खर्च कर देती है, जिसमें न तो देनेवालोंका और न लेनेवालोंका ही कुछ भी लाभ दिखलाई पड़ता है। देनेवाले जबर्दस्ती से उठाया हुवा बुजुर्गोंसे चला आता हुवा इसको बोझ मानते हैं और लेनेवाले कहते हैं कि हम तो तुम्हारे गुरु हैं, तुम्हारे मंदिरोंकी पूजा करनेवाले हैं, हमारा धर्म तो जैन नहीं है हम तो शाकद्वीपी ब्राह्मण हैं, यह देनेमें तुम्हारी ही कीर्ति और बुजुर्गोंका यश है हम शिवाय तुम्हारे अन्यसे मांगे नहीं और तुमसे छोड़े नहीं। जो हमारे जातिका बुलावे आदिका कार्य करते हैं उसके बदले इनकी दस्तूरियाँ जो इनकी बांध दी गई हैं और उन्हें मिलती हैं उनके विषयमें हमको कुछ भी नहीं कहना है, किन्तु अन्य रीतिसे तथा विवाहोंके मोकों पर जो "त्याग" के नामसे इनको दिया जाता है उसपर विचार करना है।

१—किसी भी स्वजाति भाई को यह पता नहीं है कि यह द्रव्य इनको क्यों दिया जाता है यह लाग क्यों लगी रही है।

२—जो यह द्रव्य दिया जाता है इसकी आशा में ये निकम्मे बैठे बैठे कुछ धन्धा श्रम नहीं करते और मुफ्तखोर बन कर खाते हैं और श्रम हमको करना पड़ता है ये तो थोथी तारीफ कर देते हैं।

३—यदि इनको नहीं दिया जाता है तो ये लोग बदनामी करते फिरते हैं, कम दिया जाता है तो भी ऐसा ही करते हैं, उनके नामके पुतले बना बना कर उसकी बेइज्जती करते फिरते हैं इनके सिवाय भी कितनी ही बदमाशियां करते हैं।

४—इन्होंने कितने ही मंदिरों और उपाश्रयोंपर अपना स्वामित्व कर लिया है। मंदिरोंकी लागें वसूल करते हैं और उपाश्रयों को गहन रख दिये हैं तथा बेंच तक दिये हैं।

५—अपने को सेवक नहीं किन्तु गुरू बतलाते हैं। धर्म अपना वैष्णव और शाक्त द्वीपी ब्राह्मण कुल के कहते हैं। और वैष्णव धर्म ही पालते हैं। जब हमारे पास लक्ष्मी बगैर बुलाये आती थी तब तो हमारे बुजुर्गों की दृष्टि इधर नहीं गई किन्तु आज दिन तो हमें हमारी जातीय संस्थाओं की क्षुधा पूर्ति की चिन्ता पीड़ित कर रही है। ऐसी दशा में यदि हम इधर दृष्टि नहीं करें तो यह तो मूर्खता ही होगी।

हमारे बुजुर्गोंने इनको इस प्रकार देना जिस कारण से प्रारंभ किया वह प्रमाणीक कारण अज्ञात है। यदि सेवक भी कुछ बत-लावे तो वह भी विश्वासनीय कठिनता से मिले। ऐसी दशा में हम केवल इतना विचार कर सकते हैं कि किसी प्रकार की इनकी उत्तम सेवाके उपलक्ष्य में हमारे बुजुर्गों ने इनको यह द्रव्य "त्याग" देना प्रारंभ किया होगा। मुफ्तमें तो कोई भी देना नहीं चाहता अलबता उस समय हमारी जातिपर भी लक्ष्मी की कृपा अधिक थी इसलिये इसकी कुछ विशेष परवाह योग्य बात भी नहीं थी। परन्तु उनकी मंशा यह तो कदापि नहीं हो सकती कि हमारी सन्तान से ये लोग जबर्दस्ती भी लेसके जैसा कि आज कल इनका ख्याल है कि यह तो हमारी लाग ही है।

अस्तु, इस संबंध में हमारा यही कर्तव्य है कि इस "त्याग" की लागको हम ऐच्छिक समझें अर्थात् यदि हमारी इच्छा हो, यदि हमारी शक्ति हो और इन लोगों को यदि बफ़ादार देखें तो चुंकि इनके बुजुर्गों ने हमारी ओसवाल जातिकी किसी प्रकार की पुरस्कार योग्य सेवा की थी जिसके उपलक्ष्य में हमारे बुजुर्ग इनको

त्याग रूप में द्रव्य प्रदान करते थे उसी तरह हम भी इनको पुरस्कार रूपमें द्रव्य प्रदान इस शैली से करें जिसमें इनका लाभ (वास्तविक) होवे तदर्थ हम उस द्रव्य को इनकी जाति की पाठशाला में, कन्या शाला में वा गरीब विधवाओं की सहायतामें दे देवें।

किन्तु श्रम करके उपार्जन करने योग्य मनुष्यों को जो इसी पर रह कर निकम्मे बैठे रहते हैं कुछ उद्योग नहीं करते वा जो कन्या विक्रय की दलाली खा कर वा बूढ़े वरों के विवाह की दलाली में सैकड़ों हजारों रुपये मार कर हमारी जाति को नुकसान पहुँचाते हैं उनको एक कौड़ी भी देनेकी जरूरत नहीं है।

तथा यदि हमारी ईच्छा इस सम्बन्ध में कुछ भी देनेकी नहीं है या यदि हमारी शक्ति देने योग्य नहीं है, या यदि ये वफ़ादारी से नहीं रह रहे हैं तो कोई आवश्यकता नहीं है, कोई इनकी लाग नहीं है जिस को हमें अदा करना ही चाहिये चाहे हमारे बुजुर्गोंने इनको "त्याग" रूप में द्रव्य देना प्रारम्भ भी किया था।

यदि इन लोगोंका कहीं मन्दिरों पर ऐसा स्वामित्व हो गया हो कि वहां की कुल आय पर इनका हक हो इनके वफ़ादारी से काम नहीं करने पर इनको हटा कर अन्य कर्मचारी नहीं नियत किया जा सकता हो और इनको ही केवल वहां पूजा करनेका हक होगया हो तो ऐसे हक बिलकुल बेजाप्ता हैं। इनसे बहुत हानि पहुँची है और भविष्य में जहाँ कही ऐसे हक होंगे तो अवश्य हानि पहुँचेगी। इस लिये मन्दिर, उपाश्रयादि जो कुछ भी जाति की सम्पत्ति इनके चार्ज में हो उस पर पूरा निरीक्षण और शासन रखने की ज़रूरत है। जातिके स्थानीय मुखियाओं की गफलत में अनेक उपाश्रय ये लोग हजम कर गये है।

धार्मिक झगड़े और फल ।

धार्मिक झगड़े भी जातीय झगड़ोंसे कम नहीं हैं। इन झगड़ों का बीज पवन साधु लोगोंके द्वारा किया जाता है यद्यपि ऐसे कदाग्रही, हठी और क्लेश प्रिय साधु, साधु नहीं है—साध्वाभास है, पर फिर भी मैं उन्हें साधु नामसे संबोधित करूंगा। आप जैसे परम श्रद्धालु वेश मात्रपर फिदा होनेवाले भक्त लोगोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि साधु और झगड़ा। कभी मेल नहीं मिल सकता। साधु तो शान्तिका श्रोत और क्षमाका भंडार होता है। यह ठीक है पर यह भी न भुलना चाहिये कि कलियुगी साधु क्या नहीं कर सकते? संभव है साधु या साधुवेष मोही—श्रावक मुझपर नाराज होंगे कि तुमको हम जैसे बड़े आदमियों की समालोचना करनेका क्या अधिकार है? लेकिन मुझे इस नाराजी की चिन्ता नहीं है। मै समझता हूं कि सिंहकी खाल लिपट लेनेवाला मृगाल कभी सिंह नहीं बन सकता। मैं उन परमपूज्य निर्ग्रन्थश्रमणोंका उपासक हूं—वे मेरे उपास्य गुरुदेव हैं किन्तु मेरी दृष्टि इतनी विपर्यस नहीं कि उन पूज्य मुनिवरों के वेषमें ढोंगी लोग अपनेको उल्लू सिद्ध करें तथा तीर्थंकरोंके मार्गको कलंकित करें और मैं धर्मान्ध होकर देखता रहूं। इन अत्याचारों को एक देशीय संकुचित विचारोंको वाड़ा बन्दियों को न सह सकने के कारण उनसे उकताकर यह आलोचना कर रहा हूं। हम गृहस्थ लोग शान्तिसे रहना चाहते हैं पर साधु रहने नहीं देते। स्वयमेव जलती हुई अग्निमें घृत डालना उचित है या पानी? दूसरों के भिन्न विचारों को न समझकर श्रवणमात्र से ही उखड़ पड़ते हैं।

दिन रात दूसरों के दोष दर्शनमें संलग्न रहकर उपहास के योग्य कार्य करते हैं। क्या यह कार्य साधुता के साथ शोभा दे सकते हैं। कभी नहीं। पर आपने शोभा और अशोभाकी कल्पना ही छोड़ दी और समभाव ! धारण कर लिया है इसलिये शोभा अशोभा पर समभाव धारण कर अशोभा का कार्य कर डालते हैं। जो आपपर श्रद्धा रखते हैं उन्हें 'पक्षी' बनाकर पींजरेमें कैद कर रखते हैं। पर उन पक्षियोंकी क्या दशा है? उसकी उन्हें कुछ चिन्ता नहीं है। आपसमें नोटिसबाजियां करवाना, पुस्तकें छपवाना, गालीगलौच देना आदि कार्योंमें, धार्मिक मतभेद के कारण विरुद्ध पक्षवालों को सताने के लिये, मुख्य प्रेरणा बहुतेरे साधुओं की ही रहती है। भला, ये धार्मिक झगड़े है, इनको भी यदि साधु न सम्हाले तो और कौन सम्हालेगा ! महावीर स्वामी जैन शासन की बागडोर सौंप गये हैं दूसरों से लड़ झगड़ कर यदि ये रक्षा न करेंगे तो और कौन करेंगे ! यह ठीक है पर शासनकी रक्षा का उद्देश्य अब नष्ट होकर कदाग्रह में परिणत हो गया है। व्यक्तिगत मानापमान की आन में शासन रक्षा का ध्यान छोड़ दिया गया है। गृहस्थ लोगों ने आप जैसे आदर्श महापुरुषों को देखकर लड़ाइ झगड़ा करनेका अनुकरण किया है, करना ही चाहिये। साधुके आचरणी भावना और पालन करनेका प्रयास करना श्रावक कर्तव्य है।

समय गया। आदर्श साधुता गई और उसके स्थानमें बहुतेरे अयोग्य व्यक्तियों ने कीर्ति कामनाओंको सफल करनेके लिये उनका बाना पहिना और समाज व धर्मका सत्यानाश किया। किन्तु यह पोप लिलाएं अब न चल सकेंगी। यदि साधु लोग अपना सुधार न

करेंगे तो भक्तोंको क्या सुधारेंगे ? और यदि जैन शासनकी डोरका भार ये न सम्हाल सकेंगे तो श्रावकों को यह कार्य करना पड़ेगा।

मै सच्चे साधु मुनिराजों से सविनय प्रार्थना करता हूं कि वे साधु समाजको सुसंगठित करनेकी सश्चेष्टा करें और अयोग्य व्यक्तियोंको ऐसा मौका न देवें जिससे आपके पवित्र वेशकी अवहेलना और वीर शासनका उपहास हो। यदि विचार दृष्टिका उपयोग किया जाय तो मालूम हो जायगा कि धार्मिक झगड़ों में मुख्य हाथ किसका है। हम लोग भेष पर इतने फिदा हो गये हैं कि कुछ कहा नहीं जाता। गुण दोषकी परीक्षा करना सम्यक्दर्शन में भंग हो जाना माना जाता है। परीक्षा के नाम से साधु लोग चिढ़ते हैं और कहते हैं कि तुम लोगों में अब नास्तिकता आगई है। प्रसिद्ध तार्किक स्वामी समन्त भद्र प्रभृति प्राचीन आचार्योंने स्वयं भगवानकी उनके वचनोंकी परीक्षा करके ही उन्हें अपना उपास्य देव माना था। किन्तु कष्ट है कि आज कल बुद्धिगम्य विषयों में भी अमूढ़ दृष्टिका सिद्धान्त प्रचलित किया जा रहा है। जिन विषयों में हम अपनी विचार शक्तिका उपयोग कर सकते हैं ऐसे विषयों में भी 'ननुनच' किये विना ही अविचार पूर्वक प्रवृत्ति करने के लिये बाध्य किये जाते हैं। मेरा विश्वास है कि यदि लोगोंमें साधुता और असाधुता की परीक्षा करनेकी बुद्धि आ जावे तो समाज इन निराधार झगड़ोंसे बहुत अंशोंमें मुक्त हो सकता है।

धार्मिक झगड़ोंके कारण जातिमें भी क्लेश आ घुसते हैं और परस्पर शादियां होना तक बन्द हो जाता है। सादड़ी [घाणेराव] का मामला सामने ही है। मूर्तिपूजक और साधुमार्गियों में परस्पर बहुत विरोध फैला हुआ है—जो कि सभी ओसवाल जातिके पुत्र हैं। क्या इन झगड़ों में साधुओंका हाथ नहीं है ? अवश्य है।

कुरीतियाँ ।

किसी प्रथाका प्रारंभ जनहितकी प्रवृतिको ध्यानमें रखकर प्रचलित होता है । धार्मिक या जातीय कोई बन्धारण नियम, कानून या चाल जन साधारणके हितार्थ प्रचलित किया जाता है और वह बन्धारण तभी तक लाभ पहुँचा सकता है जब तक कि उसके अनुकूल परिस्थिति रहती है । परिस्थितिके बदल जाने पर भी उन नियमोंका वैसाही बना रहना समाजको अवनतिकी ओर ले जाता है । तात्कालिक परिस्थितिके प्रतिकूल नियमोंसे समाजको हानि ही होती है ।

हमारे समाजमें ऐसी सैकड़ों प्रथाएँ हैं जिन्हें बुजूर्गोंने किसी कारण वश प्रारंभकी थीं पर वे अब निरुपयोगी और नाशक हो गई हैं । बुजुर्गोंने तात्कालिक परिस्थितिका अध्ययन कर समाजकी आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर बहुतसे जातीय कानून बना दिये थे । और बहुतसे नियम अनुकरण शीलतासे प्रारंभ हो गये हैं । कुछ अन्य समाजवालोंके आचरणोंका भी हमपर प्रभाव पड़ा जिससे बहुतसी प्रथाओंका प्रारंभ हो गया । कुछ प्रथाएं तात्कालिक राज्यव्यवस्थाके ज़रिये भी प्रचलित हुई हैं । खैर हम जितने त्यौहार मानते आ रहे हैं वे प्राय: बहुतसे जैनधर्मके अनुकूल नहीं हैं जैसे गौरी पूजन, दशापूजन आदि । ऐसे त्यौहारोंके माननेसे मिथ्यात्व लगता है। आत्मिक शक्तियोंका वास्तविक ज्ञान न होनेसे हम कुलदेवियोंको पूजते हैं और छोटे छोटे कार्योंकी सिद्धिके लिये मानता मानते हैं । स्त्रियोंमें ये आदत विशेष रूपसे पाई जाती है । बच्चोंके स्वास्थ्य सुधार के लिये या अन्य किसी सिद्धिके लिये वे किसीका विश्वास करके भैरव भवानियोंकी पूजा करने लग जाती हैं । ऐसे कार्यों से हृदयकी शक्तियों

का पता लग जाता है । ओसवालों के सभी कुलों में कोई न कोई देवी वंश परम्परासे अवश्य पूजी जाती हैं। कहीं कहीं तो इसका बहुत घृणास्पद दृश्य दिखाई देता है। दक गोत्र वालोंके कुलमें यह प्रथा प्रचलित है कि दशहरेके दिन कुळदेवीकी पूजा की जाती है और आटे या ककड़ी का भैंसा बनाकर उसमें खून की जगह गुड़का लाल रस भरकर छुरेसे मारा जाता है। उस भैंसेके भुजिये बनाकर खाये भी जाते हैं। संभव है इस प्रथाका प्रारम्भ क्षत्रिय होनेके कारण हुआ हो। पहिले साक्षात् भैंसा मारते रहे हों किन्तु जैन होनेके बाद उस नियम को न तोड़ सकने के कारण आटे आदिका भैंसा बनाकर मारनेका विधान किया गया हो। पर यह प्रथा जैन धर्म से बिलकूल ही विपरीत है। आटेका भैंसा बनाकर मारने में भी संकल्पी हिंसा अवश्य लगती है। ऐसी एक नहीं अनेक प्रथाएँ समाज में विद्यमान हैं जिनका अज्ञानताके सिवाय दूसरा कारण नहीं है। ऐसी प्रथाएँ केवल भ्रम वश अपनाई जाती हैं।

"भयाशा स्नेह लोभाश्च कुदेवा गमालिंगी नाम।
प्रणामं विनयं चेव न कुर्युः शुद्ध दृष्ट्याः ॥"

'स्वामी समंत भद्राचार्य'

इस श्लोक में यह दर्शाया गया है कि सम्यक दृष्टि कुदेवोंको प्रणाम व विनय नहीं कर सकते। हमारे शास्त्रीय दृष्टान्त भी इसी बातका समर्थन करते हैं। उपासक दशांग सूत्रमें आनन्द कामदेवादि श्रावकों का चरित्र वर्णित है। उसमें उनकी मानसिक दृढ़ता कितनी थी बतलाया है। देवोंके द्वारा अनेक कष्ट दिये जाने पर भी वे तनिक भी धर्म से

विचलित नहीं हुए थे। पर आज उन्हींको आदर्श माननेवाले समाजकी यह दशा है।

विवाहादि अवसरों पर दामाद (जमाई) व उसके कुटुम्ब वालेंको ऐसी भद्दी भद्दी गालियाँ दी जाती हैं जिनका सभ्य व सुशिल स्त्रियां उच्चारण नहीं कर सकती पर्दे में मुँह रखनेवाली सेठानियोंके मुखसे ऐसे अपशब्द कैसे निकलते हैं कुछ समझमें नहीं आता। यह भी एक प्रथासी होगई है कि कन्या पक्षवाला वर पक्षवालेको चाहे कितना ही माल क्यों न दे सराहना नहीं की जाती। वैसे ही वर पक्षवाले चाहे कितना ही गहना क्यों न भेजे कभी पास नहीं किया जाता। ऐसी प्रथाओंसे प्रेमका नाश होकर पारस्परिक वैमनस्य की वृद्धि होती है जिसका अनुभव आप कर रहे हैं।

इनके सिवाय कुछ और नमूने पेश करता हूँ। विवाहके बाद भेरू पूजना, नाइ सेवक द्वारा वर कन्या का चुनाव करवाना, " मायरा " चढ़ाना—यह ठीक है कि भाई अपनी बहिनको उसकी सन्तान के विवाह पर कुछ देवे पर जब यह रिवाज रूप में परिणत हो जाता है तब बहुत कठिनाईयां उपस्थित हो जाती हैं। कुछ दिन पहले की बात है जोधपुरके एक प्रसिद्ध घराने के महाशय के भानजे की शादी हुई थी। इनकी स्थिति पहिले ठीक थी पर उस वक्त हाथ तंग था। घराना बड़ा रहा, उसके अनुसार यदि मायरा न किया जाय तो लोगोंमें निन्दा होती है। दूसरी बात बहिनका घर भी बड़ा रहा उसका ख्याल रखना भी जरूरी है। इन सब बातोंसे डरकर उक्त महाशयको ढाई हजार रुपयेंमें अपने रहनेकी हवेली गिरवे रखना पड़ी और उक्त सन्मान!

किया गया । ऐसे संकट अनेक लोगोंको हो रहे हैं । बीकानेरकी ओर यह प्रथा है कि विवाह होनेपर कुछ असतक स्त्री दीन २ अपने पिताके घर रक्खी जाती है, और रातको सुसरालमें भेज दी जाती है । यह भी एक भद्दी चाल है । दुपट्टेका गोटा बनाकर नूतन पति पत्नी सभीके सामने ' मारामारी ' का खेल खेलते हैं । दामाद अपने श्वसुर से नहीं बोल सकता, स्त्री अपनी साससे न बोल सकती है और न अन्य घरवाली स्त्रियोंसे ही । बेचारी नवोढ़ा स्त्रियों के लिये बड़ी भारी आफत है, एक तो ऐसे घरमें आई जिसे कभी आंखों से भी नहीं देखा था और दूसरी बात किसी से बोल भी नहीं सकती यदि बोल सकती है तो अपने नौकरों चाकरों से । कुछ दिन पुरुषों से न बोले पर स्त्रियों का स्त्रियोंसे बोलनेमें क्या हानि है । पंजाब व गुजरात प्रान्तमें यह प्रथा नहीं है किन्तु मारवाड़ मेवाड़ और मालवामें है । सुसराल जाते वक्त लड़कियाँ बहुत बुरी तरहसे रोती हैं यह भी एक प्रथासी होगई है । सुसरालमें दामाद और लड़कीको तालेमें बन्द करना (मेवाड़, मालवेमें) । सात सात आठ आठ वर्षकी या इससे भी अधिक उम्रवाली कन्याओंको धोती (लड़कों जैसी) पहिनाना (बिकानेरमें), लड़कोंका माथा गूंथना (मारवाड़ मेवाड़ व मालवेमें) । लडकों को नाथ देना । ' माता ' निकलने पर हिंजडोंका नाच कराना । विवाह शादियोंमें आतिशबाजी छुड़वाना, पतलों पर जीमना (मेवाड़, मालवेमें), झूठ डालना (सर्वत्र) दामाद का दस दस पन्द्रह २ बार बुलाये जानेपर आना (बिकानेर) आदि अनेक छोटी छोटी कुप्रथाएं भी समाज के लिये त्याज्य हैं । किसीकी मृत्यु होनेपर रुलाई उन्हें ही आसकती है जिन्हें उस मृत्यु पर शोक हो । पर

रिवाज ऐसा हो गया कि शोक हो या न हो रोना अवश्य चाहिये। स्त्रियोंकी बात न पूछिये इनका रोना क्या है तमाशा है। पंजाबमें रोनेका अनोखा ही ढंग है। एक नाइन सामने खड़ी हो जाती है, बाकी सब स्त्रियां पंक्ति बांधकर नाइनके सामने खड़ी हो जाती हैं सर्व प्रथम नाइन कुछ बोलकर छातीमें लगाती है फिर सब स्त्रियां भी वैसा ही करती हैं। इस प्रकार अपने शोक को व्यक्त करती हैं।

उपर्युक्त सब रिवाजोंको, सिर्फ, हमारे बाप दादा करते आये हैं, करते हैं। उनके लाभालाभ का विचार नहीं किया जाता है। जिन प्रथाओंसे हमें प्रत्यक्ष हानि होती दिख रही है उन्हें भी छोड़नेमें समाजकी उपेक्षा है। किसी जहाज़में एक छिद्र हो जानेसे भी उसका बचना कठिन हो जाता है। इस समाजमें एक नहीं अनेक कुप्रथा-रूप छिद्र हो गये हैं और यदि इन छिद्रों को मिटाने का समुचित इलाज न किया जायगा तो इस समाजका बचना कठीन है। आपको भी मस्तिष्क है क्यों न उसे काममें लाकर रीति रिवाजोंका देशकाल के अनुसार परिशोधन करते हैं। हममें अनुकरणशीलता बहुत है 'बड़ा ऊंट आगे भया, पीछै भई कतार। सबही डूबे बापड़े, बड़े ऊंटकी लार' वाली कहावत को बहुत चरितार्थ यही समाज करती है। बन्धुओ ! अपने विचारोंका स्वतंत्र उपयोग करना सीखो और रीति रिवाजोंमें अपने लाभके अनुसार परिवर्तन करो। मैं समझता हूं उपर्युक्त कुप्रथाओं के मिटाने पर समाज का बहुत हित अवलम्बित है।

पंचायतें।

जातिको योग्य व्यवस्था में रखनेके निमित्त इस भारतवर्ष में प्रत्येक जाति में पंचायतें प्राचीन काल से प्रचलित हैं। जो जातिके

मनुष्योंपर अपना शासन रखती हैं। आवश्यक निश्चय जातिके लिये घोषित करती हैं। जो नहीं पालन करता है उसको अपनी शक्तिसे पालन करनेको मजबूर करती हैं और इस प्रकार जातिकी अनेक आपत्तियों से रक्षा करती हैं।

इन पंचायतों में कहीं तो निश्चित संख्यामें पंच हुआ करते हैं और कहीं ऐसा भी होता है कि मोहल्ले वार पंच होते हैं और कहीं ऐसा भी होता है कि गौत्रवार एक एक पंच समझा जाता है।

इनके चुनाव में अधिक झंझट नहीं होती। या तो पंच वंशानुक्रम से चलते हैं अथवा गौत्रका जो सबसे अधिक आयु में होता है वही उस गौत्रकी ओर से पंचायत में जाता है वा अनुपस्थित रहना चाहे तो या तो किसी अपने से छोटेको भेज देता है वह ' सब करें उसमें सम्मति है ' कहला देता है और जहां एक निश्चित संख्या होती है वहां स्थान खाली होने पर पंच लोगही स्वयं किसी को नियत कर लेते हैं।

जिसको अधिक बुद्धिमान और परिश्रमी देखते हैं उसको वे चौधरी नियत कर लेते हैं। जिसको पंचायत के कागजात, द्रव्य तथा अन्य सम्पत्तिकी रक्षा करते रहना पड़ता है तथा अपनी बुद्धिमानी और हुकूमत द्वारा पंचायत के निश्चयोंको जातिमें बर्ताव कराने का इनको अधिकार रहता है तथा विरुद्ध जानेवालोंको दंड दिलाने तथा अन्य आवश्यक कार्योंके लिये पंचायतको सम्मिलित करानेका इनको अधिकार रहता है। यदि इनके कार्यसे जातिको अधिक असंतुष्ट देखती है तो पंचायत इनसे काम सम्हालकर अन्य को नियत कर देती है और यदि इनकी सन्तानको योग्य देखती है तो उनके बाद पहिले उनकी संतान को वह पद देती है।

आजकलके ज़माने के बड़े बड़े बुद्धिमानों में भी यह योग्यता नहीं है कि बगैर एक प्रधानके अपना काम चलालें किन्तु उनमें इतनी क्षमता थी कि वे बगैर प्रधानके ही अपने सब कार्यवाही योग्य रीतिसे संचालन कर लिया करते थे। इसका कारण यह था कि न तो उनको एक अधिक मतसे निर्णय देना होता था और न सबको स्वच्छंदतासे रोकने की आवश्यकता थी। पंचायतमें सभी निर्णय ७५ प्रतिशत से कम सम्मातियों से नहीं होते थे चाहे पंचा-यत होते होते कितना ही समय लग जावे चाहे अधिक मत वाले को अपनी बात से थोड़ा हटना भी पड़े किन्तु इतने अधिक बहुमत हो जानेपर ही निर्णय निश्चित होता था। पंचायतकी कार्यवाही देखनेको हरएक जा सकता था अपनी ओर से कुछ निवेदन भी कर सकता था किन्तु सम्मति देनेका हक हरएक को नहीं था।

जातिकी पंचायत एक जातिके दो व्यक्तियों के पारस्परिक हर प्रकारके झगड़े को भी तय किया करती थी। और ग्राम पंचायत भिन्न जातियों के व्यक्तियों के झगड़ों को तय करती थी इसके अति-रिक्त ग्रामके हर प्रकारके प्रबन्धादि के संबंधमें निश्चय किया करती थी जिसको ग्रामवालों को स्वीकार करना पड़ता था। जो इस पंचायत के निश्चय को नहीं मानता उसको पंचायत स्वयं दंड देती वा आवश्यकतानुसार राजासे दंड दिलवाती। राजाको सिवाय अपना कर वसूल करनेके तथा पंचायतकी आज्ञा नहीं माननेवाली प्रजाको दंड देनेके और ग्रामवालोंकी चोरों, डाकुओं और अन्य राजाओंसे जो चढ़-कर आवे रक्षा करके और ग्रामवालोंसे कुछ अधिक प्रयोजन नहीं था।

जातिकी पंचायतें इस बातका सदा ध्यान रखती थी कि हमारा

निर्णय सत्य और धर्मपूर्वक हो। यदि अन्याय पूर्ण निर्णय हुवा तो हमारी कितनी ग्राम भरमें वदनामी होगी और हम परलोकमें जाकर भगवान्को कैसे मुँह दिखावेंगे। अस्तु उनकी वुद्धि जहांतक दौड़ती वे न्याय युक्त निर्णय ही करते थे।

यदि जातिमें कोई स्त्री या पुरुष व्यभिचारसे दूषित सुना जाता, यदि कोई पुत्र माता पिताको वृद्ध अशक्त अवस्थामें खानेको नहीं देता, यदि कोई अपशब्दोंसे किसीकी प्रतिष्ठाभंग करता सुना जाता, यदि कोई किसीके साथ ठगाई करता सुना जाता, द्रव्य हज़म किया सुना जाता तो प्रथम उनको वुलाकरके ताड़ना की जाती और पुनः सुना जाता तो कुछ किसी प्रकारका दंड दिया जाता। अंतिम दंड अर्थात् किसी भी प्रकारके दंडसे न सुधरनेपर "वहिष्कार" का दंड दिया जाता, फिर उससे केवल जातिही नहीं ग्रामका कोई भी व्यक्ति संवंध न रखता और यदि अन्य ग्राम जाता तो वहां भी वहिष्कृत रहता। इस प्रकार पंचायतों द्वारा जातिका वड़ा लाभ हुआ था। किसीको द्रव्य व्यर्थ वर्वाद करते, अधिक विलासितासे रहते देखते, हैसियतसे उपरान्त जातीय जीमणोंमें खर्च करते देखते तो तत्काल रोक दिया जाता था। उनकी आज्ञानुसार खांड गाली जाती थी (तवही से खांड की परवानगी का रिवाज़ चला है) इसीलिये आकरके पंच लोग उसके हर कामका निरीक्षण रख कर उसके कार्य को ऐसा सुधारते थे कि वह स्वयं उनके भरोसे निश्चिंत रहता था। पंचायत के प्रतिबंध रहनेसे द्रव्यसे जाति सुरक्षित रहती थी।

किन्तु जव अवनतिके दिन आये, ये पंचायतें पक्षपात रखने लगी। हमारा अमुक संवंधी है, अमुक तो गाढ़ा मित्र है, भला उसके विरुद्ध

हमारी सम्मति कैसे हो सकती है ! अमुक तो धनवाला है जाति की शोभाही ऐसे धनिकों से है भला इनको ऐसी वैसी बात पर कैसे कुछ कहा जा सकता है ? आज नहीं कल अगर दो सौ चार सौ रुपये की ज़रूरत पड़ जावे तो तुमही बतावों और कौन हमको निकाल कर दे देवे तब इनको हम ऐसी बात पर कैसे कुछ भी कह सकते हैं ! पंच लोगों में इस प्रकार संबंधियों का, मित्रोंका और धनिकों का पक्षपात बढ़ने लगा जिसके कारण इनकी जितनी शक्ति तथा इनके अधिकार थे सब छिनकर राज्याधीन हो गये अब तो केवल रोटी और बेटी की पंचायत करना इनके अधिकार में शेष रह गया है जिसमें भी जो इन्होंने दशा कर रखी है उसका जरा हाल देखें ।

" रोटी " संबंधी अधिकारानुसार इनका यह परम कर्तव्य है कि जो कोई भी पुत्रके विवाह के हर्ष में मदोन्मत्त होकर वा कीर्ति की ईच्छा में दत्तचित्त होकर यदि हैसियत उपरान्त खर्च करने की ईच्छा करता हो तो उसको रोक दे, हैसियत के योग्य ही आज्ञा देवें । किन्तु वे तो इस इस तरह शायद ही कभी करते हैं किन्तु कहते हैं कि इतनी खांडसे काम नहीं चल सकेगा । दो मण ज्यादा गालना चाहिए । इन पंच देवताओंकी जिह्वा लोलुपता से ही इस सभ्य समाजमें भी मृत्यु उपरान्तके जीमण अर्थात् ओसर, मोसर, नुकता नहावणी, गोरणी तथा तेरहवीं इत्यादि नहीं मालुम किन किन नामोंसे पुकारे जानेवाले ये कुभोजन प्रचलित हो गये हैं जिनके लिये कितनी ही जगह यहांतक सख्ती रहती है कि पहले मृत्यु उपरान्तका कर चुका दिया जावे तब विवाहके उपलक्ष्यका कर (जीमण) स्वीकार होगा ।

गरीब विधवासे उसके जेवर बेचाकरके ! भी कराकर खा लेंगे और वे विधवाएँ जन्मभर निर्वाहका साधन न होनेसे दुःख भोगती हैं । दुःख के समय सभी साथ छोड़ देते हैं इसीके अनुसार फिर कोई मदद नहीं देता, कोई जाकर पूछता भी नहीं । पतिके जीवित होनेपर जो सेठाणी कहलाती थी, लोग उसकी खुशामदी करते थे आज उसके पास खानेको नहीं । वे कमा भी नहीं सकती क्योंकि इनकी योग्यता नहीं है । यदि मेहनत मजुरी करे तो समाजकी मर्यादाका उल्लंघन ! पंच लोग भी लड्डू खाने ! तो आ जाते हैं पर फिर सुधि नहीं लेते । इस कुप्रथारूप राक्षसीने विधवाओंका और निर्धन जनताका नाश ही कर दिया। अब तो छोटे छोटे ! बालकोंका भी लड्डू के लोभियोंने नुकता शुरू कर दिया ! ! वह और उसका छोटा बालक फिर चाहे रोटी के लिये ही मोहताज़ हो जावे परन्तु इनका कर ! तो चूक ही जाना चाहिये, नहीं तो उनकी वह भर्त्सना और निन्दा जातिमें होगी जितनी बहुत बड़े चोरकी भी नहीं हो । तब यदि इस करको चुकानेके लिये लोग कन्या विक्रय भी करने लगे तो क्या आश्चर्य की बात है । इस विषयमें यदि ताज़ा उदाहरण देखना होवे तो अजमेर की ओसवाल हित कारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुवा " जालियावालोंकी करतूत—जीमना है या खून चूंसना " नामक ट्रैक्ट श्रीयुत चन्द्रसिंहजी छगनसिंहजी सिंघीसे मंगवाकर पाठक पढ़ लेवें ।

यह तो हुआ " रोटी " के विषयमें अब जरा " बेटी " के विषयमें भी इन पंच परमेश्वरकी घोर निद्रा देख लीजिये । चाहे कोई अपनी १० वर्ष की बेटी को ३० वर्षके वरके साथ विवाह करे वा ५० वर्ष वालेके साथ विवाह करे वा ६५ वर्ष वालेके साथ विवाह करे

अथवा ६ वर्षके वरके साथ विवाह करे इनको कुछ उज्र नहीं होगा। ये अत्यन्त उत्साहसे सब विवाहके काम सार देंगे। इनको तो काम सारकर तब जीमना है। इसमें इनको दोष ही क्या है, चाहे द्रव्य लेकर ही कन्याका पिता जिमाता हो। इनकी ताजीरात हिन्दमें भी कोई ऐसी दफा नहीं जिससे वह विवाह बेजा माना जावे और रोका जावे। अलबत्ता यदि भूलसे भी इनके न्योता या लाघना देना रह गया तो इनके पास ऐसी दफा है जिससे ये उसको आसमान और जमीन दोनों दिखा देंगे।

वे दुष्ट क्या मा बाप हैं जो लोभ लालच में पडे !
हैं बेचते अबला सुतायें पापके भरते घड़े !!
हैं एक नेत्र हज़ारका, यों कह रकम वे खैंचते।
वे इस प्रकार 'सुहाग' है अपनी सुताका बेचते॥
"धिक्कार ! उनकी लालसा !! धिक्कार ! उनकी वासना !!
धिक्कार ! उनके हृदयपर !!" द्रव्योपासना॥
जो बेच कन्या खा गये, निर्लज्ज वे धिक्कार हैं !
रौरव नरक जैसा बनाते नित्य वे संसार है॥
"बाप हमारे भोले भाले पैसा ले परणाते हैं।
बूढ़े से वे करे सगाई जरा नहीं शर्माते हैं॥
थोड़े दिनमें बूढ़े बाबा कबरों पे जब जाते हैं।
पराधिन वश विधवा हो हम दुःख अनेको पाते हैं॥
पंच लोग भी साथ खुशासे माल ब्याह में खाते हैं।
धर्म अधर्मका ज्ञान नहीं वे पाप हमारा पाते हैं॥

डूब जावोगे पंच लोग तुम दुर्गतिमें दुःख पाओगे तुम
क्रूर प्रथाका अबभी यदि तुम नाश नहीं करवावोगे ॥"

यदि कहीं न्याय करनेका मौका आगया तो न्याय उसी पक्ष होगा जिस पक्षमें संसारकी घुड़ दौड़ जारी है। थोड़े ही वर्ष प हुए नसीराबादमें स्वजातीय पंचोंके एक न्यायका मुझे स्मरण है। ए व्यापारी महाशयकी धर्मपत्नी जापा जणने को अथवा किसी अ कार्यके कारण तीन चार माहके लिये पीहर गई थी। पीछेसे रसे बनानेके निमित्त नजदीक ही मकानमें रहनेवाली एक गरीब विधवा स को रखा गया, कुछ दिवसमें महाशयजीने उस विधवाको कामजाल फांस लिया। दो तीन माह पश्चात् विधवाके गर्भ प्रगट हो गया पंचायत हुई। विधवाको बुलाकर पूछा गया। उसने सत्य बात सो प्रगट कर दी। ओह। ऐसे इज्जतदार आदमीके विषयमें क कुछ किया जा सकता है? कैसे किया जा सक्ता है? वदमाः तो उस स्त्री ही की है हमारे पास प्रगट प्रमाणोंमें वह ही दोषी है इसलिये उसको बिरादरीसे पृथक किया जाता है! कितने ही लोगों कहा कि या तो दोनोंको पृथक करना चाहिये या इसको भी क करना चाहिये पर कहनेवालोंकी कौन सुने। वे बिचारे इस अनुचि न्याय के विरोधमें पृथक पांच आदमियोंकाही धड़ा बना कर अल हो गये हैं और संभव है कुछ अरसेके बाद सफलता न देखकर भी सबमें जा मिलें और वही अन्याय पुनः पुनः हुआ करे।

हरएक नगरके ग्रामोंके और कस्बोंके पंचायती न्यायोंकी जांच क देखें। पांच वर्षके ही मामले लेकर देखें तो यही मिलेगा कि न्याय देखकर किया जा रहा है, बेचारे गरीबोंको दबानेके लिये पंचा

हैं, धनवालोंकी स्वच्छंदता रोकनेके लिये इनको कुछ मतलब नहीं है। लेखककी दृष्टिमें तो पंचायतें गरीबोंकी अपेक्षा धनवानोंके साथ उसी तरह अधिक बुरा कर रही हैं जिस तरह कि लाड़में माता बच्चेको अधिक स्वादिष्ट वस्तुऐं खिला खिलाकर उसकी तन्दुरुस्तीको खराब कर देती है।

अब वह जमाना नज़दीक आ रहा है जब कि या तो पंचायतोंका सुधार हो जावेगा वा इनका कालके गारमें पधारना हो जावेगा।

मनोभूमिकी तैयारी

उन्नति के शुभकार्य के लिये हमको प्रथम अपनी मनोभूमि को दुरुस्त कर लेना चाहिये। जबतक भूमिमें निरर्थक पत्थर तथा अन्य कचरा मौजूद रहता है तबतक वह भूमि उत्तम फल उत्पन्न नहीं कर दे सकती, इसी तरह हमको अपने मनको निर्मल और स्वच्छ कर लेना चाहिये।

(१) हमको प्रायः जो यह विचार रहता है कि "हमारे प्राचीन रीति रस्म बड़े ही अच्छे हैं, ऐसे उत्तम रीति रस्म किसी के नहीं हैं। हमारे बुजुर्ग बड़े भारी बुद्धिमान् थे ये हमारे जितने भी रीति रस्म हैं सब सर्वज्ञ भगवान् के धर्मशास्त्रोंके अनुसार हैं। इनको हमारे बुद्धिमान् बुजुर्गोंने चलाये हैं। हमारेमें तो हमारे बुजुर्गों के मुकाबिलेमें एक पैसे भर भी बुद्धि नहीं है। हमको इन रीति रस्मों का ही सहारा है हम तो चाहे कष्टसे ही जीवन व्यतीत कर लेंगे किन्तु अपने पूर्वजों (बुजुर्गों) की रीति नहीं छोडेंगे, वंशमें कुपुत्र (कपूत) नहीं बनेंगे, अपने पुरखाओंका (पूर्वजोंका) धर्म कैसे छोड़ देंगे? और नई नई बातों का तो क्या? नित्य नई नई बातें

चल रही हैं इसीसे तो घटती हो रही है हर तरह की अवनीति हो रही है, हमको तो अपने कुलकी रीति नीति जो बड़ेरोंसे (बुजुर्गोंसे) होती चली आई है वह ही करना है वही हमारे लिये तो अच्छी है उसीमें हमको तो सुख है। हम जो उससें कुछ कमी रखें, विरुद्ध जावें और कोई हमें बतावे तो हम उसकी बात तुरन्त मान लेंगे और यदि कोई हमको अपनी (उसकी) ही बात मानने को मजबूर करे तो हम किसी की बात माननेको तैयार नहीं हैं। ”

‘ लोकोहि अभिनव प्रियः ’

यह संस्कृत की उक्ति बहुतसे विषयेंमें भी चरितार्थ होती है परजातीय रीतिरिवाजों की ओर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ है। बल्कि इसके विपरीत ‘ गतानुगतिको लोकः ’ वाली कहावत इस विषयेंमें बहुत ही ठीक चारितार्थ हुई है । पुराने पनके अनुचित व अज्ञानतामय आग्रह से किसीका कल्याण नहीं हो सकता ऐसा आग्रह उन्नति के द्वार तक पहुचनेमें प्रतिबन्धक हो जाता है। किसी रीति प्रथा या चाल के पुरानेपन या नये पनमें ही अच्छे पनकी कसौटी नहीं है उसका अच्छापन उसकी उपयोगिता जनसमाज की हितावहतामें है जिस चाल या प्रथासे हानि होती है। चाहे वो पुरानी हो या नई, त्याज्य है। जो लोग केवल पुराने पनके ममत्व से कष्ट सहकर भी रिवाजों को अपनाना अच्छा समझते हैं वे मानवी शक्तियों के ज्ञानसे सर्वथा शून्य है। पुराना पुराना क्या करते हैं। आप आज जो नियम बनावेंगे वे ही कल भविष्यकी प्रजाके लिये पुराने हो जायँगे। वर्तमानमें बहुधा देखा जाता है कि कोई भी स्वतंत्र विचारक किसी भी पूर्वपरंपरासे चली आती हुई

बातमें कुछ ' ननुनच ' करता है या उसके प्रतिकूल अर्थ या अभिप्राय प्रकाशित करता है तो झट बहुतसे गतानुगतिक-लकीरके फकीर बने हुये महाशय एकदम चिल्ला उठते हैं कि " यह अभिप्राय तो परंपरासे प्रचलित अभिप्रायसे प्रातिकुल है । "

ऐसा पुराण प्रिय महाशय तर्क बुद्धिसे काम लेना नहीं जानते हैं । वे पुरुष पूर्वश्रुत विषयमें जमी हुई बुद्धि को वहांसे हटाकर नूतन विषयों के गुणदोषों की ओर ध्यान न देकर कूपमंडूक वृत्तिका आश्रय लेते हैं । इस पुराने पनके लिये आचार्य सिद्धसेन दिवाकरजीने बहुत ठीक कहा है ।

"जनोऽय मन्यस्य मृतः पुरातनः पुरातनै रेव समो भविष्यति ।
पुरातनेष्वित्यनवस्थितेषु कः पुरातनोक्तान्य परीक्ष्यरोचये ॥

अर्थ—दिवाकरजी पुरातन प्रियोंको संबोधन करके कहते हैं । पुरातन पुरातन क्या पुकारा करते हो, यह (मैं) जन भी मरनेके बाद, कुछ काल अनन्तर पुराना हो जायगा और फिर अन्य पुरातनोंके ही समान इसकी भी गणना होने लगेगी । अर्थात् मरे बाद सभी पुरातन बन जाते हैं । भला ऐसी अनवस्थित पुरातनताके कारण कौन बुद्धिमान मनुष्य किसी प्रकारकी परिक्षा किये विना आंख मूंदकर केवल पुरातनोंके नाम ही से चाहे जिस सिद्धान्तको स्वीकार कर लेगा। इसी विषयमें वे आगे चलकर कहते हैं—

" यदेव किंचिद्विषय प्रकल्पितम्,
पुरातनै रुक्त मिति प्रशस्यते ।
विनिश्चिताप्यद्य मनुष्य वाक्कृति,
र्नपठ्यते स्मृति मोह एव सः ॥

अर्थात्—पुरातनोंने चाहे अयुक्त भी कहा हो तो भी उनके कथनकी तो प्रशंसा ही करते रहना और आजकलके वर्तमान कालीन मनुष्योंकी युक्ति द्वारा सुनिश्चित विचारवाली भी वाणी (कृति) या विचार को पढ़ना तक नहीं। यह केवल मुग्ध मनुष्योंका स्मृति मोह रही है अन्य कुछ भी नहीं। इन्हीं महानुभावके समकालीन महाकवि कालिदासने भी मालविकाग्नि मित्रमें कहा है:—

पुराणमित्येव न साधुसर्वे, नचापि काव्यम् नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परिक्ष्यान्यतरद्भजन्ते, मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धिः॥

जो लोग समयकी प्रगतिको अच्छी तरह समझते हैं रीति रिवाजों की परिवर्तनशीलतासे पूर्ण परिचित है। उनके लिये परंपरासे चली आई हुई प्रथाएं कुछ महत्व नहीं रखती बल्कि समाजका हित करानेवाली नई प्रथाएं अधिक वाञ्छनीय होती हैं। पुराने रीति रिवाजोंका आदर पूर्वके अभ्यासको न छोड़ सकनेके कारण किया जाता है।

अब जरा हम इस विचारकी युक्ति संगतता (प्रामाणिकता) की जांच करें और सच्चाईकी जांच करें। अगर यह हमारा विचार सच्चा नहीं हो निरर्थक हो तो इसको मनोभूमिमेंसे उठाकर और बाहर निकाल कर मनोभूमिकी शुद्धि कर लें। हमारा यह विचार उन्नति मार्गमें स्थान स्थान पर बाधा रूप नहीं हो इसलिये इसपर प्रथम ही विचार कर लेना उपयुक्त है।

इसमें संदेह नहीं कि हमको अपने बुजुर्गोंका बड़ा उपकार मानना चाहिये क्योंकि उनके बदौलत हमको इस संसारमें जन्म मिला है, लालन पालन मिला है, अनेक प्रकारकी जानकारी मिली है, अनेक

प्रकारके रीति रस्म ऐसे प्राप्त हुवे हैं जिनसे हमको वड़ा सुख मिलता है और अनेक प्रकारके ऐसे उत्तम संस्कार प्राप्त हुवे हैं जिनसे हमारा सौभाग्य है और सौन्दर्य है।

एक अवोध पशुको अगर हम लाकर वाड़ेमें बन्द करें तो वह भी जब तक कि वहां के निवासका अभ्यासी नहीं हो जावे उसमेंसे निकलनेकी और जंगलमें पहोंचकर जहां वह हरी हरी घास चर कर आनन्द से रहता था स्वतंत्र विहार करनेकी हर प्रकारसे कोशिश करता है।

हम तो मनुष्य हैं हमारी तो बुद्धि पशुसे तीव्र (तेज) है। हमको जो कभी किसी प्रकार का कष्ट होता है हमारी वुद्धि उसका उपाय करनेको हमें आग्रह करती है। कितनी बार हम लापरवाह होकर उसका उपाय नहीं करते जिससे वह कष्ट और अधिकाधिक वढ़ जाता है और हमारा जीवन दुःखपूर्वक व्यतीत होता है। किन्तु जब हम अन्य कितने ही मानव वन्धुओंको अपने कष्टका उपाय करते देखते हैं और कष्ट मुक्त होते देखते हैं तो हम भी अपनी वुद्धि देवीकी कृपा से उपाय करनेको तत्पर हो जाते हैं और बहुधा कष्ट मुक्त भी हो जाते हैं कभी शीघ्र और कभी विलम्बसे। अस्तु हमको यह शिक्षा प्राप्त हुई है कि उपाय करने ही से कष्ट दूर होता है। बगैर रोये तो माता भी दुग्ध पान नहीं कराती।

हम जीवनमें कितनी ही प्रकार की काठिनाइयां भोगें और उनका उपाय नहीं करें। यही समझलें कि इसके तो उपाय है ही नहीं अथवा यदि हैं तो ऐसे हैं जिनको अपने पूर्वजोंनें उपयोगमें नहीं लिया तो अव हम उन उपायोंको कैसे काममें लेवें। इसका फल वही दुःख दर्द है और जो उपायोंको ग्रहण करना स्वीकार करे उसके लिये वही कष्ट युक्ति, सुख और आनन्द है।

किन्तु प्रश्न होता है कि क्या अपने पूर्वज बुद्धिमान नहीं थे जो उन्होंने उन कष्टप्रद रीति रस्मोंको बन्द नहीं किया और प्रचलित रखा। क्या प्रारम्भ भी उनहीने किया ? हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि कितनी ही जो हानिकारक नवीन रीतियां अपने देखते देखते प्रारम्भ हो गई हैं। जिनको हमारी सन्तान पांच सात पीढ़ी के पश्चात् अपने बुजुर्गोंकी रीतियां समझेंगी और यदि पालन करेंगी तो वे भी हानि उठावेंगी और दुःख पावेंगी। जेवरकी (आभूषणोंकी) इतनी अधिकता कि उतना नहीं हो तो जातिमें कुछ इज्जत ही नहीं है। उतने जेवर बगैर कुआँरा ही रहना पड़े। क्या हानिकारक प्रथा नही है ? स्त्रियां इतने बढ़िया सजधजके वस्त्र और आभूषण पहन कर सन्तुष्ट हों और जातिवालोंको और देखनेवालोंको सन्तुष्ट करनेके लिये बाहर जावें तब भी पहन कर जावें जितने कि वेश्याओंको भी आवश्यक नहीं होते हैं ? क्या यह भी रस्म हानिकारक नहीं चल गई है। क्या स्त्रियोंकी सादगी जो पहरानमें पहिले थी स्थान स्थानमें करीब करीब लुप्त नहीं हो चुकी ? तो हमारी बुद्धिके अनुसार तो हमारी ५-१० पीढ़ीवाली सन्तानको चाहिये कि वे इन कुरीतियोंको जो हम बुद्धिमान बुजुर्गोंद्वारा! प्रचलित हुई है बराबर पालन करते रहें और जो कुछ भी हानि हो उसको सहन किया करें किन्तु सादगीको नहीं अपनावें क्योंकि वह तो स्त्री पुरुषोंमें इतनी कम होती जा रही है कि २-३ पीढ़ीमें तो जातिमें (यदि जातिने ध्यान नहीं दिया) तो सर्वथा लुप्त हो जावेगी और नमूनेके लिये भी दिखलाती जातिमें तो नजर नहीं पड़ेगी इसलिये उनको भी इस सादगीको अपनाना बेजा होगा क्योंकि उनके बुजुर्गोंने जिस रीतिको नहीं अपनाई तब वे

नवीन रीतिको कैसे अपनावेंगे ? उनको तो हम बुद्धिमान बुजुर्ग ! लोगों के भक्त ! ! बन कर हमारी पसन्द की रीतियोंको पालन करते रहना चाहिये और कदापि हमारी इन रीतियोंको नहीं छोड़ना चाहिये और न कोई नवीन रीतिको प्रचलित करना चाहिये ताकि उनके हम बुजुर्ग (कहीं किसी भवमें उस समय होंगे) उनको सपूत समझें और प्रसन्न हों। जैसा हमारा विचार है और हमारी बुद्धि है वैसी ही यदि हमारे बुजुर्गोंकी बुद्धि होगी तव तो वास्तव में हमको भी ऐसा ही करना उचित था। किन्तु उनकी बुद्धि तो ऐसी नहीं थी। उनकी बुद्धिमानी का पता हमको लग सकता है यदि हम जरा अपनी बुद्धिको एक ओर रख कर देखें। और उस बुद्धिमानी को ही अपनाने के लिये तैयार हों।

हमारे बुजुर्गों ने जैनाचार्यों से सदुपदेश सुनकरके पूर्व देव देवियों की मानता को त्याग दिया, मांस मदिरादि भक्षण त्याग दिया, अपने कुलकी हिंसा पूर्ण रीतियों को त्याग दिया, राजपूत कहलाना त्याग दिया और ओसवाल कहलाना स्वीकार कर लिया, जैन धर्म अंगीकार कर लिया और जीवन शैली ही नवीन प्रारंभ कर दी। क्यों उन्होंने क्या यह कपूताई की कि अपने पूर्वजों के धर्म, जाति रीति, रस्म सबही बदल दिये ? अपनी बुद्धि के अनुसार तो हम अधिक सपूत हैं क्यों कि न तो हम धर्म बदलते, न जाति बदलते, और न रीति रस्म बदलते हैं और उनकी अपेक्षा तो वे भी सपूत हैं जो केवल कुछ रीति रस्म ही बदलते हैं कुछ प्राचीन रस्मोंको हानि-कारक समझकर त्याग करते हैं और कुछ नवीन रस्मों को लाभ दायक समझ कर प्रचलित करते हैं किन्तु अपनी जाति और धर्म

तो बेचारे नहीं पलटते। वाह, हमने भी खूब ही किया, लगे थे बुजुर्गों की बुद्धिमानी बतलाने और स्वयं हमने ही अपने बुजुर्गों को कुपुत्र सबूत कर दिया। धन्य हमको और हमारी बुद्धिको, कि जो अपने बुजुर्गोंको कुपुत्र प्रमाणित करने को तो तैयार हैं किन्तु उन्हीं को आदर्श मान कर उन्हीं के अनुसार चलना स्वीकार नहीं करते और जिस तरह बुजुर्गों ने अपनी रीति रस्मों को हानिकारक कुरीतियां बदरस्म समझ कर त्याग दिया और सुरीतियां और नेक रस्म इस्तेमाल कर लिये उसी तरह हम भी हानिकारक कुरीतियों को त्याग करनेको और लाभदायक सुरीतियों को ग्रहण करने को तत्पर नहीं हो जाते। यह हमारा केवल व्यर्थ हठ है और इसके कारण हमने बहुत हानि उठाई है।

यदि उपरोक्त दलीलोंसे (युक्तियोंसे) भी हमारी तृप्ति नहीं हुई है तो इसी संबंधमें कुछ ऐसी धार्मिक युक्तियाँ अपने सन्मुख रखना होगा जिससे धार्मिक अपेक्षा से भी उन धर्मोपदेशकों की तृप्ति हो जावे जो प्राचीनता से हमारी ही तरह के समर्थक हैं।

भगवान् ऋषभदेवजी के समय में (जिसको आज अरबों वर्ष बीत चुके) युगल अर्थात् बालक और बालिका एक साथ उत्पन्न होते थे और योग्य वयमें आनेपर दोनोंका विवाह होता था, दोनों पति पत्नी हो जाते थे। भगवान् ऋषभदेवजीने इस प्रथाको उपदेश देकर बन्द कराया था। वर्तमान कालमें भी बालक, बालिका कभी कभी साथ उत्पन्न होते हैं और भाई बहन माने जाते हैं। भगवान्का विवाह भी उनके साथ उत्पन्न हुई बालिकाके साथ ही हुआ था तथा एक बालिका, जिसके साथके बालककी मृत्यु होगई

थी, वह भी भगवान्को ही विवाही गई थी। इस प्रकार भगवान्के २ पत्नियाँ थी, १०० पुत्र थे और दो कन्यायें थी और अनेक प्रपौत्र थे। पश्चात् भगवान्ने गृहस्थ धर्म त्यागकर दीक्षा ली थी। तीर्थंकर भगवान्का अनुकरण तीर्थंकर भगवान् तो करते। भगवान् नेमिनाथजीने तो तोरणसे ही रथ लौटा लिया। पुत्रादि होना तो दूर विवाह ही नहीं किया, आजन्म ब्रह्मचर्य पालन किया। भगवान् महावीरने तो विवाह भी किया। भगवान् नेमिनाथजीकी तरह आजन्म ब्रह्मचारी क्यों नहीं रहे? कारण यह था कि वे लीक पीटनेवाले नहीं थे। लीक लीक गाड़ी चले; लीकहि चले कपूत। बिना लीक तीनों चले; सागर सिंह सपूत॥ धार्मिक प्रमाण इस विषयमें अनेक हैं किन्तु कार्य शिक्षा ग्रहण करनेसे चलेगा। कोई भी रीति रस्म चाहे कितनी ही प्राचीन है (पुरानी है) यदि हानिकारक है और बेजा है तो त्याग देना चाहिये और उत्तम तथा लाभदायक रीति रस्म चाहे नवीन भी है तो निःशंक होकर ग्रहण कर लेना चाहिये। यदि पूर्वजोंका और धर्मशास्त्रोंका मत है जिसके द्वारा हम अपनी मनोभूमिमें से मिथ्या प्राचीनताके पक्षपातके भ्रमको अलग निकालकर उसको निर्मल कर सकते हैं जिससे उन्नतिका वृक्ष शीघ्र फल सके।

यह प्राचीनताका प्रेम जिन महान् आत्माओंने हमारे मस्तिष्कमें प्रवेश किया था उनका यह सदुद्देश्य था कि हम अपने प्राचीन गुणोंकी, प्राचीन संस्कारोंकी, प्राचीन प्रतिष्ठाकी बराबर जी जानसे रक्षा करते रहें, उनको भी अपने बुजुर्गोंकी सम्पत्ति समझें और कायम रक्खें लापरवाह होकर खो नहीं दे। किन्तु उनका यह उद्देश नहीं था कि हम प्राचीन हानिकारक दुर्गुणोंको भी जो हमने बुजुर्गोंमें देखे हैं

हम भी अपनेमें उतार लें और नवीन गुण कोई ग्रहण न करें। यदि हमारे पिता तम्बाकू या भंग पीते थे तो क्या हमको भी पीना ही चाहिये ? यदि हमारे पिता परस्त्री गामी थे या हमारे दादा सट्टेबाज यदि थे तो हमको भी वैसे ही बन जाना चाहिये ? हमारे पिता यदि बहुत ही थोड़े लिखे पढ़े थे तो हमको भी क्या विद्वान बनकर नई बात घरमें नहीं करना उचित है ?

किन्तु यह भी हमें खूब स्मरण रखना चाहिये कि प्राचीन बातों को जिस तरह हमें यदि वे हानिकारक मालूम पड़े तो उन्हें त्यागनेकी ज़रूरत है, उसी तरह प्राचीन बातें यदि लाभदायक हों तो उन्हें क़ायम रखनेकी भी ज़रूरत है और नवीन रीति रस्म भी जिस तरह लाभदायक हों तो ग्रहण करनेकी ज़रूरत है उसी तरह यदि नवीन रीति रस्म भी अनावश्यक, व्यर्थ और हानिकारक मालूम हों तो उन्हें ग्रहण करनेकी हमें कुछ जरूरत नहीं है।

जिस प्रकार एक कचरे को हमने मनोभूमिसे निकाल दिया और समझ लिया कि चाहे प्राचीन हो वा नवीन हो यदि कुरीति है तो हमको त्याज्य है और यदि सुरीति है तो हमको ग्राह्य है चाहे वह नवीन है वा प्राचीन है। इसी प्रकार एक उस भ्रम को भी हमें मनोमंदिरसे निकाल कर उसको पवित्र बना लेना चाहिये जिसके वश होकर केवल हम ही नहीं बड़े बड़े धार्मिक विद्वान् धर्म मार्ग को (जैन धर्म के अनेकान्त वादको) त्याग कर धर्मविरुद्ध मार्गको (एकान्त वादको) धर्ममार्ग समझ लेते हैं और उस मार्ग पर चल कर प्रायः भूल भूलैइयामें भटकते हैं।

यदि इस प्रकार भूल भुलइयांमें न फंसे होते तो आज उन्नतिका सूर्य इतना ढला हुवा नहीं होता।

धर्म एक वस्तु है और रीति रस्म दूसरी वस्तु है। धर्म शाश्वत, अटल और अबाधित है और रीति (जिसको कभी कभी धर्मका नाम भी दे दिया जाता है) परिवर्तन शील है और बाधित भी होती है।

हम अल्पज्ञ हैं, अल्प बुद्धि हैं, विशेष ज्ञान नहीं रखते, इस कारण हम किसी बातको तथा किसी रीतिको धर्म नामसे उपयोग करने लगते हैं ताकि उसके पालनमें हमको सावधानी रहे, रुचि रहे और कर्तव्य पालन करते रहें किन्तु जब कभी उसमें सूक्ष्म विचार का काम पड़ जाता है तो हमारी बुद्धि चक्कर खा जाती है। हम परस्पर झगड़ने लगते हैं किन्तु जब कोई अनेकान्तवादी यदि उस समय आ जाता है तो हमको हमारी भूल समझा देता है और बतला देता है कि क्यों वृथा परस्पर क्लेश कर रहे हो, तुम एकान्त वाद की ओर चल गये हो, तुम सबही सच्चे भी हो, और सबही झूठे भी हो। जरा अनेकान्त वाद की दृष्टिसे देखो, तब तुम शीघ्रही इस भूलभुलाईयांमें से निकल जाओगे और सत्यमार्गपर आजाओगे।

देखो पिताकी आज्ञापालन करना पुत्रका परमधर्म है। श्रीमान राम-चन्द्रजी महाराजने दशरथजी महाराज की आज्ञाका पालन किया और १४ वर्षका वनवास भोगा। वे पितृभक्ति के कारण आज पूज्य माने जाते हैं किन्तु प्रल्हादने तो अपनी पिताकी आज्ञाका पालन नहीं किया, उसको कितने ही कष्ट भी पिताने दिये तथापि उसने पिताकी आज्ञाका उल्लंघन ही किया। उसकी भी शास्त्र प्रशंसा ही करते

हैं। उसकी अनाज्ञाकारिता और आज्ञाउल्लंघनना को शास्त्र अनुचित नहीं बतलाते किन्तु उसकी इतनी प्रशंसा करते हैं कि वह बड़ा धर्मात्मा था, आदर्श पुरुष था और सत्यमूर्ति था। सीताजीने केवल रामचन्द्रजी महाराजको ही अपना पति माना जिसको शास्त्र सती कहते हैं और द्रौपदीने पांच (पांडवोंको) पति (एक ही साथ) किये जिसको भी शास्त्र सती नामसे प्रशंसा करते हैं।

भगवान महावीर ने माता पिताकी आज्ञा शिरोधार्य करके विवाह कर लिया जिसकी भी शास्त्र प्रशंसा करते हैं और उधर भगवान नेमिनाथजी ने किसी की कुछ नहीं सुनी और विवाह से फिर गये (लौट गये) उनकी भी शास्त्र प्रशंसा करते हैं। क्या भगवान ऋषभदेवकी तरह यदि कोई आज साथ जन्म हुई बालिकासे विवाह करे तो वह निन्दित नहीं होगा ? क्या रामचन्द्रजी महाराज और सीताजी में विवाह हो जाने के पूर्व ही राजा जनक की बाटिका में जो एक दूसरे के प्रति भावनाएँ हुई थी वे आज किसी कन्या या कुमार को होवे तो माता पिता प्रसन्न होंगे ? क्या द्रौपदी की तरह कोई स्त्री पांच पति वर्तमानमें कर लेवे तो उसको सती कहेंगे ? क्या श्री कृष्ण महाराजकी तरह अनेक पत्नियाँ आजकल कोई विवाहे तो उसको संसार निन्दा न करेगा ? क्या जिस तरह उस काल में कन्या और कुमार स्वयंकी इच्छानुसार अपनी पसंदगी कर लेते थे और उनका विवाह हो जाता था आज इस युग में कोई करे तो उनको कोई अनुचित नहीं बतलावेगा ? भगवान ऋषभदेवजीने जिस तरह अपनी कन्याओं (ब्राह्मी और सुंदरी) को अनेक कलाओं की शिक्षा दी थी यदि उसी प्रकार आजकल कोई देवे तो हम उचित कहेंगे ?

पहिले सूत्र, शास्त्र आदि लिखे नहीं जाते थे किन्तु आचार्यों ने लिखने की नवीन प्रथा प्रारम्भ की जिसे हम क्या अनुचित समझे ?

साधारण बुद्धि ऐसे अवसरोंपर चक्कर खाने लगती है किन्तु यदि यह समझकर कि एक ही आत्मा समय समय पर विविध विविध कारणोंसे विविध रूपोंमें विविध दशाओंमें जिस प्रकार प्रगट होती रहती है और वह स्वयं अपना अस्तित्व बराबर शाश्वत कायम रखती है उसी प्रकार विविध समयों में, विविध कारणों से, विविध अवस्थाओंमें भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे धर्मकी शाश्वत अटल आत्मा विविध रीतियोंमें प्रगट होती रहती है। साधारण मनुष्य रीतिको धर्म मान लेते हैं जिस तरह कोई मनुष्यको, हाथीको, घोड़ेको, आत्मा मान लेता है और जब नवीन रीति देखते हैं उसे अधर्म मानने लगते हैं। जिस तरह कोई सूक्ष्म जन्तुओंको अनात्मा जड़ मानने लगता है और इस तरह चक्करमें पड़ जाते हैं किन्तु एकतामें अनेकताको देखनेका और अनेकतामें एकता को देखनेका जिनको ज्ञान हो जाता है अर्थात् जो (जैनधर्मके) अनेकान्त वादके तत्वज्ञानको समझ लेते हैं वे कभी चक्करमें नहीं पड़ते। वे तत्वको ग्रहण करते हैं बाह्यरूपोंके पक्षपाती बननेमें कभी समय नहीं गवाँते।

अनेकान्त वादीके उक्त कथनसे हम भूल भुलाईयाँ से निकल जाते हैं। हमारी मनोभूमिसे संशय, कलह वा ईर्षा आदि कंकर पत्थर दूर हट जाते हैं हमको अपनी मनोभूमिकी स्वच्छतासे अत्यन्त आनन्द मिलता है और हम जिधर दृष्टि करते हैं उधर ही धर्मकी आत्माके दर्शन होते हैं। विविध प्रकारकी विवाह प्रणालियोंमें हमें वृत्ति निरोध और प्रेम

विकास दृष्टि गोचर होता है। विविध प्रकारकी शिक्षा प्रणालियेंमें हमे संस्कार प्रवेश दृष्टि गोचर होता है। विविध धर्म सम्प्रदाओंमें हमे आत्मोद्धार नज़र आने लगता है, हमको कोई भी पूर्ण असत्य नहीं दिखाई पड़ता, तारतम्यता से सत्य और असत्य दिखाई पड़ते हैं। जो ईश्वरको कर्ता, भर्ता और हर्ता मानते हैं वे भी सच्चे ही मालूम पड़ते हैं क्योंकि ऐसा नहीं माने तो पापसे डरे कौन; पापोंसे मुक्त होनेके लिये अपनी (अशक्तिसे) आशा करें किस पर ? जो ईश्वरको कर्ता, हर्ता, भर्ता नहीं मानते वे भी सच्चे ही मालूम पड़ते हैं क्योंकि वे कर्मके परिणामको मानते हैं। यदि विश्वास, भक्ति, ध्यान, समाधि आदि मानसिक कर्म, भजन, कीर्तन, प्रार्थना, धर्म-श्रवण आदि वाचिक कर्म और सेवा, सहायता, तपस्या, प्रायश्चित, सत्कर्म आदि शारीरिक कर्म नहीं करेंगे तो पापोंसे मुक्ति हो ही कब सकती है ? पाप क्रिया बन्द ही कैसे हो सकती है ? मूर्ति पूजा भी सत्य प्रतीत होती है क्योंकि यदि इष्ट देवके स्मरणार्थ मूर्ति सहायक होती है; उसके सन्मुख मनोभावनाओंकी शुद्धि और उच्चता सहज प्राप्त हो जाती है तो उसका उपयोग लाभदायक क्यों नहीं है ? इसी तरह यदि कोई बगैर मूर्तिके भी इष्ट देवका स्मरण कर सकते है; मनोभावनाओंको शुद्ध कर सकते हैं, हृदयको अधिकाधिक उच्च कर सकते हैं तो उनके लिये मूर्तिकी क्या आवश्यकता है ?

जो अपने बलसे और कौशलसे नदी पार कर सकता है उसको पार करनेमें नौका (नैया) की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु जो पार करनेकी शक्ति और कौशल नहीं रखता हो और नौका भी उपयोगमें नहीं लेता है वह पार कदापि नहीं पहुँच सकता। इसी

तरह जो नौकामें केवल बैठ जावे किन्तु उसके ऊपर के रंग, ढंग, सजावट, टीप, टापमें लयलीन रहे उसकी यथेष्टतामें ध्यान नहीं देवे कि इसमें कहीं छिद्र या दरार तो नहीं है जिससे मार्गमें ही आपत्ति नहीं आ जावे। यदि इतना नहीं देखे और आगे बढ़ जावे तो भी आपत्ति संभव है और उसके सौन्दर्यपर मुग्ध होकर नौकाकी उपयोगिता और प्रशंसा के गीत गाया करे किन्तु उसको खेना (चलाना) जानताही अच्छी तरह नहीं हो अथवा जानता भी हो पर उसके प्रेममें ऐसा मग्न होवे कि उस पार पहुँचनेका ध्यान ही भूल जावे तो वह भी पार कदापि नहीं कर सकता।

इसी प्रकार अनेकान्त वाद को समझ लेनेपर अपने भ्रम दूर हो जाते हैं। सृष्टिमें रहे हुए सत्य सौन्दर्यके दर्शन होते हैं। रीतियोंमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे कुरीति क्या है जो त्याग कर देने योग्य है और सुरीति क्या है जिसको ग्रहण करने और रखने योग्य है। जो पहिले जाति और समाज के लिये उचित थी वे आज अनुचित क्यों हो गई हैं और जो रीतियाँ जाति समाज के लिये पहिले अनावश्यक थी अब क्यों आवश्यक और प्रयोजनीय हो गई हैं। साधारण बुद्धिमें जो रीतियां पहिले "धर्म" मानी जाती थीं वे वास्तवमें धर्म थीं या परिवर्तनशील रीति मात्र थीं तथा जो आज पूर्व रीतिका परिवर्तन है वह अधर्म है, वा अधर्म नहीं धर्म है। इत्यादिका यथेष्ट ज्ञान हमको अनेकान्तवादके द्वारा हो जाता है। अनेकान्तवाद पर जैन धर्ममें जितने ग्रंथ लिखे गये मिलते हैं उतने किसी धर्ममें नहीं मिलते। अनेक दृष्टियोंसे देखनेके पश्चात् ही सत्य तत्व तथा सत्य कर्तव्यकी पहचान होती है जिसकी जीवनमें बड़ी

भारी आवश्यकता है। इसी कारण जैन धर्मने अनेकान्त वादपर अधिक ज़ोर दिया है किन्तु हम उससे क्या लाभ उठानेके इच्छुक हैं? इस अनेकान्तवादकी सहायतासे हम धर्म संबंधी मिथ्या भ्रमोंको भी मनोभूमिसे बाहर फेंक चुके हैं और उसको पवित्र शुद्ध कर चुके हैं किन्तु भूमिमेंसे उत्तम फल उत्पन्न करनेके लिये साफ सुधरी भूमि मात्रसे काम नहीं चलता उसमें खादकी जरूरत रहती है अच्छा खाद मिल जाने पर उस भूमिकी उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है उस खादसे उस भूमिकी ऊसरता मिट कर उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है जिससे वृक्षको अंकुर फूटनेमें तथा बढ़नेमें खूब अच्छी शक्ति रूप खुराक मिलती रहती है। जिस प्रकार खेतमें खाद डालनेसे उत्पत्तिके लिये अच्छा मसाला तैयार हो जाता है उसी प्रकार सत्यरूप उत्पत्तिके लिये मनोभूमिमें श्रद्धा की आवश्यकता है।

कहावत है कि "इष्ट बगैर मिष्ट" जिस मनुष्यको श्रद्धा नहीं, किसीमें भी श्रद्धा नहीं, अपने आपमें भी श्रद्धा नहीं, अपने प्रयत्नमें भी श्रद्धा नहीं, वह कभी सफल नहीं होता। इसलिये श्रद्धा किसी न किसीमें अवश्य रखना चाहिये उस श्रद्धाकी शक्तिसे हम प्रत्येक कार्यमें सफ़ल हो सकते हैं। पहिले जितना खोज करना हो करलें। खोज करके तो उसपर ऐसी दृढ़ श्रद्धा कर लेना चाहिये कि किसीके भी हटाये नहीं हटें। खोज करनेके पूर्व ही श्रद्धा जमा लेना प्रायः हानिकर भी हो जाता है किन्तु जब पूरी पूरी खोज करनेपर हमको मालूम हो जावे कि जिस हीरेको हम खानमें से खोज करके निकाल लाये हैं यह वही हीरा है जिसको हमें ज़रूरत थी और इसीमें वे सब गुण मौजूद हैं जिनकी हमें ज़रूरत थीं, हम

इसको खूब ही जाँच चुके और योग्य जौहरियोंके पास जँचवा चुके। अब तो हम अपनी श्रद्धा पक्की रखेंगे कि यही वह हीरा है जिसकी हमें ज़रूरत है। इसी तरह अनेकान्तवाद की दृष्टिसे अर्थात् सब अपेक्षाओंसे हम किसी भी वस्तुके हानि लाभोंको जाँच कर यदि उसको लाभदायक या हानिकारक वर्तमान देश, कालके लिये समझ लेंगे और लाभदायकको ग्रहण करनेमें और हानिकारक को त्याग करनेके प्रयत्नमें लग जायेंगे तो प्रयत्न करते हुवे कभी उसमें अपनी श्रद्धाको नहीं डिगावेंगे। क्योंकि हमने आँखें मींच कर उसपर श्रद्धा नहीं की है अनेक बुद्धिमानों की बुद्धि की सहायतासे हमने उस पर श्रद्धा की है और तब प्रयत्नमें लगे है अब तो अश्रद्धा करके पीछे हटना ऐसा ही है जैसे रेलगाड़ी रवाना हो चुकनेके बाद चलती हुई गाड़ीमें से कूदना! अतएव हम तो दृढ़ श्रद्धा रखकर ही प्रयत्न करेंगे ताकि सफलता अवश्य मिले। जो मनमें अधूरी श्रद्धा रखते हुवे काम प्रारंभ करते हैं वे कभी सफल नहीं होते और जो पूण श्रद्धाके साथ प्रयत्न करते हैं उनको सफलता अवश्य मिलती है।

जिस तरह स्त्रीपुरुषके संबंधसे ही संतानकी उत्पत्ति होती है इसी तरह श्रद्धा (दृढ़ विश्वास) और प्रयत्न दोनोंके द्वारा सफलता प्राप्त होती है, श्रद्धा अकेलीसे भी काम नहीं चलता और श्रद्धारहित प्रयत्नसे भी काम नहीं चलता। केवल जमीनकी उर्वरा शक्तिसे भी काम नहीं चलता और न केवल बीज बोनेसे काम चलता है। इसलिये पूर्ण श्रद्धाके साथ प्रयत्न करना हमारा कतव्य है।

डिरेक्टरी

ओसवाल समाजकी डिरेक्टरी होना ज़रूरी है इससे प्रत्येककी हालतका पता लग सकता है। अभी तक यह कमी वैसीही बनी हुई है। इस विषयमें जहां तक उपलब्ध हुआ है परिश्रम किया गया है। इससे सुधारकोंको सुभीता हो जायगा। गुजरातमें भी बहुतसे ओसवाल रहते हैं। एक हजारके करीब्र काठियावाड़में हैं। कच्छमें ओसवालोंका बहुत जत्था है। वहां ठीक पता नहीं लग सका। मालवा, मेवाड़, मेरवाड़, मारवाड़, पंजाब, खानदेशके बहुतसे शहरों व गाँवों की जन संख्याकी खोज की गई। प्रत्येक गाँवमें ओसवालोंके कितने घर हैं उनमें कौन मुखिया है आदिकी भी खोज करनेकी कोशिश की है। मेरी समझमें मैं इस कार्यमें पूर्ण सफल नहीं हुआ हुं तथापि जितना हुआ वही ठीक है।

गाँवका नाम	गृहसंख्या	गांवके प्रतिष्ठित पुरुष का नाम	विशेष विवरण
लश्कर	१००	०	रियाँवाले सेठ चांदमलजी की दूकान है।
शिवपुरी	६०	०	०
भेलसा	२५	०	०
भोपाल	१००	फूलचंदजी कोठारी कनकमलजी	वीकानेर नीमच आदि के लोगोंकी दूकान हैं। १० लक्षाधिपति।
सीहोरकी छावनी	१५	०	०
इच्छावर	१५	सेठ शोभागमलजी	ये सार्वजनिक कार्योंमें भाग लेते हैं।

गांवका नाम	गृहसंख्या	प्रतिष्ठित पुरुष	विशेष विवरण
शुजालपुर	४०	०	धर्मप्रचार ठीक है।
शाजापुर	२५	०	०
देवास	४	सरदारमलजी चम्पा-लालजी भंडारी	इनकी इन्दौरमें मील चलती है। अर्ध मागधीका कोष प्रकाशित करवाया है।
उज्जैन शहर	३००	धमण्डसिंहजी जवाहर-मलजी, कर्मचंदजी केवल-चंदजी	कन्या व बालपाठशालाएँ ४ हैं। २० लक्षाधिपति।
उज्जैनकापुरा	१२५	भट्टेचंदजी	१५ लक्षाधिपति।
उणेल	२५	०	साधारण स्थिति।
नागदा	२०	०	साधारण स्थिति।
खाचरौद	१५०	हिरालालजी, इन्द्रमलजी कोठारी	इनका विद्यालय अभी खुला है।
बरडायदा	२०	०	मामूली स्थिति।
इन्दौर	२५०	नंदलालजी भंडारी, जमना-लालजी रामलालजी कीमती ५० हजारका दान दिया है	यहां धनाढ्य बहुत हैं। नंदलाल भंडारी मील और पाठशाला भी हैं। शिक्षित भी बहुत हैं। उदय पुरके बाफणाजी यहां दिवान हैं।
कीलाधार	२०	जड़ावचंदजी बीकानेरिया	धार्मिक पाठशाला है।
कानून (गांव)	२५	०	०
बकतगढ़	२५	गिरधारीलालजी	धर्ममें प्रवृत्ति।

गांवका नाम	गृह संख्या	प्रतिष्ठित पुरुष	विशेष विवरण
वोहेडा	४०	०	०
लूणादा	४	०	०
कानोड़	२५०	चन्दनमलजी दक प्रताप मलजी मुरड़िया	पाठशाला नहीं है । कष्टकी बात है लक्षाधिपति ४
मिन्डर	२५	०	०
डूंगरा	१००	गोठीलाल फौजमलदक	पाठशाला नहीं है ।
कूंतवास	४०	०	०
सिंहाड़	१०	०	०
बम्वोरा	१००	०	धार्मिक क्रियाकांड का बहुत प्रचार है ।
खेरोदा	५०	०	०
ऊठाला	३०	०	०
डवोक	१०	०	०
गुडली	३०	०	०
आयड़	१०	०	०
उदयपुर	५००	कोठारीजी वलवतसिंहजी, नंदलालजी वाफणा नगर सेठ, फतेहलालजी दिवान	जैन शिक्षण संस्थाएँ, ओसवालों की सभी प्रांतों की अपेक्षा यहां अधिक शिक्षित हैं केवल उदेयपुरमें वाकी मेवाड़ शिक्षामें सवसे पीछे है ।
नाई	४०	०	०
गोगूंदो	२००	०	पाठशाला नहीं है ।
चितौड़	२००	गिरधारीलालजी हाकिम	पाठशाला
हमीरगढ़	२५	०	०

गांवका नाम	गृह संख्या	प्रतिष्ठित पुरुष	विशेष विवरण
भीलवड़ा	१५०	ज्ञानमलजी नागौरी	पाठशाला
कपासण	१००	मोतीलालजी भंडारी	०
सनवाड़	१५०	०	०
छिपोका	३०	०	०
आकोला गंगापुर	१२५	राजमलजी चांदमलजी रांका	०
वानणि	२५	०	
भदेसर	२५	०	०
भादोड़ा	४०	०	०
छखाड़ा	३५	०	०
मंडपिआ	२५	०	०
मोरवाड़ा	२५	०	०
नकुन	६०	छोटेलालजी पोरवाड़ गोत्र	यहां अभी एक कन्या दोदिनकी व्याही हुई विधवा हो गई है। शादी के वक्त वर बीमार था।
आसीन	४०	०	०
करेड़ा	४०	०	०
मदारिया	३०	०	०
तारगढ़	४०	०	०
डाहरिया मेहरिया	२५	०	०
देवगढ़	१२५	नथमलजी भंडारी जोगे हैं	०
दोलतपुरा	२५	०	०
सरदारगढ़	४०	०	०
(लावा) आमेट	१००	लालचंदजी नथमलजी कोठारी	०

गांवका नाम	गृह संख्या	प्रतिष्ठित पुरुष	विशेष विवरण
कुमारिया	४०	०	०
शाहपुरा	१००	०	०
मुल्तान	२०	०	०
तल्गोरा	१५	०	एक लखपति ।
वड़नगर	१५०	कनकमलजी चौधरी	सात आठ धनाढ्य पाठशाला भिक्षुयश रसायण नामक पुस्तक प्रकाशित हुई है ।
बुदनावर	१००	०	०
शुंड़वाल	अज्ञात	०	०
आंवरा	६०	०	०
वोरियां	६०	०	०
पछवाड़	४०	०	०
रतलाम	४००	केसरीसिंहजी पटवार, वर्धभानजी पीतलिया	धार्मिक पाठशालाएँ हैं, राजेन्द्रकोष प्रकाशित हुआ है, हुकमीचंद मंड़ळ, धर्मदास मंड़ल पुस्तकालय कन्याशाला आदि है ।
नामली	१२	०	०
पंचेर	१०	०	०
सैलाना	५०	०	०
धामणोद	२०	०	०
जावरा	२५०	बक्तावरमल सूरजमल	पाठशाला, खजेन्द्र मंड़ल व पुस्तकालय ।
नगरी	१	पन्नालालजी	०
नागदा जंकशन	२५	सागरमल चांदमल	०

गांवका नाम	गृहसंख्या	प्रतिष्ठित पुरुष	विशेष विवरण
प्रतापगढ़	१००	सुजानमल वांठिया लक्ष्मीचंदजी धीयावाले	पाठशाला
मन्दसौर	३००	उंकारलालजी वाफणा	२ पाठशालाएं २ पुस्तकमाला
सीतामहू	२५	जुहारमलजी	०
करजु	अज्ञात	पन्नालालजी चेनरामजी	पाठशाला १
नारायणगढ़	३०	०	पाठशाला १
मल्हारगढ़	२०	०	०
रामपुरा	१००	०	०
भानपुरा	१०	०	०
कोटा	१००	०	०
गरोठ	२५	०	०
नीमचछावणी	२५	नथमलजी चोरडिया	०
जावद	१०५	ज्ञानमलजी चौधरी, उत्तमचंद मूलचंद सिपाणी	पाठशाला २
केरी	१०	०	०
निम्बाटेड़ा	१००	गुलाबचंदजी माल्ह गौरीलाल ताराचंद चपलोत	पाठशाला, यतीन्द्र मण्डल ।
विनोता	२०	प्रतापमलजी मुणोत	०
खोडिप	७	०	०
छोटी सादड़ी	१००	छगनमलजी गोदावत करोड़पति, चन्दनमलजी नागोरी, रखवदासजी नलपाया	जैनाश्रम, पाठशाला । १ २
जीरण	४०	०	०
बड़ी सादड़ी	१७५	चम्पालालजी मेहता रतीचंदजी मेहता राजकर्मचारी	पाठशाला नहीं है ।
बनेड़ा	२५	०	०
गुलाबपुरा	१००	०	०
विजयनगर	६०	०	०
कालिया	२५	०	०

गांवका नाम	गृहसंख्या	प्रतिष्ठित पुरुष	विशेष विवरण
भणाय	१००	०	०
मोतीपुर	३०	०	०
सिंगोली	१००	मदाहियें में गिरवा जिलेमें	०
वेगम	१००	ओसवालोंके वहुत घर हैं।	०
नंदराय	४०	०	०
झार	२०	०	०
कणेरा	२०	०	०
तारापुर	१०	०	०
मोड़ी	७	०	०
सरवाणिया	३०	०	०
महागढ़	२०	०	०
सावण	१०	०	०
फतेहगढ़	१०	०	०
भालोढ़	१५	०	०
अमराबद	१०	०	०
ब्यावर (नया शहर) अजमेर	७००	श्रीचंदजी अब्राणी, वरदीचंदजी कल्याणमलजी मुथा चांदमलजी मुणोत, गाढ़मलजी लोढ़ा, कल्याणमलजी ढढ्ढा कोठारी	विद्यालय, शान्ति पाठशाला पुस्तकालय आदि हैं । करोड़पति धनाढ्य हैं। पाठशाला, ओसवाल मंडल और धर्म प्रचार भी हैं ।
नाथूदा	३०	०	०
बूंदी	२५	०	०
टोंक	५०	०	०
तोड़ा	१०	०	०
चारस	१२	०	०
वकाणी	३०	०	०
पुष्करजी	२५	०	०

* गोगूंदेसे आगे घासीया, पलाणा, ठामरा, झाड़ सादड़ी, सैरानमें ओसवालोंके वहुत घर हैं जहां शिक्षाका कुछ प्रचार नहीं है ।

गांवका नाम	गृहसंख्या	प्रतिष्ठित पुरुष	विशेष विवरण
ठांवरी	३५	०	०
पादु छोटी	६०	०	०
ववड़ी			
किशनगढ़	१००	०	०
माधोगंज	३०	०	०
जैपुर	२५०	नवरतनमलजी	पाठशाला ।
		,,	जौहरी प्रसिद्ध हैं ।
सोजत	३००	इन्द्रमलजी सुराणा	पाठशाला ।
वगड़ी	१२५	हिरालालजी	पाठशालाएं हैं। शिक्षाप्रचार का शोक है ।
पाली	४००	शेषमलजी मुकनचंदजी वालिया	०
जोधपुर	२०००	नवरतनमलजी	शिक्षाका प्रचार अच्छा है, उत्साही युवक है, राजकर्मचारी विशेष हैं ।
वालेसर	१००	०	०
वालोतरा	३७५	०	०
पचभद्रा	१००	०	०
जारोर	४००	इधर और भी गाँव हैं	०
सेवाणा		वाला सांढेरा आदि २	०
भावीं	४०	जहां ओसवाल रहते हैं ।	०
विलाड़ा	५०	०	०
कारू	५०		०
केकिन	५०		०
वरूंदा	३०		०
खज बाण	६०		०
कुपेरा	५०		०
भदाणा	११०		पाठशाला
देख़	३०		०
खीमसर	२५		०

गांवका नाम	गृह संख्या	प्रतिष्टित पुरुष	विशेष विवरण
पांचु	५०		
ओशिया		अपनी उत्पति यहांसे हुई है।	पाठशालाएँ है।
नागोर	४००		
मेडता	१००		
डोगोलाय	६०		
फलोदी	७००		पाठशालाएँ है धर्म प्रचार
अराय	४०		
नोखो	३०		
सूरपुरा	१५		
रासीसर	४०		
देशनोक	२५०	गुलाबचन्दजी आचालिया, चुन्नीलालजी बोथरा, भोला रामजी गुगलिया	पाठशाला है
उदरामसर	४०	माणकचंदजी सिवाणी	
भिनासर	१५०	कर्नीरामजी बहादुरमलजी बांठिया हन्तमलजी सेठिया	१२ लक्षाधिपति।
गंगा शहर	५५०	भैरोंदान ईसरचंद चोपड़ा, बोथरा धनाढ्य है	पाठशाला, २५ लक्षाधिपति।
उदासर	७०	मनसुखदास नेमिचंद सेठिया	धनाढ्य हैं।
बीकानेर	२५००	अगरचंदजी भैरोंदानजी सेठिया, हिरालालजी रामपुरिया करोड़पति, चांदमलजी ढढ्ढा आदि	धनके लिये विकानेर प्रसिद्ध है। ४-५ करोड़पति है, सेठिया संस्था जैन हाईस्कूल।

नासीक जील्हा

गांवका नाम	गृह संख्या	प्रतिष्ठित पुरुष	विशेष विवरण
नासीक	१००	चांदमलजी वरमेचा, भी-कचंदजी पारख	दानी गृहस्थ
घोटी	६०		
इगतपुरी	५०	लालचंदजी पारख	एक लक्षाधीपती
येवला	३५	जुगराजजी श्रीश्रीमाल जुगराजजी केशरीमल	लक्षाधीपती
लासलगांव	४०		
मनमाड	३५	पुनमचंद नारायणदास ललवाणी	लक्षाधीपती
पालखेड	२५	दगडू रामजी धोंडीरामजी प्रतापमलजी कोचर	लक्षाधीपती
नीहाय डोंगरी	२०	चूनीलालजी नाहार	लक्षाधीपती २
वणी	२५	अमरचंदजी नेणसुकजी पारख	लक्षाधीपती २
निफाड	२५		
पीपळगांव बसवंत	२०		
नांदगांव (दारणा डॉम)	४		लक्षाधीपती १
विंचूर	७	फकीरचंदजी	लक्षाधीपती १
चांदोरी	३		लक्षाधीपती १
ननासी	१०		लक्षाधीपती १
आंबे वरखेडा	१०		
चांदवड			लक्षाधीपती १
उमराणा	१५	धोंडीरामजी ओसतवाल	लक्षाधीपती १
वाडीवरां	१०		

पुना जील्हा

गांवका नाम	गृहसंख्या	प्रतिष्ठित पुरुष	विशेष विवरण
लोणावळा	२५–३०		लक्षाधीपती १
खड़काला	२०		
वड़गांव	१५		लक्षाधीपती १
चिंचवड़	२५		पाठशाला
जुन्नर	२०		
मंचर	७	आनंदरामजी भंडारी	लक्षाधीपती १
नारायणगांव	५		
खेड़	७		
चऱ्होली	१५	भीकचंदजी सुराणा	
फुलगांव	१०		
पुना	६०	मोहनलालजी वकील (वलदोटा)	लक्षाधीपती ५ पाठशाला स्था. जैन बोर्डिंग हाऊस
घोडनदी (शीरूड)	६०	घुमरमलजी वाफणा	लक्षाधीपती ३
दौंड	७		
बारामती	१०		लक्षाधीपती १

अहमदनगर जील्हा

गांवका नाम	गृह संख्या	प्रतिष्ठित पुरुष	विशेष विवरण
कोपरगांव	१०		लक्षाधीपती २
वारी	१५		
पुनतांबा	१०		
बेलापुर	१५	भागचंदजी	एक लक्षाधीपती
राहोरी	१५	गोपाळदासजी चंदरभाणजी	एक लक्षाधीपती

गांवका नाम	गृह संख्या	प्रतिष्ठित पुरुष	विशेष विवरण
वांबोरी	१५		
उंदरगांव	७		
शीरडी	७		लक्षाधीपती २
लाख	७	जोगीदासजी	
हीवड़ा	२५		
मीरी	१५		
सीरूड़	७		
सोनई	११		
राहातां	१५	पेमसजी सांड	लक्षाधीपती
दहेगांव	१०		
एकरुका	५		
कुक्षणा	१५	नवलमल मुलचंद	लक्षाधीपती १
कड़ा	१०		
आष्टी	१०		
जळगांव	५		
नीमगांव	५		
अहमदनगर	२५०३००	चंद्रभावजी भगवानदासजी कुन्दनमलजी वकील फीरोदीया, मुथाजी, प्रेमराजी पनालालजी, खुबचंद मुलतानचंद, मसिरीमलजी चारेडीया	५ वकील प्रायः धनाढ्य धार्मिक प्रवृत्ती
श्रीगोंदा	१०		

सातारा जिल्हा

गांवका नाम	गृह संख्या	प्रतिष्ठित पुरुष	विशेष विवरण
सातारा	१०	चंदनमलजी मोतीलालजी मुथा	लक्षाधीपती १
तासगांव	१०		

थली

देरासर १५ गोठीजी

(तनसुखदासजी दुगड़)

पुनरासर,	डगरगढ़,	आडसर,	भुमासर,	सरदार शहर
२०	४००	२५	१२५	१२००

चुरू,	फतेहपुर,	रामगढ़,	राजगढ़	राणी	भाद्रा
१५०	२५	२५	१००	५०	६०

रतनगढ़,	पड़ीहारो,	छापर	सुजानगढ़,	लाडनू	हांडक
२००	४०	१२५		६००	३००

चाड़वास,	बिदासर,	राजलदेसर,	लूणकरणसर,
८०	४००	४००	४०

मारवाड़

पोखण,	खिचन,	लोहावट	टीवरी,	मथाणिया,
२०	२००	१५०	२००	४०

बड़लू,	आवो,	आशोप	सेठाकीरिया	पींपाड
१००	४०	४०	५०	२००

सेरसिंहजीकीरियां,	पालासणी,	बिसलपुर,	जेसलमेर
३०	४०	५०	१००

खानदेश

भुसावल ३० नाहरमलजी गुलावचंद

नसीराबाद ३०

जलगांव ६० लक्षमणदासजी मुलतान चंदजी पाठशाला

बोदवड़ ३०

सिलोड़	४०	
जामनेरा	१०	राजमलजी ललवाणी, प्रायः सभी धनाढ्य ।
खेंड़	१०	सभी लक्षाधिपति ।
वागड़ी	३०	रतनचंदजी चोरड़िया ।
फतेपुर	११	सब लक्षाधिपति
लक्ष्मीसोरा	५	,,
नाचण खेड़ा	७	,,
गालर्ण	७	,,
पांचोरा	२५	बच्छराजजी धनाढ्य बहुत धार्मिक ।
करोदी		पाठशाला

इनके सिवाय वड़े बड़े देश रह गये है—जैसे सी पी. वरार मद्रास, वंगाल आदि । उनकी लिस्ट मैं नहीं दे सका । ।

इस प्रकार संख्याका ज्ञान होनेसे जहाँ धार्मिक पाठशालायें व दान पाठनकी व्यवस्था न हो वहां प्रवधंके लिये उचित उपाय किया जाय।

आवश्यक समाचार

१ गत आखातीजके रोज ईसाई लाघुरामजीकी दो कन्याओंका विवाह राजगडके लखमीचंदजी छाजेड़ तथा कर्णपुराके चौथमलजी सिंधीसें हुआ । इस विवाहमें अनेक ओसवाल शामिल थ ।

२ नासिक जिलेके दो ओसवाल युवकोंने खानदेश जिलेके बहिष्कृत ओसवालोंकी कन्याओंसे विवाह किया ।

ईसाई लाघुरामजीके कारण कलकत्तेकी तथा विकानेर आदि शहशहरोंमें खूब हलचल मची। कहा जाता है लाघुरामजीके पिता हीरालालजी चोरडीया लाड़नके ओसवाल और माता दरोगी थी, समा-

जसे बहिष्कृत होनेपर वे ईसाई हो गये। उन्हें पुनः जैन समाजमें लेनेका कार्य अर्थात् शुद्धिका कार्य कलकत्तेमें श्री जिनचारित्रसूरजी बीकानेर बड़े उपाश्रयके पूज्यने करके जैन बनाया। तदनन्तर वे ओसवाल बनाये गये अथवा यों कहिये कि ओसवाल बनानेके साथ साथ वे जैनी भी बन गये, यह भी कहा जाता है कि दोनों बालिकाओंकी माता ओसवाल थी किन्तु लाबुरामजीकी माता के बारेमें संशय प्रकट किया जाता है । दोनों युवक शुद्ध ओसवाल हैं किन्तु समाजमें उन्हें विवाह होनेकी उम्मीद न रही तब वे इन दोनों कन्याओंसे विवाहबद्ध हुए ।

नासिक जिलेके दो युवक शुद्ध ओसवाल हैं किन्तु खानदेशके बहिष्कृत ओसवालकी शुद्धताके बारेमें शंका प्रगट की जाती है। कहा जाता है कि खानदेशमें ऐसे २०० घर हैं जिनको कई वर्षोंसे समाजसे अलग किये हुये हैं। बराबर विश्वस्त इतिहास किसे भी ज्ञात नहीं फिर भी वे जातिके बाहर हैं ऐसा समझकर उनके साथ रोटी बेटी व्यवहार समाज करना नहीं चाहता।

इन दो घटनाओं जैसी अनेक घटनाएँ पहिले हो चुकी और जिनके कारण आज बहिष्कृत ओसवालोंकी संख्या बढ़ रही है। इन दो घटनाओंसे निम्न लिखित प्रश्न उपस्थित हो सकते हैं।

१ किसी भी अजैनको फिर वह इसाई, मुसलमान, हिन्दू कोई हो शुद्धिके द्वारा जैन बनाया जा सकता है वा नहीं ?

२ जैन बननेपर वह ओसवाल हो सकता है वा नहीं ?

३ बिना जैनके कोई ओसवाल बन सकता है वा नहीं ?

४ कोई ओसवाल दुर्दैवसे दूसरी समाजमें चला जाय तो वह वापस समाजमें आ सकता है वा नहीं ?

हमारे ख्यालसे किसी भी अजैनको जैन बनानेका अधिकार है। इसके प्रमाणमें ओसवाल, खंडेलवाल, पोरवालादि अनेक जातियां हैं ये सब जातियां पहिले अजैन थीं परन्तु आचार्योंने उन्हें जैन बनाया, जैन ग्रंथोंमें शुद्धिका विधान भी है, जैन धर्ममें हृषीकेशी तथा मेतारज जैसे अस्पर्शों को आनेकी कोई रोक टोक नहीं थी, इतनाही नहीं उन्हें उच्च कहानेवाले ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंके चोके पर गोचरी करनेमें किसीने नहीं रोका। व्यवहार तथा धर्ममें कोई प्रकार की अड़चन उपस्थित नहीं हुई इसीलिये अब भी अजैन के जैन बने हुये व्यक्तिसे व्यवहारमें बाधा नहीं आना चाहिये, यदि उस व्यक्तिको जैन बनने पर मुसीबतें उठानी पड़े वा जैन समाज उसे घृणाकी दृष्टिसे देखे वा उसे कुछ नीचा वा तुच्छता से देखे तो वह समाज का अपराध समझना उचित है क्योंकि अन्य समाजको पचाने की ताकत जिस समाजमें नहीं उसने अन्य समाजको अपने समाजमें क्यों लेना चाहिए ? पर नहीं ऐसा नहीं, जैन समाजमें अन्य समाज को पचानेकी ताकत थी इसलिये अजैन धड़ाधड़ खुसीके साथ जैन बनते थे।

समाचार संग्रह।

काशीपुर (बेलूर घाट) में १२ अगस्तको २२४९ अहिन्दु शुद्ध किये गये। श्रीमान् नगीनदास अमोलखरायने महात्मा गांधीजी को राष्ट्रीय शिक्षाप्रचारके लिये एक लाख रुपये दान दिये हैं।

ना० अन्नमलाई चेट्टियरने चिदंबरमें विश्वविद्यालय स्थापन के लिए २० लाख रुपये देने कबूल किये, उनके भतीजे सर मुथय्या चेट्टि-यरने मदुरामें विश्वविद्यालय स्थापन करनेके लिये २५ लाख देना स्वीकार किया है।

गवालियर रियासतके वरई गांवके एक ब्राह्मण वर का आकस्मिक मृत्यु हो जानेसे वधूका शुभ लग्न (!) वरका फेटा और कटारीसे लगाया गया, शाबास, कलियुगमें सतयुग बरतानेवालों तुम्हारी बुद्धिमता की ! जन्मभर उस बालिकाको वैधव्याग्निमें जवर्दस्ती ढकेलनेवालोंकी अक्ल मंदीपर हंसी आती है।

कॅलिफोर्निआके ' सॅन्पेड्रो ' नामके शहरमें एक ऐसा कुटुम्ब है जिनकी चार पीढ़ियेंमें केवल लड़के ही जन्मते हैं, एक भी लड़की पैदा नहीं हुई, कुल ३५ लड़के पैदा हुए। डाक्तरी खोजसे ज्ञात हुआ कि उस कुटुम्बके खूनमें ऐसा एक तत्व है जिनके कारण स्त्रियोंके गर्भाशयमें कन्या तय्यार नहीं हो सकती।

अवनति और उपाय।

हमारी अवनति क्या इस वर्तमानकालमें है ? यदि है तो किस प्रकार है ? और उसको हटानेके उपाय क्या हैं।

जनसंख्या की घटती का उपाय।

(१) हमारी जाति दिन प्रति दिन जनसंख्यामें घट रही है। इसका कारण यह है कि जितनी मृत्युओंके कारण हमारी जनसंख्या घटती है उतनी जन्मसंख्या के द्वारा बढ़ती नहीं है ! जो जन्म होते हैं वे अल्प आयुमें भी अनेक चल बसते हैं। जो यौवन अवस्था तक पहुंचते हैं उनमें सन्तानोत्पात्तिकी शक्ति यथेष्ट नहीं होती। ये भी लंबी आयु कम पाते हैं।

हमारी जातिमें मृत्यु भी अधिक संख्यामें होती है जिसका कारण यह है कि हम बालविवाह करते हैं जिनकी संतान इतनी दुर्बल होती है कि शीघ्रही अल्प आयुमें चल देती है। स्त्रीकी जापे आदिमें

या तो मृत्यु हो जाती है या रोग लग जाते हैं जिससे मृत्यु कुछ काल पश्चात् हो जाती है अथवा कम उम्रमें ही मृत्यु होती है। पुरुष भी बालविवाह के कारण तथा उचित उम्रपूर्व ही संगी साथियों द्वारा कामभावसे परिचित हो जाते हैं उनमें कामेच्छा उत्पन्न हो जाती है और अपक्व दशामें ही वीर्यस्खलन प्रारंभ कर देते हैं जिससे शरीर दुर्बल हो जाता है और शीघ्रही रोगोंसे घिर जाते हैं और वृद्धावस्था तक शायद ही जीते हैं। ये अधिक मृत्युसंख्या के कारण हैं इनके अतिरिक्त पौष्टिक खुराकका अभाव, आरोग्यताके नियमों की जानकारी का अभाव तथा योग्य औषध और चिकित्सक का अभाव भी कारण हैं जिनसे अधिक मृत्युऐं होती हैं।

जन्म संख्या जो मृत्यु संख्यासे कम होती है (बहुत कम होती है)। उसका कारण यह है कि जन्म स्त्रियां देती हैं (पुरुष तो उनके स्थानमें काम आ नहीं सकते) और जो जन्म दे सकने योग्य स्त्रियां होती हैं उनमें कितनी ही तो विधवा बन कर बैठ जाती हैं वे तो जन्म देने करनेके कामसेही अलग हो गई। अब जो शेष सधवा बचती हैं वे भी चूंकि छोटी उम्रमें विवाहित की हुई होती है एक दो जापोंके बाद शीघ्रही या तो चल बसती हैं या बांझ होकर बैठ जाती हैं फिर उनके गर्भ ही नहीं रहता। इनके अतिरिक्त कितनी ही के तो उम्र भरमें एक बार भी गर्भ नहीं रहता है, इनके अतिरिक्त कितनी ही स्त्रियोंके पति (परस्त्री गामी वा अधिक स्त्रीके साथ मैथुन सेवन करने वाले) भी ऐसे होते हैं जिनमें सन्तानोत्पादक शक्ति ही नहीं रहती। इस कारणसे उनकी स्त्रियोंके गर्भ नहीं रहता और सन्तान उत्पन्न नहीं होती।

जन्मे हुवे बालकोंकी मृत्यु संख्या अल्पायुमें अधिक होनेका कारण प्रथम है उनके माता पिताका अपरिपक्व रजो वीर्य, और द्वितीय है माता पिताकी संतान पालन पोषणकी जानकारीका अभाव।

जो यौवन अवस्था तक पहुँच गये हैं किन्तु अधिक लम्बी उम्र नहीं पाते हैं और उतनी उम्रमें भी उनमें (स्त्रियोंमें और पुरुषोंमें) सन्तानोत्पत्तिकी यथेष्ट शक्ति नहीं होती । इन दोनोंका कारण है (१) बाल विवाह (२) वही कारण पुरुषका अधिक भोगी होना।

अतएव जन संख्याकी घटती रोकनेका प्रथम उपाय है बाल विवाहको पूर्णतया बन्द कर देना अर्थात् जब तक स्त्री १४ वर्ष पूर्ण करके १५ वें वर्षमें न चली जावे तथा पुरुष १८ वर्ष पूर्ण करके १९ वें वर्षमें नहीं पहुँच जावे तब तक उनका विवाह नहीं करना। काम भावके परिचयसे उनको दूर रखना ताकि कामेच्छा उनमें उत्पन्न नहीं हो और वे प्रकृति विरुद्ध हस्तक्रिया आदि तथा अन्य दुराचारणों द्वारा अपरिपक्व वीर्यको क्षीण करना प्रारंभ न कर दें इसकी सावधानी रखना। द्वितीय उपाय यह है कि विधवाओंको पुनर्विवाह करने देना तथा बालविधवाओंका पुनर्विवाह करा ही देना जिससे उनके भी सन्तान होवे और वे भी जन संख्याकी घटतीमें सहायक होनेसे रुकें। और तृतीय उपाय यह है कि पौष्टिक खुराक और योग्य चिकित्सक और औषधकी सुविधा हो तथा आरोग्यता संबंधीं तथा शिशुपालन संबंधी शिक्षा का प्रचार ओसवाल जातिके मनुष्योंमें होवे।

बालविवाह के रोकनेके लिये जैन कॉन्फरेन्सों द्वारा उपदेशकों द्वारा तथा धर्मगुरूओं द्वारा भी कुछ प्रचार हुआ है। कितनी ही सभाऐं भी कुछ आन्दोलन करती है जिनसे नगरोंमें कुछ कमी हुई है तथापि ग्रामोंमें

अभी बहुत चलही रहा है जिसके लिये प्रयत्न की आवश्यकता है।

कुछ रियासतोंने भी राज्य नियम द्वारा बालविवाह को रोका है और ब्रिटिश भारतमें भी बालविवाह बन्द कराने के निमित्त कानून पर कौन्सिल विचार कर रही है। इससे भी बालविवाह रूकेंगे। यदि गवर्नमेंटको आशंका हो जावेगी तो गवर्नमेंट वरकी वा वधूकी उम्रकी परीक्षा करेगी जिसमें कुटुंबकी प्रतिष्ठाको धक्का पहुंचने की संभावना है। यदि पंचायतो द्वारा रूक गया होता तो न तो कानून राज्यसे बननेकी आवश्यकता होती और न प्रतिष्ठाको धक्का पहुंचने की संभावना रहती और न किसी प्रकारका अनावश्यक कष्ट उठाना पड़ता।

विधवा विवाह के प्रति जातिमें अभी घृणाभाव, विरोधभाव, और उदासीनता है कितने ही को तो इतनी घृणा है कि इसका जिक्र सुनते ही कान दूसरी ओर कर लेते हैं। विरोध करना भी पसन्द नहीं करते हैं और सुनना भी पसन्द नहीं करते है। कितने ही सुन तो लेते हैं किन्तु सुनकर क्रोध करने लगते हैं कितने ही निन्दा करने लगते कितने ही अपशव्द वकने लगते हैं कितने ही विरोध करने लगते हैं और कितने ही युक्तियोंमें हार खाकर उदासीन भाव दिखलाने लगते हैं, यह अवस्था देखकर यह अवश्य है कि इसका (विधवा विवाहका) प्रचार बड़ी कठिनाई से हो सकेगा।

इस विषयमें प्रचार कार्य अभी बहुत कम हुवा है कारण कि कितने ही सुधारकोंको तो भय है कि इसका शव्द भी जिव्हासे निकलते ही अपनी बड़ी निन्दा होगी और बड़ी घृणासे समाजमें देखे जाएँगे और कितने ही सुधारकोंका मत यह है कि जन संख्याकी

---

१. अब बालविवाह निषेधक कानून बन चुका है।

घटती यदि बाल विवाह रूक गया तो इससे ही रूक जावेगी बाल विवाह रूक जानेपर विधवाएँ ही कम होंगी; इस कारण सधवाओंसे सन्तान अधिक जन्म जावेंगी और हमारी घटती रूक जावेगी।

बाल विवाह रूक जानेपर भी विधवाओंकी संख्यायें तनिक कमी चाहे हो जावे किन्तु बच्चे उत्पन्न करने योग्य अधिकतर विधवाय फिर भी विधओंमें एक अच्छी संख्यामें पावेंगी जिससे वही प्रश्न सामनेका सामने खड़ा रहेगा और तब तक हल न होगा जब तक कि विधवा विवाहसे परहेज रखते रहेंगे ।

गत सन् १९२१ की मनुष्य गणनामें जैनियोंकी मनुष्य संख्या ११७८५९६ थी जिनमें ६१०२७९ पुरुष थे और ५६८३१७ स्त्रियां थी जिनमें १४३९९५ विधवाएं थी। राजपुतानामें और अजमेर मेरवाड़ामें अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा प्रति सहस्रकी गणनामें विधवाऐं अधिक हैं। यहां पर २८८ प्रति सहस्र स्त्रियेंमें विधवाऐं हैं। यही जैनियोंकी अधिकतर और विशेषतया ओसवाल समाजकी आबादी है। और प्रान्तोंकी स्त्रियेंमें जैन समाजमें कहीं इतनी विधवाओंकी संख्या नहीं है, सब प्रान्तोंमें १०० जैन स्त्रियेंमें कहीं २० कहीं २१ कहीं २२ तो कहीं २५ किन्तु यहां २८–२९ तक हैं।

संभव है बाल लग्न बिलकुल रूक जावे। कितनी ही रियासतोंमें हमारी जन संख्या बहुत बड़ी है जहां अभी बाल विवाह खूब प्रचलित है। ग्रामोंमें भी अभी खूब चल ही रहा है और बेजोड़ विवाहोंके कारण जो विधवायें होती हैं तथा क्षयादि रोगोंके तथा न्युमोनियादि रोगोंके कारणसे अनेक युवकोंकी मृत्युऐं जो होती हैं उनके कारण विधवाओंकी संख्यामें कमी होना बहुत कम संभव है।

जब तक विधवाएँ हो होकर बैठी रहेंगी और पुनर्विवाह न करके संतान उत्पन्न नहीं करेगी तब तक तो जन संख्याका ह्रास रुकना कठिन ही है इसलिये इसके प्रचारके निमित्त भी कार्य होना अत्यावश्यक है।

इसी तरह आरोग्यताके नियमोंकी तथा शिशुपालके नियमोंकी शिक्षाका भी स्त्रियोंमें और पुरुषोंमें उपदेशकों द्वारा खूब प्रचार होनेका प्रयत्न होना चाहिये। मैजिक लैन्टर्न द्वारा भी खूब प्रचार किया जा सकता है। यदि हो सके तो, क्योंकि शिक्षा और मनोरंजन दोनों ही साथ साथ हो जाते हैं। इसी तरह योग्य चिकित्सक, पर्याप्त औषध और पौष्टिक खुराककी भी किसी प्रकार जातिमें सुविधा हो तो जन संख्या घटनेसे बच सकती है इनकी सुविधाका उपाय पर्याप्त (काफ़ी) आय है।

द्रव्यकी कमीकी पूर्ति।

(१) हमारी जातिमें यद्यपि कितने ही धनाढ्य भी हैं जिनके अच्छी आय है सुखसे जीवन व्यतीत कर सकते हैं द्रव्यकी उन्हें कमी नहीं है किन्तु अनेक कुटुम्ब ऐसे भी हैं जिनको अपना गुजारा भी बड़ी कठिनाईसे करना पड़ता है। उनकी वे ही जानते हैं, तथा उनका जीवन इतना कष्टमय बीतता है कि यदि उतनी ही आय होती और किसी अन्य जातिमें जन्म लिया होता तो इतना कष्ट वे नहीं पाते। उनके हितार्थ कुछ उपयोगी विचार यहां प्रगट कर देना आवश्यक समझते हैं।

(अ) आप प्रथम उन सब व्यर्थ खर्चोंको बन्द कर दीजिये जिनको आप पूर्वजोंकी प्रतिष्ठाके नामपर उठाते हैं गरीब

कहलानेसे डर कर उठाते हैं। उदाहरण रूपमें स्त्रियोंके लिये नौकरनी साथ जानेको चाहिये, घरमें पीसने, पकानेके लिये चाहिये ये सब व्यर्थ व्यय है। यदि आपकी स्त्री अपने हाथसे काम कर सकती है तो घरमें सब काम उसी से कराईयेगा वा आप सहायता दीजियेगा। नौकरानीकी कुछ जरूरत नही है। बाहर साथ जानेको नौकरनीकी क्या आवश्यकता है आप स्वयं साथ जाइये। यदि लज्जा आती है तो उसका बाहर जाना मौकूफ रखियेगा। पहिले लज्जा जीत लीजियेगा, स्मरण रखिये चोरी या अन्याईमें लज्जा करना चाहिये। आपके साथ वह आई है यदि कहीं आपके साथ वह जावे तो इसमें भी क्या कुछ हर्ज है? अनावश्यक वस्त्र व्यय भी प्रतिष्ठा के लिये मत कीजियेगा। आप यदि खादीके ही वस्त्र पहने हुवे हैं किन्तु यदि उसमें ही सन्तुष्ट हैं तो आपके लिये वही बहुमूल्य हैं। इसी प्रकार आभूषणों को भी जितना कम कर सकें कर दीजिये क्योंकि यह कोई आवश्यक वस्तु नहीं है इससे इस सूरतमें न तो पेट भरता है और न अंगही ढंकता है। इसको बेचकर यदि उस द्रव्यसे व्यापार ही किया जावे तो अपना लाभ हो सकता है किन्तु इस सूरतमें वह सिवायमें घिसता है। इसी तरह जातिमें शोभा पानेके खर्च भी कुछ आवश्यक खर्च नहीं है। जातिमें गरीब अमीर सब होते रहते हैं जब पासमें ही खर्चनेको नहीं हो

यदि आप नौकरी कर रहे हैं तो अधिक बफ़ादारीसे कीजिये। मालिक पर उस बफ़ादारीकी शीघ्र या विलम्भसे अवश्य छाप पड़ेगी और आपकी तरक्की हो जावेगी।

यदि इसमें खर्च नहीं चले तो नौकरीके अतिरक्तके समयमें कुछ उपार्जनकी कोशिश कीजिये।

इनके अतिरिक्त घरके कामोंको यदि अपने परिश्रमसे कर सके तो उनको भी हाथसे करने लग जाईये, इस तरह भी जो कुछ बचत हो उसको आपही समझीयेगा।

हाथसे पीसा जा सकता है, धुलाई की जा सकती है, रंगाई की जा सकती है, खाद्य वस्तुऐं (पापड़, वड़ी आदि) तैयार की जा सकती है, सिलाई की जा सकती है और बचत की जा सकती है, कताई की जा सकती है यदि सीख लें तो बुनाई भी की जा सकती है जिनसे घरमें बचत भी हो सकती है और अवकाशमें द्रव्य भी कमाया जा सकता है।

किन्तु इस प्रकार आय बढ़ जानेसे उस खर्च बढ़ती की ओर कदापि पुनः झुक नही जाना चाहिये। जो बचत हो उसमेंसे कुछ तो सुकृत दान में लगाना चाहिये और कुछ बचाना भी चाहिये ताकि समयपर काम आवे।

पढ़े और अन पढ़े बेरोज़गार भाईयोंके लिये धंधा।

(३) आजकल कितनेही कारणोंसे यह दशा हो रही है कि पढ़े लिखे और कभी कभी तो अच्छे पढ़े लिखे लेगभी नौकरीके लिये दर दर मारे फिरते हैं और इनको इस तरह फिरते देखकर लोग (अपनी जातिमें) पढ़ाने लिखानेमें रूचि भी घटाने लग गये हैं।

पढ़ना लिखना केवल पेट भराईके लिये नहीं है और न ऊंची। हुकमतके लिये ही है। पढ़ने लिखनेसे तो मनुष्यकी बुद्धि बढ़ सकती है, सुविधाएँ बढ़ सकती हैं, योग्यता बढ़ सकती है और अनपढ़की अपेक्षा प्रत्येक कार्यमें वह सफलता शीघ्र प्राप्त कर सकता है। धंधा नहीं मिलता है यह शिक्षाका दोष नहीं है किन्तु कुछ तो शिक्षितोंका दोष है और कुछ समयकी परिस्थितिका दोष है। शिक्षा प्राप्त करनेके कालमें उन शिक्षितोंमें यह दोष उत्पन्न हो जाता है कि उनको परिश्रमसे कुछ घृणा हो जाती है। इस-लिये अपढ़ मनुष्य वा कम पढ़ा मनुष्य परिश्रमके धंधेमें शीघ्र स्थान पा लेता है और वे उधर नज़र भी नहीं करते। यदि वे उसमें घुस जावे तो अधिक सफल होवे।

इसी तरह शिक्षित लोगोंमें शिक्षा प्राप्तिके कालमें एक यह भी दोष उत्पन्न हो जाता है कि वे कितनेही फैशनके खर्च आवश्यक समझने लग जाते हैं इसलिये बंधी हुई आय पसन्द करते हैं तथा जिसमें वह फैशन बनी रहे वह धंधा पसन्द करते हैं। इसलिये छोटे व्यापार, दुकान दारिया आदि उन्हें पसन्द नही आतीं और वे उसमें दाखिल नहीं होते। अनपढ़ वा कम पढ़े दाखिल हो जाते हैं यदि शिक्षित दाखिल होवें तो इसमें भी वे अधिक सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

प्रायः पढ़े लिखे लोगोंको यह भी आशा रहती है कि उन्हें कहीं अच्छी हुकमत का स्थान मिल जावेगा क्योंकि वे बहुत पढ़े लिखे हैं। आजकल पढ़े लिखे, हुकूमतके स्थानोंकी अपेक्षा कई गुण अधिक संख्यामें हैं इस कारण कोई भाग्य योगसेही मिल जावे तो जूदी बात

तो दबकर खर्चनेकी आवश्यकता ही क्या हैं ? इसपर भी यदि कोई कुछ कहता है या समझता है तो यह उसकी समझका फितूर है। यदि दबकर खर्च करेंगे तो लोग कह देंगे कि पासमें क्या है कर्ज़ लेकर किया है इसलिये खर्चसे बचना ही बुद्धिमानी है, यदि चाहो तो भोजन खर्च भी साधारण रखकर उसमें भी मितव्ययिता कर सकते हो। इससे आरोग्यता भी उत्तम रहेगी। पुष्टिके लिये खूब घूमना और वाटिकाओंकी ताजी हवा खाना तथा श्रम करना यह ही लाभदायक होगा। जितना खर्च घटा लोगे उतनी ही निश्चिन्तता बढ़ जावेगी और जितनी निश्चिन्तता बढ़ेगी उतने ही अधिक सुखी रहोगे। इसलिये यदि आय कम है तो पहिले व्यर्थ व्ययोंको त्याग कर मितव्ययी बननेकी कोशिश कीजियेगा।

(आ) एक ओरसे जिस तरह व्ययमें आपने बन पड़ती कमी खूब कर ली है उसी तरह इधर आय बढ़ानेकी ओर भी ध्यान दीजियेगा। यदि आपकी दुकानपर बिक्री नहीं होती है तो आप उसकी बढ़तीके लिये यह मत कीजिये कि उधार दे देकर अपनी बिक्री बढावें इससे तो अधिक संभावना है कि आपकी थोड़ीसी पुंजी सारीही उगाईमें फंस जावे और आपका व्यापार ही बन्द हो जावे। इसके प्रतिकूल आप ये उपाय कीजिये कि आप जरा परिश्रम करके अपनी वस्तुओंको विशेष साफ, सुथरी रखियेगा कि ग्राहक तुरन्त पसन्द कर लें, उनको मोहोल्लेमें भेज

भेजकर वा ले जा जाकर विक्रय करनेका भी प्रबंध कीजिये। मुनाफ़ा भी अन्य लोगोंकी अपेक्षा अधिक मत लीजियेगा तथा उन वस्तुओंको खरीदते समय कम से कम दामों में लाने का प्रयत्न कीजिए। जो वस्तु थोकमें खरीदी जाती है वह अधिक कम दामोंमें आती है पर कम खपत होनेवाली वस्तुओंको अधिक थोकमें खरीद कर पूंजी उनमें लगी रखना अनुचित है। आप अपना माप, तौल, निर्ख, वस्तुकी सफाई, ग्राहकके साथ नम्र और सभ्य व्यवहार इस दर्जेपर उत्तमताको पहुँचा दीजिये कि जनतामें आप प्रसिद्ध हो जावें। जनताका आप पर विश्वास बढ़ जावे और आप उस विश्वासको अधिकाधिक बढ़ावें। यह लोग प्रायः कहा करते हैं कि सत्य और नीतिसे व्यापारमें सफलता नहीं मिलती, इनमेंसे ५ प्रतिशत ने भी सत्य और न्यायको पालन करके नहीं देखा। वा थोड़े काल पश्चात् ही श्रद्धाहीन होकर सत्यसे भाग गये। पीतलकी अपेक्षा सुवर्ण देरसे प्राप्त होता है। यदि धैर्य रखे और प्राप्ति तक लगा रहे तो सब एक साथ वसूल हो जाता है।

इसी प्रकार सत्य पर श्रद्धा रखकर प्रयास करनेवाला अवश्य देरमें सफल होता है परन्तु असत्यवालेकी अपेक्षा उसका लाभ मात्रामें अधिक होता है वह द्रव्य अधिक काल तक ठहरता है उस द्रव्यसे सुख भी अधिक मिलता है और उस द्रव्यके दानमें उपयोग करनेका भी अधिक गुणफल होता है। उसके यह भव और पर भव दोनों सुधरते हैं।

है किन्तु उन स्थानोंको प्राप्त करना अवश्य भावी नहीं हैं इस कारण आशा निराशामें परिणत होनेकी अधिक संभावना है ।

यदि उच्च शिक्षित भाई परिश्रमसे, हल्के व्यापारी कहलानेसे, अनिश्चित आय न होनेसे और फैशनमें फर्क आजानेसे घबराना छोड़ दे और किसी भी प्रकारके धंधेमें प्रवेश करके उसमें रुचि लगा दें तो वे शनैः शनैः उसका अधिकाधिक अनुभव प्राप्त कर लेंगे और उन कम लिखे पढ़ोंसे जो बहुत वर्षोंसे उस कामको करते हैं आगे निकल जावेंगे और किसी दिन देशमें और विदेशोंमें दूर दूर प्रसिद्ध हो जावेंगे किन्तु यदि प्राथमिक हलकेपनसे घबरावेंगे तो कुछ नहीं कर सकेंगे ।

विदेशोंकी विविध वस्तुओंकी बड़ी बड़ी कंपनियां जो आज करोड़ो रुपयेंका व्यापार करती हैं प्रारम्भमें अत्यन्त छोटी छोटी दूकाने थीं किन्तु उद्योगी, साहसी, परिश्रमी लोगों द्वारा आज वे इस विशाल रूपको पहुँची हैं ।

हरएक नगरमें कुछ चन्द ऐसे व्यापारी उदाहरण स्वरूप पा जावेंगे जिन्होंने पांच पांच रुपयेकी पूँजीसे धन्धा प्रारम्भ किया है और हाथसे दूकानमें झाडू लगाया है, आज दिन लक्षाधिपति हो रहे हैं । जब साधारण पढ़े लिखोंने कर दिखाया तो आप तो कर सकें इसमें संदेह ही क्या है । पर परिश्रम, साहस, धैर्य, मितव्ययिता इत्यादिको अपनाना होगा । किन्तु जिन महाशयोंको थोड़ी आय ही चाहिये परन्तु नियमित (बंधी हुई) चाहिये, जिनको भाग्यपर वा भविष्यमें प्राप्त होनेवाली अत्यधिक आयसे शीघ्र प्राप्त होनेवाली थोड़ी आय ही पसन्द है वे क्या करें ।

(अ) यदि आप उच्च शिक्षित हैं तो आप एक वर्ष तक जैन धर्मके भाषा ग्रन्थोंका अध्ययन कीजिये जिसमें कुछ माह तक किसी जैन विद्वान् मुनिके पास रह कर उनसे उत्तम सहायता कठिन विषयोंमें प्राप्त कर लीजिये तथा कुछ माह तक किसीसे संस्कृतका अभ्यास कर लीजिये। इस प्रकार आपको अवश्य किसी स्वजातीय पाठशालामें जैन धर्म शीक्षकका स्थान प्राप्त हो जावेगा। ऐसे शिक्षकों और शिक्षाकी बहुत आवश्यकता है इस कार्यमें आपकी सच्चरित्रताकी भी अवश्य आवश्यकता है यदि वह आपमें नहीं है तब तो आप हमें क्षमा कीजिये। हम आपको कुछ भी सम्मति देनेमें असमर्थ हैं और यदि आपका अंतःकरण आपमें सच्चरित्रता स्वीकार करता है तो उक्त व्यवसायमें आपकी सच्चरित्रता अधिकाधिक बढ़ेगी आपका सन्मान भी बढ़ेगा, परिश्रम भी अधिक न होगा और जीवन भी सुधरेगा।

(आ) यदि आप सच्चरित्र हैं और अधिक शिक्षित भी नहीं हैं साधारणता शिक्षित हैं तो आप अपनी स्वजातीय पाठशालाओंमें निगाह स्थान स्थान पर कीजिये कहीं स्थान मिलही जावेगा। यदि अपना निवास स्थान नहीं छोड़ना चाहते तो वहीं पर बालकोंको शिक्षा देनेकी पाठशाला खोल लीजिये। पुस्तकोंसे, समाचार पत्रोंसे तथा किसी विद्वान्से अपनी शिक्षा भी बढ़ाते रहिये जिसके द्वारा नवीन नवीन शैलियोंसे बालकोंको शिक्षा दीजिये उसमें विशेषता ऐसी कीजिये कि अपना नाम पा जावें। यह भी धंधा सबसे बड़ा सन्मानयुक्त है। यदि कहीं पाठशालामें वहीं पश्चात् स्थान मिल जावे तो विद्यार्थियोंका योग्य प्रबंध कर उधर चले जाईये पर अपनी सच्चरित्रता उत्तम रखियेगा।

(इ) जो बहुत कम पढ़े लिखे हैं उनको मुनासिब है कि अपने नगरमें किसी भी प्रकार का छोटा धंधा कर लें। फलविक्रय का धंधा कर सकते हैं, शाक विक्रय का धंधा कर सकते । (जयपुरमें फल विक्रय का धंधा दिगंबर जैन लोगही करते हैं) किसी भी प्रकारका धंधा कर सकते हैं जो थोड़ी पूंजीसे हो सकता है और शनैः शनैः उसमें तरक्की कर सकते हैं किन्तु उन्हें भी पोज़ीशनका यदि खयाल है तो कुछ दिवस शिक्षा अधिक बढ़ाकर उपरोक्त कार्यके लिये उपयुक्त बनें अन्यथा किसी दूकानदारके यहां नौकरी करके उस धंधेमें अनुभव बढ़ानेमें लगे रहें जिससे शनैः शनैः उनमें योग्यता बढ़ जावेगी, उनकी प्रामाणिकता बढ़ जावेगी और कदर भी हो जावेगी।

(ई) ग्रामनिवासी भाई जो शिक्षित हों उनके लिये तो शिक्षक का धंधा अधिक योग्य है। अथवा ग्रामके शुद्ध घृत आदि को नज़-दीकके नगरोंमें पहुंचाना और प्रामाणिकता प्राप्त कर व्यापार बढ़ाना उचित है और कम पढ़े लिखे भाईयोंके लिये ग्राममें खेतीका और कताई बुनाईका काम अत्यन्त उपयुक्त है यदि वे इनको बुरा समझना छोड़ दें।

यह धंधा जितना अन्य धंधोंकी अपेक्षा स्वाभाविक और नीतियुक्त है उतना कोई धंधा नहीं है। यह धंधा जितना मनुष्य जाति तथा पशु जातिका (यदि पशुओंके साथ विवेकपूर्वक व्यवहार किया जावे) उपकारी और आवश्यक है उतना संसारमें कोई धंधा नहीं है। यही धंधा जगत्का पेट भरनेवाला और अंग ढकनेवाला है। इस धंधेमें पशु पालन तो सम्मिलित ही है। इस धंधेमें आरोग्यता तो वगैर बुलाये ही आ जाती है। आज जो इस धंधेके करनेवाले अन्य धंधे

करनेवालोंकी अपेक्षा कम सुखी हैं वा कहें अधिक दुःखी हैं उसका कारण उनकी निरक्षरता (अनपढ़पना) व्यर्थ व्यसनादि तथा मोसर व अन्य जीमणोंके व्यय और राज्यकी अनीति है अन्यथा वह धंधा तो मनुष्यको मनुष्यत्वमें रखनेवाला है ।

हम कभी कभी उसमें हिंसा देखकर उससे घृणा करते हैं किन्तु अन्य धंधेमें अधिक पाप करते हुवे घृणा नहीं करते । आवश्यक हिंसासे बचकर अनावश्यक हिंसा करनेको तैयार रहते हैं । यही एक धंधा है जिसमें चाहे जितने मनुष्य लग सकते हैं यहीं एक धंधा है जिसमें पहिला सुख (निरोगी काया) प्राप्त हो सकता है । इसी धंधेसे हम अन्नदाता बन सकते हैं, अनेक पापोंसे, धोखे बाजियोंसे, हृदयको काला करनेसे और भूखे मरनेसे बच सकते हैं ।

निर्धन अयोग्योंकी उदर पूर्ति ।

(४) जो किसी भी प्रकारसे अपनी उदरपूर्ति नहीं कर सकते ऐसे अशक्त पुरुष या विधवाएँ या अनाथ बच्चे जिनके लिये उदर-पूर्तिका साधन कुछ भी पास में नहीं है अपनी जातिमें भी अनेक देखे जाते हैं ।

यदि कोई पुरुष काम करने के योग्य है किन्तु प्रमादसे या अज्ञान वश कुछ काम नहीं करता, उनके लिये तो सिवाय इसके कोई उपाय नहीं कि उनको प्रमाद और अज्ञान छोड़नेको कहा जावे । यदि वे मान जावें और काम करना स्वीकार करें तो उनको काम दिलानेका प्रयत्न किया जावे ।

यदि कोई पुरुष वृद्धावस्था से अशक्त है वा अपंग है वा कोई स्त्री वृद्ध है, अशक्त है वा अपंग है और काम करनेके योग्य नहीं है

और उदरपूर्ति का साधन नहीं है तो सबसे उत्तम तो यह है कि (प्रथम तो) उनके संबंधी, वा (द्वितीय) जाति के उदार धनिक अथवा (तृतीय) अन्य उदार स्वजातीय बन्धु उनको अपने घरमें रख कर आश्रय देवें, उनको भोजन वस्त्र देवें और अनाथ बालकोंको भी पढ़ावें ।

यदि निजगृह में नहीं रख सकें तो पुरुषों वा स्त्रियों को भोजन, वस्त्र, घरपर ही भिजवा दें और बालकोंको कहीं स्वजातीय या अन्य अनाथालय, छात्रालय, गुरुकुल आदिमें प्रवेश करादें, व्यय यदि होवे तो या तो स्वयं देवें वा अन्य के द्वारा प्रबंध करा देवें ।

यदि कोई स्त्री सधवा है और कामकाज करनेके योग्य है परन्तु पति अशक्त है कमा नहीं सकता, ऐसी दशामें उस स्त्रीके पास कुछ तो काम पहुँचनेकी आवश्यकता है जिसको करके वह कुछ द्रव्य उपार्जन कर सके और कुछ संबंधियोंकी, उदार गृहस्थोंकी गुप्त सहायता उसको मिलना चाहिये ।

यदि कोई स्त्री विधवा है काम करनेके योग्य है उम्र भी नौजवान है यदि उसके पीहरवाले होवें तो उनका कर्तव्य है कि वे उसे अपने पास रखें उससे हाथका श्रम भी करा सकते हैं और उसको पालन करें । यदि उसकी चितवृत्ति विषय वासनासे विरक्त देखें तब तो उसको धर्मसंबंधी अध्ययनमें लगा दें । उसकी निगाह ज़रा अच्छी तरह रखते रहें । और यदि उसकी वृत्ति विरक्त न देखें तो उसको योग्य वर के साथ पुनर्विवाह कर देवें । जब तक योग्य वर उसकी स्वीकृतिके अनुसार न मिले उसको पालन करें । यदि पीहरमें कोई नहीं हो और उसकी चित्तवृत्ति विरक्तता की

ओर नहीं हो तो स्वजातिबन्धुओंका भी कर्तव्य है कि उत्तम वर के साथ उसका पुनर्विवाह करा देवें। और यदि पीहरमें वा सुसरालमें कोई अन्य कुटुंबी नहीं है और वह विरक्तता को प्राप्त कर चुकी है किन्तु साध्वी होना और तदर्थ गृहत्याग देनेकी उसकी इच्छा नहीं है और अपने श्रमसे जीवन व्यतीत करना चाहती है तो उसको जातिके किसी गृहस्थ के घर जिसमें स्त्रिय भी हों रह जाना और उसका कामकाज करके उदरपूर्ति करना उत्तम है। यदि कोई स्वजातीय रखनेवाला नहीं हो तो उसको जातिवालोंसे दूर अकेली रहना कदापि उचित नहीं है। जातिके घरों के बीचमें रहना चाहिये और जातिवालों का परम कर्तव्य है कि वे उसको श्रम द्वारा उदर पूर्ति करने में तथा आवश्यक्ता पड़ जावे और उसको स्वीकार हो तो सहायता भी देना उचित है और परमावश्यक है।

अनाथ बालकों का द्रव्य यदि थोड़ा भी हो तो उसको किन्हीं योग्य सज्जन के पास जाति के लोगों द्वारा जमा करा दिया जाना चाहिये जो उन्हें होशियार हो जाने पर मिल जावे और उसकी कमी न हो जावे।

दुर्बलों और रोगियों के लिये उपाय।

(५) हमारी जातिमें अनेक भाई ऐसे मिलेंगे जो दुर्बलता से वा अन्य रोगोंसे सदा कष्ट पाते रहते हैं इनकी इस दशा का कारण है (१) अस्वभाविक जीवन (२) अज्ञानता और (३) असावधानी।

हमारे समाज का जीवन ही सिर्फ प्रायः मानसिक श्रमसे चलता

है । लेनदेन करना, लिखा पढ़ी करना, वाणिज्य व्यापार करना इत्यादिसे, मस्तिष्क से काम करते रहने से चाहे मस्तिष्क शक्ति बढ़ जाती है किन्तु शारीरिक श्रम नहीं करने से शारीरिक शक्ति में हम हीन रह जाते हैं । शरीर को भोजन देते रहना किन्तु उससे श्रम नहीं कराना वा भोजन भी ऐसा देना जो पचने में ठीक नहीं हो और बल वर्द्धक भी नहीं हो किन्तु दिमाग से केवल श्रम करते रहना भोजन करते रहना और इसी तरह जीवन व्यतीत करना यही अस्व-भाविक जीवन है और इसी कारण हम शरीर सुख से प्रायः हीन रहते हैं ।

द्वितीय हम अज्ञानतावश आरोग्यके नियमोंको नहीं जानते और अस्वच्छ हवामें तंग मकानोंमें और अंधेरे कमरोंमें प्रायः रहते हैं । भोजन भी करने बैठते हैं तब स्वादसे काम रखते है और कुछ ध्यान नहीं रखते । सफाई जो शरीरकी, वस्त्रोंकी और मकानोंकी बड़ी आवश्यक है उसका कुछ विचार नहीं रखते तथा किन किन कारणोंसे हमको कोई रोग लग सकता है उसकी सावधानी नहीं रखते । आरोग्यता और शरीरके बलके लिये निम्न लिखित उपाय ध्यानमें रखने योग्य हैं ।

(क) प्रातःकाल सूर्योदयसे १ घंटे पूर्व अवश्य जाग कर उठ बैठना चाहिये ।

(ख) प्रातःकालकी वायु सेवनके लिये नगर बाहर जहां उत्तम स्वच्छ वायु हो जाकर घूमना फिरना चाहिये । कमसे कम २ मील तो घूमना ही चाहिये । हो सके तो जंगलमें ही शौच क्रिया करनी चाहिये ।

(ग) यथा संभव नित्य स्वच्छ जलसे स्नान भी करना चाहिये ।

(घ) कुछ किसी प्रकारका व्यायाम जैसे दंड, बैठक, मुकदर हिलाना, शीर्षासन करना इत्यादि भी स्नानके पश्चात् करना चाहिये ।

(ङ) भोजन किसीके साथ एक थालीमें (वा झूठा पानी पीना) नहीं करना चाहिये । भोजनमें मीर्च, मसाले, खटाई (नीबूको छोड़कर) मिठाई इत्यादि जितनी काममें कम लीजावे उतना ही अच्छा है । भोजनकी वस्तुएँ आरोग्य और बलवर्धक होना चाहिये । कुछ ताजा फल भी होना चाहिये । मास, मदिरा, प्याज, लहसन, जमीकन्द इत्यादि पाचनमें भारी हैं तथा तमोगुण उत्पन्न कर्ता हैं । इनका उपयोग आरोग्यके लिये बहुत हानिकारक है इसलिये इनको काममें नहीं लिया जाना चाहिये, भोजन थोड़ा थोड़ा किया जाना अधिक उत्तम है एकदम बहुत ज्यादा पेट भरना भी दुखदाई है । भोजनके पश्चात् मूँगका पापड़ यदि बगैर चुपड़ा हुवा हो तो पाचनमें सहायक है, भोजन कर चुके पश्चात् ५ से १० मिनिट तक आराम करना बड़ा लाभदायक है । भोजन रात्रिमें करना ख़तरनाक है उससे भोजनमें जन्तुओंके आजानेका तथा अपच हो जानेका भी बड़ा भय रहता है । भोजनमें दूधका, ज़ौ की रोटीका उपयोग भी बड़ा लाभदायक है । आटा यदि हाथकी चक्कीका पिसा हुआ होवे तथा बगैर छना हुवा होवे तो अधिक गुणकारी होता है । भोजनके बीचमें ही केवल एक बार

कुछ जल पीवे तो गुणकारी है। भोजनके पूर्व अधिक जल पी लेना विशेष हानिकारक है, पश्चात् भी अधिक नहीं पीना चाहिये। एक घंटे बाद पीना अधिक उत्तम है। भोजनकी प्रत्येक वस्तु जितनी साफ की जाकर बनाई गई है, जितनी स्वच्छताके साथ बनाई गई है और जितनी अच्छी तरह चबाचबा कर उदरमें पहुँचाई जाती है उतनी ही अधिक वह गुणकारी बन जाती है। जल भी स्वच्छ छाना हुआ और साफ बर्तनमें लेकर पीना चाहिये।

(च) किसी प्रकारका मनोरंजन जिससे चित्त प्रफुल्लित हो बड़ा लाभकारी है, जैसे मित्रोंसे सभ्य हंसी, गायन सुनना, वाजिन्त्र सुनना, स्वयं गाना, बजाना इत्यादि। किन्तु चरित्रको हानिकारक नहीं होना चाहिये।

(छ) चिन्ता करनेकी व्यर्थ आदत नहीं रखना चाहिये। चिंतासे रक्त सूख जाता है। जो होवे वही होनहार था और जो होनहार होगा वही होगा। हमने जो कुछ किया कर्तव्य जानकर किया, करते हैं और करेंगे, जो भी होना हो होवे। चिंता द्वारा हम क्या पा सकते हैं कुछ नहीं।

(ज) पर स्त्री वा वेश्यादिके गमनका तो सर्वथा त्याग भाव रखना ही चाहिये किन्तु मनमें सदा काम भाव, कामेच्छा, काम चिंतवन तथा कामविषयक मित्रोंमें वार्तालाप, कामविकारयुक्त प्रेमकी पुस्तकें, उपन्यास पढना, ऐसे सिनेमा वा नाटक तमाशे देखना तथा वेश्या नृत्यादि

देखना जो कामेच्छा उत्पन्न करता है, शरीरके राजा वीर्य के लिये अत्यन्त हानिकारक हैं । इसलिये इन सब हानिकारक कारणोंके त्याग ही रखनेकी चेष्टा रखना चाहिये ।

(झ) अपनी पत्नी (स्त्री) के साथ भी यथा संभव मैथुन सेवन कम ही करते रहनेकी चेष्टा रखना चाहिये जिससे शरीरकी शक्ति नहीं घटे और शक्ति घटनेपर असानीसे रोगग्रस्त न हो । मैथुन सेवनके पूर्व या पश्चात् एक या डेढ़ सेर दूध ३–४ वारमें अवश्य पीना उचित है जिससे शक्ति कम घटेगी ।

(ञ) चितको सदा प्रसन्न रखनेकी, द्वेषभाव, वैरभाव, घृणाभाव और क्रोध स्वभावसे सदा बचते रहनेकी और प्रेमभावसे प्रफुल्लित रहनेसे शरीरकी आरोग्यता और बलको बड़ा लाभ पहुँचता है ।

(ट) शरीरकी, वस्त्रोंकी और मकानकी सफाईके लियै भी सदा ध्यान रखना चाहिये । द्रव्यसे वा निज परिश्रमसे सफाई अवश्य रखना चाहिये । अपने मकानमें तथा मोहल्लेमें भी सफाईकी अपने निमित्त जरूरत है, वहां की गंदगी अपनेको हानिकर है ।

(ठ) नित्य नियमित तौरसे दस्त आवे तो आरोग्य उत्तम और कुछ असाधारणता हो तो उसको खरावी समझना चाहिये, जिसको भोजनके वस्तुओंके परिवर्तनसे दुरुस्त कर लेना

चाहिये । साधारण रोगोंपर औषधि ले लेकर औषधियोंका आदी नहीं बन जाना चाहिये ।

यदि रोग हो ही जावे तो ऐसे चिकित्सक से इलाज़ कराना चाहिये जो अपने इल्म में होशियार हो और सज्जन हो। जिसके पास इलाज़ कराना हरतरह से सुविधा जनक भी हो। वह चाहे वैद्य हो वा हकीम हो अथवा डाक्टर हो। जबतक इलाज़ रहे उस चिकित्सक में और उसकी दवा में अधिक से अधिक विश्वास रखना चाहिये। उसके कहे अनुसार ही सब काम करना चाहिये, पर हेज रखना चाहिये। इस काम में खर्च में अधिक की आवश्यकता पड़ जावे तो ऋण लेकर के भी करना अनुचित नहीं है। इलाज़ करानेमें तन, मन, धन लगा देना जरूरी है पर जैसा कि प्रायः होता है जनता को अपनी प्रतिष्ठा बतलाने के लिये अनेक चिकित्सकों को बदलना, बहुत बड़े २ डाक्टरों को केवल शोभा के नामपर बुलाना किन्तु घबराहट के साथ इलाज कराना यह सब अनुचित है। "शुभ ही होगा" ऐसी आशा रखते हुए शान्तिपूर्वक विवेकपूर्वक इलाज कराना ही कर्तव्य और लाभदायक हैं।

(ड) रोगी के कफ़, श्लेष्य, मल, मूत्रादि को उसपर खूब गहरी राख या मिट्टी डालकर वा कोई दवा डालकर उठाकर उचित स्थान पर पहुँचा देना चाहिये तथा हर प्रकारकी सावधानी रोगी के साथ खाने में, पीनेमें रखना चाहिये ताकि रोग अधिक नहीं फैलने पावे। रोगी

का इलाज यथा संभव शफाखानेमें ले जाकर नहीं कराना चाहिये। यदि ऐसी आवश्यकता ही पड़े तो कमसे कम एक व्यक्ति रोगी के घरका उसके पास हर समय अवश्य रहना चाहिये।

इत्यादि जो उपरोक्त हिदायते हैं उनसे आरोग्यकी प्राप्तिमें, रक्षामें और शरीरमें शक्ति प्राप्तिमें बहुत सहायता मिल सकती है।

गुप्त पाप और उनका निवारण।

(६) हमारी जातिमें दो पाप ऐसे बढ़े हैं कि इनका निवारण अत्यन्त आवश्यक है। प्रथम पाप है कन्या विक्रय और दूसरा है गुप्त व्यभिचार। पाप करते समय तो गुप्त ही किये जाते हैं किन्तु वे शीघ्र वा कुछ विलम्बसे प्रगट हुवे बगैर नहीं रहते, थोड़े ही गुप्त रहने पाते हैं।

कन्या विक्रय जहां अत्यधिक प्रचलित हो गया है वहां तो इस को रीति कह करके ही द्रव्य ले लेते हैं प्रगट ले लेते हैं, किन्तु ऐसे स्थान कम हैं बाकी तो चाहे दुनियां सब जान जाती है देने वाला भी कह देता है और प्रगट हो ही जाता है। कितनी ही जगहके तो ऐसे भी निर्लज्ज होते हैं कि प्रथम तो गुप्त लेही लेते हैं और फिर खास तोरणके समय पर भी अड़ जाते हैं। कन्याका पिता सौ, दो सौ उस समय रखवा लेता है। विवाहेच्छुक अविवाहित तो जानेसे रहा आखिर दे करके काम निकालता है ये लेनेवाले कहते हैं कि हमारे ग्रामकी रीति भाँति करनेको द्रव्य चाहिये इसलिये लेना पड़ता है। जहां गुप्त लिया जाता है वहां तो सवाल उठानेका अधिकारही

कैसे ? इस कन्याविक्रयके द्वारा द्रव्य लेनेवालेंमें तो नीति अनीतिका विचार पहले ही उठ गया होता है और आगे जाकरके तो वह यहां तक बढ़ जाता है कि यदि उसके और कन्या होवे तो वह द्रव्यके लालचमें ८० वर्ष के बूढ़े तकको देनेको राज़ी हो जाता है। उधर रुपया देनेवाला यह समझता है कि यह इतना द्रव्य व्यय करके लाई हुई है। सासु भी, ससूर भी और पति भी मौके बेमौके उसपर इसी ताने के साथ हाथ तक उठाते हैं, उसके माँ बापोंको गालियां तक भी दे देते हैं। उससे खूब शक्ति उपरान्त काम लेते हैं, बहु बेमौत चित्तमें सदा मरती रहती है और आयु भी कम ही पाती है। वह इस प्रकारका सासुका वर्ताव यदि जीवित्त रह जावे तो अपनी वधूके साथ भी करती है और खूब बदला चुकाती है। उधर कन्याके माता पिता उस अनीति द्रव्य से सुख तो पाते नहीं, अलबत्ता अपने बाप दादोंके मोसर नुकते करके अपने माथेका बोझा हलका कर लेते हैं। इस अनीति के कारण ये लोग प्रायः शारीरिक कष्ट तथा चोरी हो जानेका कष्ट तथा घाटा लग जानेका कष्ट भी भोगते हैं। पर सब कुछ भोग कर भी लालचके वश तथा सिर का बोझा हलका करनेकी आफतसे रक्षा के लिये उस कष्ट और हानिसे भी कुछ शिक्षा ग्रहण नहीं करते। कई लोग इनको मुंहपर ही सब सुना देते हैं। पर सब पी जाते हैं या अल्प या अधिक बकझक कर लड़ लड़ा कर बात ठंडी करते हैं। परशिक्षा ग्रहण कर मनमें पछताना तो इनसे हर्गिज नहीं हो सकता। इस विषयपर कॉन्फरेंसो में बहुत भाषण हुवे, साधु मुनियों ने भी कई स्थानों पर सौगन कराये हैं परन्तु इनसे एक अधेले के बराबर भी कन्या विक्रय बन्द नहीं हुआ। इसको बन्द कराने के दो

उपाय हैं यदि ये किये जा सकें तो बन्द हो सकता है। प्रथम है विधवा विवाह का प्रचार करना और दूसरा है मोसरों का बन्द करना।

विधवाविवाह का प्रचार हो जानेसे नगरों वालों को नगर में ही पुनर्विवाह के लिये विधवायें प्राप्त हो जावेंगी। तथा ग्रामों में भी विधवाएँ विधुरोंके साथ तथा कुँआरे अधिक वय वालोंके साथ पुनर्विवाह करने लगेंगी तब इनको द्रव्य दे करके कन्या लेनेवाला आवेगा कौन ? अब तो कन्या का घरमें से खर्च घटाने की ओर चिन्ता बढ़ेगी और भले आदमी बन कर किसी भी नौजवान को कन्या सीधे हाथों से विवाह देंगे। उधर मोसर बन्दका आन्दोलन भी ये मान लेंगे क्योंकि कन्या का द्रव्य तो प्राप्त हुआ नहीं मोसर करे कहां से ?

जो महाशय कहते हैं कि मोसर बन्द हो जावे तो उनका खर्च कम हो जावे और कन्या विक्रय फिर वे नहीं करेंगे। यह उनका भ्रम मात्र है। प्रथम तो मोसर बन्द करना ही वे क्यों स्वीकार करें क्योंकि कन्या विक्रय की आय जारी है, द्वितीय लोभी आदमी क्यों लोभ छोड़ने लगा वह तो तब ही छोड़े जब किधर से भी लोभ की पूर्ति न हो। इसलिये केवल मोसर बन्द कराने से कन्या विक्रय नहीं रूक सकता। किन्तु विधवा विवाह प्रचलित करने से ही कन्या विक्रय रूक सक्ता है और कन्या विक्रय रूकने से ही मोसर बन्द हो सकते है।

द्वितीय गुप्त पाप वह गुप्त व्यभिचार है जो कुआरों को और विधुर पुरुषों को पत्नी नहीं मिलने से तथा विधवाओं को व्यभिचारियों के हथकंडो में फंसने से तथा काम वासना को जीत नहीं सकने से बाध्य हो करके करना पड़ता है।

स्त्रियों की जन संख्या पुरुषों से अधिक तो है नहीं जो उनको एक से अधिक प्राप्त हो सके किन्तु द्रव्यवानों को अधिक स्त्रियां कुंआरी विवाह के लिए मिल ही जाती हैं इस कारण उतनों ही को कुंआरा अवश्य रहना ही पड़ता है तथा सब विधुरों को भी स्त्रियां मिलती नहीं ह इसलिये अधिकांश विधुर स्त्री के भूखे रह ही जाते हैं ।

अब इन कुआरों और विधुरोंमें थोड़े ही कामवासना जीतते हैं । शेष कोई तो स्वजातीयसे तो कोई अन्य जातीयसे, कोई सधवासे तो कोई विधवासे, कोई वेश्यासे तो कोई प्रकृति विरुद्ध कृत्योंसे अपनी कामवासना की पूर्ति करते हैं, कोई दरोगनको तो कोई ब्राह्मणीको तो कोई अन्य जातिकी स्त्रीको प्रगटतया घरमें रख लेते हैं उनसे व्यभिचार करते हैं । कितनेही हमारे माननीय सुधारक भी उनका समर्थन करते हैं कि ये यदि वृद्ध विवाह करते या बेजोड़ विवाह करते तो कैसा बुरा रहता इससे तो एक पासवान घरमें रखली यही अच्छा है । बस अन्य जातीय विधवाओंकी कामतृप्ति और क्षुधातृप्ति सब होने लगी । अपनी जातिकी विधवाओंपर या तो इन लोगोंका ही हाथ पड़ जाता है उनको कुमार्गमें लगा लेते हैं पर घरमें रखे तो संसार निन्दा करे इसलिये इन विधवाओंकी तो क्षुधा तृप्ति भी नहीं हो सकती ।

स्वजातीय स्त्रियोंमें अब भी प्राचीन सदाचारके कुछ अंश मौजूद हैं इसलिये बिचारी जबरदस्ती ही अपनी कामवासनाओंको दबाती है किन्तु जब सधवा स्त्रियोंके प्रेमरसके गीत तथा होलीके.........................के अश्लील गायन सुनती हैं, वेश्याओं के गायन की ध्वनी जब कानोंमें पड़ जाती हैं, कहीं से कुछ मीठी वाणी मधुर रसके साथ उसके हृदय तक स्पर्श कर

जाती है तो बिचारी फंसही जाती है। कभी ससुर के साथ, कभी देवर या जेठ के साथ, कभी पड़ोसी के साथ, कभी किसी संबंधी के साथ, कभी नौकर के साथ तो कभी ब्राह्मण के साथ। अन्तमें वह व्यभिचार प्रगट भी हो जाता है। गर्भ गिरानेका पाप करनेकी, भ्रूण हत्या करनेकी अथवा किसी समाज आश्रममें जाकर बालकको जन्म देकर अनाथालयमें छोड़ कर अपने घर आनेकी वा बाहर जाकर कहीं रहनेकी अनेक नौबतें आती हैं।

इन सब व्यभिचारोंको रोकनेका एक मात्र उपाय "विधवा-विवाह" है। कोई उपदेश काम नहीं कर सकता। कुआरोंकी, विधुरोंकी और विधवाओंकी कामवासना दूर नहीं कर सकते। यदि कर सकते हों तो सबको बालब्रह्मचारी आजन्म रखनेका ही प्रयास क्यों नहीं किया जावे।

यदि स्त्रीके लिये एक पुरुष और पुरुषके लिये एक स्त्री नियत करके (विवाह करके) उनसे हम सदाचारकी आशा करें उनसे शनैः ब्रह्मचर्य पालन करानेकी आशा करें तो आशा सफल हो सकती है किन्तु यदि उनको अविवाहित रख कर उनसे सदाचारकी (जबर्दस्ती) आशा करे तो दुराशा मात्र है।

प्रगट अनीतियाँ और उपाय।

(७) गुप्त व्यभिचार तथा कन्या विक्रय तो गुप्त रीतिसे (चोरीसे) होते हैं किन्तु कितने ही अनीति कार्य प्रगटतया होते हैं उनको जाति हर्षके साथ करती है।

(अ) बेजोड़ और वृद्ध विवाह जाति में सर्वत्र होते हैं। कन्या की अपेक्षा ३-४ गुणी आयुके वरके साथ कन्या को विवाह

दी जाती है। कन्या १०-१२ वर्षकी है तो वर ३०-४०-५० वर्ष तक का है। किसी प्रकारका कोई हर्ज नहीं समझा जाता। इसमें कुछ सुधारक लोग अलबत्ता प्रायः तब जबकि वर की आयु ४० वर्ष से अधिक होती है तो चिल्लाते हैं उससे असहयोग करते हैं किन्तु कुछ नतीजा नहीं निकलता। अलबत्ता कहीं वर की आयु ६०-७० के करीब होती है तो जातिके पंचों की नींद उखड़ भी जाती है। परन्तु इतनी आयु में विवाह करने वाले धनवान ही होते इसलिये किसी भी तरह धन खर्च करके वा दबावसे पंचोंको मना लेते हैं वा कहीं और कुछ ढंग से काम निकाल लेते हैं। क्या इन बेजोड़ विवाहों का होना अनीति नहीं हैं? बाप दादो के बराबरकी उम्रवालों के साथ कन्याका विवाह होता है जिससे न तो उसकी उम्र में हानेके कारण वह अपने हृदय से हृदय पूर्वक प्रेम रख सकती है! केवल एक उपभोग की वस्तु मात्र कुछ वर्ष के लिये रहती है किन्तु जब कुछ ही वर्षों पश्चात् पति देवकी तो इन्द्रियाँ अशक्त हो जाती हैं। अथवा पति देवका स्वर्ग धाम! हो जाता है और उसकी तो यौवनावस्थाका पूर्ण उदयकाल रहता है तो किसी न किसी विलासीसे दुराचारमें प्रवृत्त हो ही जाती है। इस प्रथाको रोकनेका भी रामबाण उपाय पुनर्विवाह ही है। तथा कुमारी कन्याओं के साथ विधुर उम्रवालोंके विवाहोंको रोकना है और यदि नहीं रुके तो कुमार युवकोंको भी बालविधवाओं के साथ विवाह करानेको उत्तेजन देना है। तब ही बेजोड़ विवाह बन्द हो सकते हैं। यह आशा करना कि विधुर लोगोंके विवाह रोकनेकी कोशिससे काम चल जावे बिलकुल व्यर्थ है। अत्यधिक उम्रवाले कुछ लोग चाहे

मान भी जावें किन्तु साधारण विधुर लोग कभी नहीं मानेंगे। यदि उनको पुनर्विवाहकी आज्ञा ही होगी तो वे मान लेंगे इसलिये इस दुराचारका उपाय भी विधवाविवाहका प्रचार ही है।

(आ) वेश्यानृत्य भी एक महा अनीति ही है। विवाह या अन्य हर्ष अवसरपर वेश्याको बुलाना और सबके सामने उसका गाना, नाचना कितना असभ्य कार्य है। सब उसको कामभावकी दृष्टिसे ही देखते हैं, कामस्वरूप तो वेश्याका पहनाव, निर्लज्जता, नखरा, बात-चीत, गायन, आदि होते ही हैं किन्तु जब नाचने लगती है तब तो उल्लूकी लकड़ी फेरनेकी तरह सबको अपनी ओर ऐसा आकर्षित करती है कि सबके दिलमें दुराचारकी भावनाएँ जागृत हो जाती हैं। कई युवक शनैः शनैः उनके घर जाना आरंभ करते हैं, दुराचारमें प्रवृत्त होते हैं और आरोग्यता तथा द्रव्य खोकर फिर उम्रभर पछताया करते हैं। जो युवान विधवाऐं और सधवाऐं इस वेश्या गायन को सुनती हैं जोकि कितनी ही बार तो विवाहोंमें अश्लील (फाटा) गीत भी गाये जाते हैं इससे उनके चरित्र हीन भी हो जाते हैं। इस प्रगट अनीतिका प्रचार ब्रिटिश भारतमें तो शिक्षा प्रचारसे तथा अन्य कई कारणोंसे बंद या कम हुवा है किन्तु रियासतोंमें तो अभी प्रचलित ही है। इसको बन्द करानेका उद्योग शिक्षितोंसे ऐसे विवाहोंसे असहयोग करा कर तथा धर्म गुरुओंके व्याख्यानोंमें इसकी अनीतिका उपदेश दिलानेसे ही हो सकता है।

(इ) प्रेममय व अश्लील गायन भी हम लोगोंमें गाये जाते हैं। पुरुष तो होलीके दिनोंमें ऐसे गीत गाते हैं और स्त्रिया विवाहोंमें, चौमासोंमें, जंवाई आवे वा संबंधी (व्याई) आवे तथा अन्य मौकोंमें

गाते हैं। इनके कारण कुमारी कन्याओंमें कामभाव फैलते हैं, सधवाओंके विचार खराब होते हैं, विधवाओंकी मनोभावनाएँ कामेच्छामें परिणत होती हैं। पुरुषोंके और नवयुवकोंके विचारोंमें और कार्यमें विकार उत्पन्न होता है। सुननेवाले अन्य पड़ोसियेंमें अपनी असभ्यता प्रगट होती है। परन्तु आंख मीच करके ये प्रेम (काम) भाव के, दुराचार के और अश्लीलता के गायन गाये जाते हैं ! इनका विरोध बहुत कम अभी प्रारंभ हुआ है। इस विषय में धर्मगुरुओं से भी सहायता प्राप्त हो सक्ती है। सुधारकोंको इनका खूब विरोध करना चाहिये। उन गीतों में कितने ही सभ्य उत्तम गीत भी हैं जो गावें और मनोरंजन करें। पर असभ्य गीत तो कदापि नहीं गाये जाने चाहिये जो हमारे चरित्रके भ्रष्ट करनेवाले हैं।

(ई) वर विक्रय भी हमारी जाति में होता है। अर्थात् जिस घरमें वर अच्छा हो धन अधिक हो वा आय अधिक हो वा वर शिक्षित हो तो वह डोरा लेता है। जो सबसे अधिक देता है उसी की कन्या ली जाती है। डोरा विवाह से पूर्व ले लिया जाता है तब विवाह होता है। पांच पांच हजार के डोरे (नगद द्रव्य) तक ले लिये जाते हैं ! क्या यह अनिती नहीं हैं ? क्या यह सौदा नहीं है ? प्रेम से यदि कुछ वस्तु परस्पर देवें लेवें तो कुछ बुराई नहीं है किन्तु वर की योग्यता के कारण, घर की योग्यताके कारण और अपने लालच के कारण अधिक द्रव्य प्राप्त करने की आशा करना और अधिक से अधिक मिलने पर वर की सगाई स्वीकार करना वर विक्रय है, प्रगट सौदा है और इसका उपाय यही है जनता में ऐसे कृत्यों की निन्दा होवे, और ऐसे करनेवालोंकी जातिमें खूब आलोचना होवे ताकि यह

रुके और कन्याओंके लिये योग्य वर मिलनेमें कभी वही आपदाएं अपने यहां भी नहीं आवें जो पारसी लोगोंमें आ रही हैं कि कन्याएँ बड़ी बड़ी हो जाती हैं परन्तु द्रव्य यथेष्ट मिले बगैर उनको कोई नहीं विवाहता।

(उ) परदाभी एक प्रकारकी अनीति ही है क्योंकि हम स्वयं तो स्वतंत्र घूमते हैं और स्त्रियोंमें अविश्वास रख कर उनको स्वतंत्र घूमने देना पसन्द नहीं करते। इस रोकके (चाहे कैसे ही चली हो) कारण वे भी इतनी अबला हो गई हैं कि वे स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकती। इसके अतिरिक्त हमने उनको बढ़िया बढ़िया वस्त्र और आभूषणोंसे सुसज्जित कर दिया है ताकि उनको अपनी रक्षा के अतिरिक्त इन आभूषणोंकी रक्षाकी भी चिन्ता करनी पड़े। वे तो पहले ही अपनी ही रक्षा करनेको अयोग्य थी और एक ओर इस रक्षाका बोझ उनके ऊपर हमने लाद दिया, अब तो वे बिलकुल ही अपनी रक्षा करनेके अयोग्य हो गई किन्तु कहीं शादी, गमीके मौकोंपर जाने आनेकी आवश्यकता पर क्या करें? रक्षाके निमित्त कोई १ कोई २ कोई ४ कोई ५ स्त्रिये साथ भेजने लगे तब उनका जाना आना होने लगा। मकानके भीतर चौबीसो घंटे रहो। घूमना फिरना, हवाखोरी करना सब केवल हमारे लिये बड़ा लाभकारी है, आरोग्यता के लिये बड़ा उपकारी है। परन्तु उनके लिये तो महा अनर्थकारी है! उनको तो अपना मुँह भी सदा ढका रखना चाहिये! खुला रहे तो नाक में घरकी अशुद्ध हवा घुस जावे इसलिये अन्य स्त्रियों तक के सन्मुख उनको घूँवट अवश्य मुखपर रखना चाहिये! अगर कभी हमने मुख उघाड़ा देख

लिया तो हमें भय है कि उनका मुख देखकर हमारी कामाग्नि चेत जावे और हम यदि कुछ अनीति (व्यभिचार) कर बैठें तो उनका ही दोष है, इसमें हमारा दोष तो कुछ भी नहीं है । इसलिये उन्हें मुँहपर सदा घूँघट रखना चाहिये ! ८० वर्ष की उम्र हो जावे तो भी अन्य पुरुषों के सन्मुख घूंघट रखना चाहिये और बगैर चौकीदार नियोंके बाहर नहीं जाना चाहिये, नहीं तो तुम कुलको कलंक लगाने वाली कहलाओगी । स्त्रियों के साथ इस प्रकार की अनीति की । इसका यह भी लाभ हुआ कि स्वयं बाहर कहां कहां जाते हैं क्या क्या कुकर्म करते हैं इनका पता स्त्रियों को लग ही नहीं सके । वह न बाहर निकले और न पता लगे । हमारे साथ यदि स्त्रियां बाहर जाने आने लगे तो हमको उधर जानेका मौका ही कैसे मिल सकता है इसलिये इनका साथ रहना भी लज्जा विहीनता कहकर टाल दी गई । यदि स्त्रियां शिक्षित हो जावे तो अपने अधिकार हमसे छीन ले सकती हैं इसलिये इनको अशिक्षित ही रक्खी जाने लगी और यदि किसीने इच्छा प्रगट की कि मुझे केवल पत्र लिखना पढ़ना तो सिखा दीजिये, अधिक नहीं सही, ताकि परदेशसे आपका आया हुआ पत्र पढ़कर संतुष्ट हो सकूं और आपको उत्तर लिखकर सन्तुष्ट कर सकूं तो हमने एक बड़े मजेदार उत्तरसे उनको सन्तुष्ट किया और कहा कि एक घरमें दो कलम नहीं चलना चाहिये नही तो हमारे जीवनका खतरा है, तुम्हारे सौभाग्यका खतरा । इस तरह वे अशिक्षित भी रक्खी जाने लगीं । जो सिंहोंको पिंजरेमें रखते हैं वे उन्हें थोड़ी खुराक देते हैं कभी भूखे भी रखते हैं एवं अपने स्वार्थके निमित्त नहीं मालूम और क्या क्या उपाय (अनीति) करके उनको अपने आधीन रखते हैं

ताकि कभी वे भागकर पिंजरेसे बाहर न निकल जावें । जो तोते खुले फिरते हैं वे अपने आपकी पंखोंसे उड़ते हैं अन्य किसीकी से नहीं और अन्य दुष्ट पक्षियोंसे अपनी रक्षा भी अपने आप करते हैं, कभी हमको अपनी रक्षाके निमित्त नहीं पुकारते । अगणित चिड़िया, कबूतर, तोते सब अपनी आप रक्षा करते हैं किन्तु अधिक दिनके अभ्यासके कारण कोई कोई तोते पिंजरेमेंसे निकलकर वापस यह विचारकर आ जाते हैं कि मुझमें उड़नेकी तो शक्ति ही नहीं है, मैं अन्य पक्षियोंसे अपनी रक्षा भी नहीं कर सकता हूं । यहां आरम्भसे पिंजरेमें भोजन मिलता है इसलिये मेरे लिये तो यही अच्छा है, आरामदायक है । इस तरह पिंजरेमें ही आराम मान लेता है । हमारी स्त्रियोंने भी इसी प्रकार पर्देको उत्तम मान लिया है और सहर्ष उसमें रहती है (यदि बुराई भी हो तो परदा है प्रगट ही नहीं हो सकती ।)

इसलिये स्त्रियोंमें पहिले स्त्री शिक्षाका खूब प्रचार होना चाहिये । अभी तक एक पैसे भर भी शिक्षा प्रचार स्त्रियोंमें नहीं हुवा है, केवल पत्र लिखना या पढ़ना तथा सामायिकादि कंठस्थ शुद्ध या अशुद्ध कर लेना मात्र उन्होंमेंसे शायद ५—१० प्रतिने सिखा है इसलिये न केवल कन्याशालायें किन्तु महिला पाठशालाएँ खोलकर स्त्रियोंमें विद्याका खूब प्रचार होना चाहिये । जब वे अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़ेंगी उनकी बुद्धि जागृत होगी तब वे स्वयं इन आभूषणों और बढ़ियां वस्त्रोंको हमें सम्हलाकर अपने आप अधिकार प्राप्त कर लेंगी । वे उस समय दागिना रूपमें नहीं होंगी बोझमार रूप नहीं होंगी किन्तु अपने बन्धु और मित्रकी तरह प्रत्येक कार्यमें हमारी सहायक होगी। इसलिये परदा एक प्रकारकी अनीति अवश्य है किन्तु उसके हटानेके लिये उपाय स्त्री

शिक्षा ही है। इसलिये स्त्री शिक्षा शीघ्र हो, इसी बातके लिये प्रयत्न करनेकी अधिक आवश्यकता है। स्त्रियोंको शिक्षित करनेके लिये कन्याशालाऐं, महिलाशालाएँ इत्यादि खोलना चाहिये। उसमें उच्च वर्गों तककी शिक्षा होना चाहिये, उनमें जानेके लिये कन्याओं और महिलाओंको अच्छा प्रोत्साहन मिलना चाहिये ताकि स्त्रियें योग्य बन जावें और हमारे घरभी पवित्र हों।

व्यर्थ व्यय और निवारण

(८) जब हम उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके खर्चके लिये, स्त्री शिक्षाका प्रचार करनेके लिये, अनाथ, अपाहिज, विधवाओंके प्रतिपालनके लिये द्रव्य चाहते हैं तो जाति भाई जवाब देते हैं कि क्या करें, धन्धा ही नहीं है, आय ही नहीं है, कहांसे देवें। किन्तु अनेक प्रकारके व्यर्थ खर्च आंख मींचकर करते रहते हैं।

मोसर, नुकता, नहावणी।

मौसर करना कबसे प्रारम्भ हुआ यही नहीं कहा जा सकता। पर इतना तो अवश्य कहूँगा कि यह चाल जैन धर्मके सिद्धान्तोंके प्रतिकूल है जब कि यह कह कर किया जाय कि मृतक आत्माको जीमनेवालोंके आशिर्वादसे शान्ति मिले। जैन धर्म कर्म सिद्धान्तको मानता है। इसके मन्तव्यसे जो कर्म करता है फल भी उसीको भोगना पड़ता है। पुत्रके दान देनेसे पिता सुखी नहीं हो सकता। यदि ऐसा होगा तो 'कृत प्रणाश' 'अकृतक भोगः' रूप दोषोंका प्रसंग होगा जो कि जैन धर्मके विरुद्ध हैं। वह चाल वैदिक धर्मावलम्बियोंके वेदनिष्ठ श्राद्धादि क्रियाओंके करनेकी अनुकरण मात्रा है। यज्ञ यज्ञादिओंमें पित्रोंकी तृप्तिके लिये जो अनुष्ठान किया जाता

था उसीके विशेष प्रचारका फल है। जब भारतवर्षमें ब्राह्मणोंका खूब गोर शोर रहा था तब उन्होंने मनमाने सिद्धान्त, स्वार्थिक इच्छाओंकी पूर्तिके अनुकूल बनाये थे। अपनी स्वार्थ साधनाके लिये व उदर पूर्तिके लिये धर्मभीरू भोले जीवोंको भरमा कर कई प्रथाएँ जैसे श्राद्धादिके दिनोंमें ब्राह्मणोंको जीमानेसे मृतक आत्माको शान्ति मिलती है! प्रारम्भकी कि इन्हें खूब माल मिलता रहे। किन्तु हम लोग तो उनके भी उस्ताद निकले कि कुछ दिन बाद ब्राह्मणोंकी चालको बन्द करके स्वयं जातिवाले ही जीमने लग गये। किन्तु इसमें शक नहीं कि यह चाल इसी प्रकार आरम्भ हुई थी।

जैन लोगोंको श्राद्ध नहीं करना चाहिये किन्तु फिर भी समझमें नहीं आता वे क्यों करते हैं और क्यों नहीं धर्म गुरू इस धर्म: विरुद्ध रिवाजको उठानेका उपदेश देते हैं? उनकी इस कार्यमें उपेक्षाका कारण समझमें नहीं आता।

मृत्युके उपरान्त कहीं बारहवाँ, कहीं तेरहवाँ, कहीं नुकता, कहीं मोसर, कहीं नहावणी इस तरह विविध नामोंसे एक या अधिक जीमण किया जाता है। इसमें संबंधी तथा जातिभाई दूर गावों तकसे आते हैं एक दिन खा जाते हैं। खिलानेवाला समझता है कि मैंने अपने माथेका बोझा उतारा है, अब मुझे कोई ताना नहीं मार सकेगा और खानेवाला समझता है कि आज अपण लैणा वसूल किया है हमें मुफ्त थोड़ा ही खिलाया है पहिले कितनी ही बार हम इनको खिला चुके हैं तब हमको इसने खिलाया है। इस प्रकार दोनों मन ही मन अपना हिसाब किताब कर लेते हैं। इससे जातिका वा किसी व्यक्ति का कुछ भी लाभ नहीं है। तथापि कितने ही स्थानोंपर तो तेरहवें

दिवस ही जिमा देना पड़ता है, एक दिन भी देरी नहीं हो सकती है ऐसी दशामें कोई कर्ज सिरपर करके करता है तो कोई जेवर वेचकर करता है! अनाथ, विधवा तकको करना पड़ता है ! ऐसी सलाह लोग देते हैं कि इस वार तो सब साथ ही कर डालो कोई पहिलेका वाकी है तो उसको भी कर डालो। वस उसके द्रव्यका सफाया कर डालते हैं। इन नुकतोंके जिमानेमें ज़रा पंचोंकी वात नहीं माने तो वड़ी वदनामी होती है और मजबूरन मान ही लेते हैं। इसके निमित्त किसानोंके साथ वोहरगतमें अनेक ठगाईयाँ करनी पड़ती हैं, व्यापारमें अनेक वेइमानियाँ करनी पड़ती है, कन्याओंको वेचना पड़ता है और अनाथ विधवाओंको भूखे रहना पड़ता है मगर मरे हुवेके नामपर खिला देना पड़ता है। शहरोंमें कहीं २ वन्द भी है परन्तु गावोंमें तो होते ही हैं। इनको वन्द करनेके लिये एक अच्छी वृहद आन्दोलनकी जरूरत है जिससे पहले शहरोंमें वन्द होवें तव गावोंमें वन्द हो सकेंगे।

मनुष्य मर जाने वाद उसको अग्निसंस्कार देकर उसकी अंत्येष्टी क्रिया की जाती है, मृत्युसे ओसवाल समाजमें प्रायः १२ रोजतक अशौच गिना जाता है फिर 'ओसर' किया जाता है, सेवग व्राह्मणोंको दान दिया जाता है। इन अशौचके १२ रोजमें प्रायः 'मुखाण' के लिये मृतकके घरपर उनके रिश्तेदार (सगे संवंधी) आकर मृतकके कुटुंव का दुःख भार हलका किया करते हैं। सातवीं शताव्दी तक जैन समाजमें जातिभोज, पिंडदान तथा व्राह्मणों को दान देनेकी प्रणाली नहीं थी। जहां कोई दान पुण्य करता तो पारलौकिक पुण्यके लालच से नहीं किन्तु मृतककी मिलाई हुई वस्तुयें इसीलिये किसीको

दे देते थे कि उस वस्तुपर से मोह हट जाय, मृतककी वस्तुयें देख देख कर उनकी याद आना और शोक उत्पन्न होना—इसीलिये यह उस समय दान देनेका उद्देश्य था किन्तु सोहबत का असर ओसवालादि जैन समाजपर पड़नेसे आज प्रतिवर्ष हजारों रुपये दान के नाम व्यर्थ जा रहे हैं।

'अशौच' के १२ दिनमें जो 'शोक' का प्रदर्शन किया जाता है वह देख कर तो क्षणभर हम अपना मनुष्यत्वही भूल जाते हैं, सरे बजारमें रोनेका झूठा स्वांग बनाकर मृतकके घरपर जाना—यह क्या उस दुःखी कुटुंबके साथ हमदर्दी करनेका मार्ग है? क्या यह सच्चा रोना है? रूढी के गुलाम बनकर रोनेका स्वांग रचनेसे अन्य समाजमें हमारी भारी हंसी होती है और विशेषतः पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्री समाजका सरे बाज़ारमें रोती हुई निकलना अत्यंत खटकता है। 'जिनको दुःख उनको पीड़' शेष लोग समाजकी झूठी शान रखनेमें अपना कर्तव्य मानते हैं। मौतवाले के घर जब उनका कोई सगासंबंधी आता है तो उनको 'घी खिचड़ियोंका' भोजन खिलाया जाता है मानों ऐसे भोजनके विना शानही चली जायगी और ऐसे भोजन खानेमें यह निर्दयी समाज कुछ अनुचित नहीं जानता! वूढ़ी मौत के लिये एक प्रकारका यह हर्षसूचक चिन्ह माना जाता है। कच्ची मौतके भी ओसर! किये जाते हैं यह अत्यंत बुरा है। 'मोसर' के बादकी एक क्रिया 'खड़का' नामसे होता है जहां मृतकके भाई बन्धवादि इकट्ठे हो कर एकवार अन्तिम, मृतकके नाम रोलिया करते है जिनके घरमें मौत हुई जिनकी बड़ी भारी क्षती हुई उन्हें रोना आना संभवनीय हैं पर शेष लोग व्यर्थमें रोनेका बहानाकर बनावटी सहानु-

भूति प्रगट करते हैं, समाजका यह झूठा 'शोकप्रदर्शक' समाजमें निर्दयता बढ़ा रहा है।

बिना अशौच के १२ रोज व्यतीत हुए सेवक ब्राह्मण दान नहीं लेते, बड़े बड़े धनवानोंके ओसरमें १५-१५-२०-२० रुपये एक एक को दक्षिणा मिलती है, जहां तक हमें याद है धामकवाले सेठ केशरीमलजी गुगलियाने अपनी माता के ओसरपर सेवगोंको १-१ को ३१ रुपये दिये थे, हजारों रूपये निरर्थक व्यर्थ गये। हमारी मान्यता है कि समाज के ऐसे सेठ लोग झूठी कीर्ति के पीछे लगे हुए हैं इन्होंकी मान्यता है कि सेवगोंको जितने अधिक रुपये दक्षिणा दी उतने ही अधिक समय तक हमारे नामका जप यह लोग करते रहेंगे। 'समय किसीका एकसा नहीं रहता,' जब कभी स्थितिमें परिवर्तन हो जाता तो यह लोग-सेवग-हुरें हुरें कर धूलउड़ानेमें नहीं चुकते। जैनशास्त्र क्या सृष्टिके सभी धर्मशास्त्रोंमें कहा है कि दान 'सुपात्र' देना चाहिए, दान देते वख्त पात्रका विचार अवश्य करना किन्तु समाजमें पात्र पिछाननेकी बुद्धि भी नहीं रही। इन सेवगोंके आचरण अत्यन्त निंद्य होते हैं। गांजा तम्बाखू जैसे व्यसन तो प्रायः इन लोगों को रहता ही है, कुछ उद्यम नहीं करते, न विद्याध्ययन करते, न समाजसुधारके कुछ काम आते, कन्याविक्रय, वृद्धविवाह, एककी मांग दूसरेको परणानेमें विशेषतः इन्हीं लोगोंका विशेष अंग रहता है। कहा जाता है कि रत्नप्रभूसूरिने जिस वख्त क्षत्रियोंको ओसवाल बनाये उस वख्त के क्षत्रियों के जो भाट थें, उन्हें सेवग बनाये, सेवग इन शब्द परसे ओसवाल समाज की सेवा करना इन लोगोंका धर्म था, पुरानेकालमें यह सेवग जैनी थे, सामाजिक कार्य सेवा भावसे करते थे। आज वे क्यां कर रहे हैं? शैव तथा वैश्णव

धर्मी बन गये हैं जैनधर्मकी, जैन साधुओंकी तथा गृहस्थों की निंदा करते है। 'पयः पानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनम्' सांपको दूध पीलानेसे विषही होगा, मारवाड़ी मिसाल प्रसिद्ध है कि 'घांनखावे माटीरो गीत गावे बीरारा' अर्थात् नाज पतिका खाना और स्तुती भाईकी करनी, यह हालत सेवक समाजकी है फिर भी समाज नहीं चेतता! कई सेवगोंने यहां तक अपनी करामत कर बताई है कि बड़े बड़े सेठोंके यहां इन्हीं के बिना चलही नहीं सकता, इनके विरुद्ध वे कुछ कर नहीं सकते, जो कुछ हो समाजका खून शोषण करने-वाली इन (जलवाँ) को जितनी शीघ्र दूर की जाय उतना ही समाजका अधिक लाभ है। महाराष्ट्र प्रान्तमें स्वर्गीय सेठ नयनसुखदासजी निमाणीने ऐसा प्रबन्ध कर दिया है कि 'ओसर' में पक्की रसोई लड्डू आदिके बारह आनेसे अधिक सेवगोको कोई नहीं दे सकता। प्रति वर्ष समाजके हज़ारों लाखों रुपये व्यर्थ धूलमें जाते हैं और कुपात्रदानका पाप लगता है। ऐसे बेकार निकम्मे अहिंसा धर्मके विरोधी लोगोंको पालना देशको अधिक पारतंत्र्यमें ढकेलना हैं। सेवगोंकी दृष्टिसे भी विचार किया जाय तो इन लोगोंके पास क्या रहता है, यह जभीके तभी फूँफा कर देते हैं! अर्थात् दरिद्री ही नज़र आते हैं, निरक्षर! अक्षर शत्रुही प्रायः देखे जाते हैं। विना परिश्रमके द्रव्यकी कदर भी हीं हो सकती है? उनका नतिजा अनीतिके गहरे गढ्ढेमें जानाही है। समाजमें भी दिनोदिन इन लोगोंसे घृणा उत्पन्न होने लगी है पर स्पष्टतया इन सेवगोंका विरोध सहनेके लिये अगुआ बननेका साहस समाजमें किसीका नहीं है।

कन्या विक्रय वन्द हो जाने से भी मोसर वन्द होना सहज हो जावेगा। इसलिये मोसरों को वन्द कराने के साथ ही कन्या विक्रय

के वन्द कराने का प्रयत्न भी अवश्य होना चाहिये। ताकि न तो बेजा द्रव्य आवे और न ऐसे कामों में लगे। इस आन्दोलन के लिये भी स्थायी कार्य कताओंके प्रयत्न की आवश्यकता है।

ब्यांव बिरध ओसर मोसरमें, पैसो खर्चे अन्त न पार।
भूल चूक घरकी पूंजी को, मनमे जरा करे न विचार॥
होड़ा होड़ बन करे अंधा, खरी कीर्ति जस लंबो छे।
आपणो नाश आप कर लेवे, ओभी एक अंचबो छे॥

कवि राजहंस।

खर्चीले वस्त्राभूषणका व्यर्थ व्यय।

जातीयता क्या वस्तु है? निज देश कहते हैं किसे?
क्या अर्थ आत्म त्यागका वे जानते हैं क्या इसे?
चाहे अपव्यय में उड़ै लाखों करोड़ों भी अभी।
देश हितपर वे न देंगे एक कौड़ीभी कभी॥

कविवर मैथिली शरण गुप्त।

स्त्रियोंके तथा पुरुषोंके लिये पतले कपड़े आज कल इतने प्रिय हो गये हैं कि उनकी चाहे निर्लज्जता प्रगट होवे, व्यर्थ खर्च बढ़ जावे, अंग नाजूक बन जावे, देशके उद्योग धंधोंको नुकसान पहुँचे परन्तु उनको तो कपड़े पतलेही चाहिये।

स्त्रियोंको तो केवल पतले बारीक ही नहीं रेशमी वस्त्र भी होना चाहिये, रंग बिरंगकी छपाई भी उनके वस्त्रोंपर होनी चाहिये और इतने पर भी संतोष कहां? आभूषण भी चांदीके, सोनेके और जड़ाऊ भी होने चाहिये, चाहे कितने ही अधिक क्यों नहीं बनाले पर फिर भी संतोष नहीं। इससे सुख तो कुछ नहीं मिलता अपने मनमें तो अभिमान उत्पन्न हो जाता है कि मेरे पास इतने वस्त्र और जेवर हैं

और जो उन्हें देखते हैं उनमें से कितनों ही के जी में क्षोभ उत्पन्न होता हैं कि हाय ! हमारे नहीं है तथा कितनोंके जी में ईर्षा उत्पन्न होती है कि देखो इसके तो हो गये हमारे तो है ही नहीं, भगवान करे इसके भी ये नहीं रहे। इससे कितने ही के जी में ये भाव पैदा होते हैं कि मौका देखकर कभी इनको झपट लें या उठा लावें तो अपन भी इनका मजा ले। इस तरह स्वयं के तथा अन्य के विचारोंमें खराबी पैदा करनेके अतिरिक्त इनमें कुछ लाभ नहीं है। इन शौकीनात के वस्त्रोंसे मनके भावोंमें विलासिता वढ़ती है। खर्च अगर इतना ही करते और हाथकती खादी पहनते तो उससे न तो निर्लज्जता प्रगट होती, न बदन कोमल हो जाता, और न चरखा कातकर पेट भरनेवालियोंका रोज़गार मारा जाता, मनके भाव भी अधिक संतोषी होते, अन्य खर्चोंमें भी संतोष होता।

इसी तरह ज़ेवरमें चाहे कुछ शोभा समझ लीजिये पर किसको दिखानेके लिये ? दिखानेकी ज़रूरत तो वेश्याको होती है। पतिको दिखानेकी प्रथम तो आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह तो शृंगारका प्रेमी नहीं, प्रेमका प्रेमी है। और यदि दिखानेकी इच्छा है तो अन्य को दिखानेसे बचकर उसको दिखावें, परन्तु इतना ऐसा किसी भी तरहका विचार ही नहीं करते। सब कुछ मुसीबतें सहे परन्तु जेवर ज़रूर घड़ने चाहिये, चाहे ब्याजका नुकसान हो, टांकेमें छीजे, घड़ाई लगे, जड़ाई लगे, सुनार चोरे और घिसनेमें जावे पर कुछ परवाह नहीं[1]।

---

[1] भारतमें जो आभूषणकी प्रथा है उससे सिर्फ गमारपन झलकता है और सौन्दर्य नष्ट होता है। इसलिये अभी सौन्दर्यकी दृष्टिसे भी विचार करें तो भी आभूषणोंकी प्रथा त्याज्य है।

द्रव्य पहिले भी बचाया जाता था । हंडियाँ गाड़ देते थे धीरे धीरे संग्रह हो जाता और जब कोई जमीन, जायदात विक रही होती उसको निकालकर खरीद लेते, जमीनकी आमदनी, नाज वगैरह आता जिससे घर खर्चेमेंभी सुभीता होता । और स्वयं सादे निवासमें रहते चाहे कितनेही द्रव्यवान होते । आज कल तो न सिर्फ स्त्रियाँ ही किन्तु पुरुष भी कहीं कहीं स्त्रियोंके जैसे ही जेवर पहिनने लग गये हैं क्योंकि अब चोर उठाईगिरोंका भय पूर्वकालसे आजकल कुछ कम रह गया है ।

हमारे शिक्षित युवक जेवर से अधिक फैशन में खर्च कर देते हैं। अपना समय भी फैशन बनाने में काफ़ी लगाया करते हैं । अभी अपनी जाति में शिक्षितों की संख्या अधिक नही है इसके अतिरिक्त असहयोग आन्दोलन के समय फैशन की बुराई पर अच्छा ध्यान दिलाया गया था । यह इन कारणों से अभी हमारे में कम फैली है तथापि जितनी भी है त्याज्य है ।

यदि हम लोग सादगी को अपनालें, सादा वस्त्र, सादा भोजन, साफ मकान से संतोष कर लें तो हमारे विचारों से अनेक निरर्थक बातें निकल जावे, हमारे कितने ही खर्च बच जावे, हमारी आर्थिक स्थिति उन्नत होने लगे, हमारे में नैतिक गुण बढ़ने लगे और हमारे में सेवा भाव भी उत्पन्न होने लगे ।

इस द्रव्य और भाव दोनो में लाभ देख कर भी यदि हम सादगी को नहीं अपनावें तो अपनी क्या समझदारी रही ?

सादगी सदाचार का मूल है । सदाचार धर्म का मूल है और धर्म सुखका मूल है ।

बालकों को आभूषण पहिनाने में व्यर्थ व्यय के अतिरिक्त प्राणों तककी हानि भी प्रायः होती है । वह अतिरिक्त है ।

विवाहोंमें अधिक खर्च ।

विवाह हर्षका अवसर है । उसमें यथाशक्ति खर्च हर्ष प्रदर्शित करनेमें किया जावे तो कोई हर्ज भी नहीं है किन्तु बहुत ही बड़ी बड़ी बराते ले जानेमें (जिनका प्रबंध भी अच्छी तरहसे नहीं किया जा सके), बहुत दिखावट करनेमें, बड़े बड़े जीमण करनेमें अपने सम्बंधीको खूब रुपया, माल, असबाब देने लेनेमें और अनेक प्रकारके नेक खर्चोंमें रुपया निरर्थक वहा देनेमें हम इतना अधिक खर्च कर देते हैं कि सबके इसी तरह खर्च करने करानेसे ऐसा ही खर्च करना एक रीतिसी होगई है जिसके प्रभावसे अशक्त बन्धुओंको भी या तो दब करक वसा ही खर्च करना ही पड़ता है और यदि नहीं करे तो सन्मुख या पीठ पीछे निन्दा सहना ही पड़ता है । इस प्रकार हम अधिक खर्च करके स्वयं अपने आप द्रव्य हानि सहन करते हैं और अन्यको भी ऐसा ही करनेकी खराबीमें खैंचते हैं ।

हम अधिक व्यय करके स्वयं भी कष्ट उठाते हैं और दूसरोंको भी कष्ट उठानेमें मजबूर करते हैं। ऐसे विवाहके बहु व्ययको रोकनेके निमित्त पंचायते पूर्वकालमें अच्छा ध्यान दिया करती थी किन्तु आज कल तो ये और अधिक करानेमें रहती है ।

इन सबको कम करानेका योग्य उपाय सर्वोत्तम तो यही है कि सुधार प्रिय लोग अपने घरमें न तो स्त्रियोंके कहनेके अनुसार ही करें, और न अन्य संबंधी आदि लोगोंके दबावमें आकर व्यर्थ खर्च करें तथा विवाहमें होनेवाली कितनी ही निरर्थक रीतियां भी न करें जो

व्यर्थ की जाती हैं। जातिमें जीमण जिमाना एक प्रेम कृत्य है किन्तु अपनी शक्ति हो उतने ही जाति भाइयोंको बुलाना चाहिये, उतनी ही खर्चीली वस्तुऐं वनाना चाहिये, धनवानोंकी देखा देखी नहीं करना चाहिये । इसी तरह वरातमें भी उतनेही आदमी ले जाना चाहिये जिनकी निगाह संभाल अच्छी तरह की जा सके तथा उतनाही देना लेना करना चाहिये जितनी अपनी शक्ति हो। किसी प्रकारसे इतना खर्च कदापि नहीं करना चाहिये जो शक्तिके उपरान्त हो। इसी प्रकार वेश्यादि वुलाना भी व्यर्थ व्यय है। अन्य सद् गायन गानेवाले मनोरंजनके लिये वुला लेना चाहिये जो चौथाई खर्च में ही मिल सकते हैं, वा मनोरंजनका कुछ अन्य साधन उस समय कर लेना चाहिये जिसमें व्यय कम होवे तथा असभ्यता और दुर्भाव परस्पर न होवे। इसी तरह जेवर, कपड़े वगैरह अपने क्रिय वा देने करनेके लिए वनानेमें जितनी शक्ति हो केवल उतना ही खर्च करना चाहिये ताकि वह खुशी भविष्यमें चिन्ता और दुखका कारण न वन जावे। जव प्रथम सुधारक लोग (जो इस महत्वको समझ गये हैं) इस प्रकार मितव्यय करने लगेंगे तो अन्य लोग भी उनका अनुकरण अवश्य करेंगे।

भोजक, सेवक आदिको देना।

यह भोजकोंकी सेवकोंकी किसी प्रकारकी जवरदस्तीकी लाग नहीं है कि विवाहमें उनको " त्यागे " देना ही चाहिये इसलिये यह द्रव्य कभी लाग समझकर नहीं दिया जाना चाहिये। यदि वाध्य समझकर हम दे रहे हैं तो अपनी सन्तानके निमित्त वेजा कर रहे हैं और इस

---

१ नासीक प्रान्तमें रु. १०१ से ज्यादा किसी प्रकार नहीं दिया जाता।

व्यर्थ व्यय द्वारा उनको निकम्मा रहना सिखला रहे हैं। उनका जीवन पशुतुल्य बना रहे हैं। यदि हमें देना हो, हमारी शक्ति हो तो इनकी जातिकी विधवाओंको, पाठशालाओं आदिको देना चाहिये ताकि वह सुकृतमें तो जावे परन्तु इस प्रकार उनको आलसी निर्धनी तो नहीं बनाना चाहिये। इस व्यर्थ खर्चको बचाना चाहिये।

अन्य व्यर्थ खर्च।

कीर्तिके नामपर तथा शोभा दिखलावटके नामपर हम अनेक प्रकारके व्यर्थ खर्च कर देते हैं और अपना परिश्रमसे कमाया हुवा द्रव्य खो देते हैं जिसको हम उत्तम सुकृत कार्योंमें लगावे तो अपना भला होवे तथा जातिका वा अन्य लोगोंका भला होवे।

वह एक जमाना था जब कि जैन समाज के पास अखूट द्रव्य था। व्यय करने का कोई मार्ग न था तब तीर्थकरोंके मन्दिरों व स्मारकों के लिये प्रभुत् धन खर्च किया जाता था और यही तात्कालिक विचारकोंका उपदेश भी था। पर अब क्या है? न वह ऋद्धि रही न वह समय ही। लक्ष्मी जितनी पहिले थी उतनी नहीं रही। मन्दिरों की तादाद भी काफी संख्या से अधिक है! एक एक मन्दिर में हज़ारो की संख्या में प्रतिमाएं विद्यमान हैं तथापि नये मन्दिर और मूर्तियाँ बनवाकर यश लुटनेकी लालसा रखनेवाले मूर्तियों की प्रतिष्ठा के बहाने अपनी प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। प्राचीन पूर्व पुरूषों के स्मारक नष्ठ भृष्ट हो रहे हैं किन्तु यश लोलुपी धनी उनकी परवाह न करते हुए धर्म के नाम से अपने स्मारक खड़े कर रहे हैं। विचारक समाज जब तक इस कीर्ति कामना का दमन न कर देगी तब तक यशोन्ध लोग ठीक मार्ग पर नहीं आ

सकते । अब मंदिर बनानेकी आवश्यकता नहीं रही, अभी समाज में जो अज्ञान छा रहा है उसे हटाने की आवश्यकता है । ज्ञान प्रचार का फल अधिक है या मन्दिर प्रचार का, जरा सोचिये । समझ में नहीं आया कि धर्मगुरू देशकाल के अनुसार उपदेश देकर हम श्रावकों को क्यों नहीं ऐसे खर्च से बचाते और ऐसे खर्च को समाज के दीन बालकों की शिक्षा दीक्षामें खच करने की शिक्षा देते । यदि कोई शिक्षित व्यक्ति देश काल की रूख देख कर इस खर्चका विरोध करता है तो धड़ाधड़ गालियों की वषा होने लगती है । ऐसा विरोध करने से उन्हें संघ बाहर भी होना पड़ता है । हमारे पास करोड़ों रुपये देव द्रव्य क विद्यमान हैं । उन्ह जिनके पास वे रूपये जमा हैं मिलोंमें खर्च करके खुब कमाइ कर रहे हैं किन्तु हम उन रुपयोंकी उचित व्यवस्थाके लिये कभी कोई सम्मति जनताके सामने नहीं रखते । मित्रो ! खुब सो चुके, उठो और जनहितके कार्य्योंमें प्रवृत्ति करो । हमारे समाजके धनका उपयोग किस प्रकार हो रहा है यह बात समय समय पर सुधारकों द्वारा अच्छी तरह प्रकाशित हो चुकी है । अव इसी धनका सदुपयोग करनेसे देश व समाज कल्याण मार्गकी ओर प्रयाण कर सकता है ।

विधवा विवाहसंबंधी भ्रमोंका निवारण ।

(९) विधवा विवाह करनेमें हम लोगोंको निम्न लिखित शंकाएँ रहती हैं ।

(अ) हम समझते हैं कि विधवा विवाह पाप है किन्तु जरा विचार तो करें कि धर्म तो यही है पूर्ण ब्रह्मचर्यका यथेष्ट पालन है और विवाह भी तो पाप कार्य ही है उसमें क्या मैथुन

सेवन नहीं होता? यदि विवाह धर्म है तो केवल इस अपेक्षासे है कि मनुष्य विवाहके द्वारा अपनी अमर्यादित काम वासनाको मर्यादित कर लेता है। एक पुरुष वा स्त्रीमें परस्पर संतुष्ट हो जाते हैं इसी तरह विधवा और पुरुष दोनों विधवा विवाहके द्वारा एकके साथ संतुष्ट रहते हों तब पाप है या धर्म?

(आ) हम समझते हैं कि विधवा विवाह दुराचार है किन्तु जरा विचार कर कि एक विधवा सारे समाजके सन्मुख एक पति को स्वीकार करके यदि विवाह करके काम तृप्ति करती है वह तो दुराचार है और जो पुरुष और स्त्रियां काम-पर विजय प्राप्त नहीं कर सकनेसे गुप्त व्यभिचार सेवन करते हैं जिसका कुछ भी उपाय आज तक नहीं हो सका वह दुराचार नहीं है? विधवा विवाह दुराचार है या यह हमारा दुर्विचार है?

(इ) हम समझते हैं कि विधवा धर्म पालन करना तपस्या है, सतीत्व है। किन्तु जरा यह भी विचार करे कि अपन घरमें एक दिन कोई अपने नौज़वान पुत्रको भोजन नहीं देवे और बच्चा बिचारा तलफा करे, इधर उधर भोजनका दाव लगाया करे किन्तु उसे मौका नहीं मिले इसलिये रूका रहे और दूसरे दिन, पिता और समझे कि पुत्रने कल उपवासकी तपस्या की। पुत्रका मौका लगता तो न मालूम वह क्या करता? किन्तु मौका ही नहीं मिला इस लिये इस उपवासमें यदि कुछ तपस्या हुई तो इस वैधव्य को भी तपस्या कही जा सकती है।

(ई) हम समझते हैं कि विधवाएँ तो अपनी रूचिसे उमंगसे और धर्मप्रेमसे और भाक्तिके साथ विधवा धर्मको पालन करती हैं। बहुत कम ऐसी हैं जो इसको बंधन मानती हैं और वेही चरित्र भ्रष्ट हो जाती हैं। किन्तु कभी हमने यह भी विचार किया है कि तोते को पिंजरेमें बन्द रखकर उसकी बफादारीकी परीक्षा नहीं हो सकती। उसकी पिंजरेकी खिड़की खुली रख करके देखिये कि तोता क्या आपका प्रेमी है?

(उ) हम समझते हैं कि इस बंधनके द्वारा अच्छी संख्यामें विधवायें विधवा धर्म पालन करती हैं केवल थोड़ी ही चरित्र भ्रष्ट होती हैं। यदि इनको छूट देदी जावे तो बहुत ही थोड़ी पालन करेगी, इस तरह अभी पाप कम हो रहा है और पुण्य अधिक हो रहा है। किन्तु जरा यह भी तो विचार करें कि अभी तो कुछ भी पुण्य नहीं हो रहा है क्योंकि अभी तो त्याग है ही कहां? जिन जाति-योंमें इसका प्रचार है यदि उस जातिकी कोई विधवा पति मिलनेपर भी तपस्या भावसे पुनर्विवाह नहीं करनेकी और सुचरित्र रहनेकी प्रतिज्ञा करके उसको यथैवत् पालन करे तो वह निस्सन्देह तपस्वी है और सती है। आज दिन ऐसी सती अपनेम तो निकलही कैसे सकती है, क्योंकि जब छूट नहीं तो त्याग भी और तपस्या भी नहीं और जो दुराचार विधवाओंके द्वारा, विधुरोंके द्वारा, कुंआरे पुरुषोंके द्वारा हो रहा है वह तो मौजूद ही है। पुण्य अधिक हुवा या पाप अधिक हो रहा है।

(ऊ) हम समझते हैं कि वैधव्य परंपराकी रीति है इसलिये पालन करना ही चाहिये किन्तु जरा विचार तो करें कि कि पूर्वकालमें पुरुष अनेक स्त्रियोंसे एक साथ विवाह करते थे। कोई १० स्त्रियें रखता था तो कोई ५ विवाह करके रखता था, बड़े कहे जानेवाले तक ऐसा करते थे तो वह भी परंपरा की रीति थी। क्यों नहीं पालन होना चाहिये? क्यों बिरादरी उज्र उठाती है? यदि बिरादरी उज्र करती है कि अब पहिले जैसा बल नहीं रहा इसलिये अब वह विवाह अनुचित है तो हम भी कह सकते हैं कि विधुरोंमें और विधवाओंमें अब उतना विरक्तभाव नहीं रहा कि जिससे वे काम भावको उदय ही नहीं होने देवें।

(ए) हम समझते हैं कि विधवा विवाहकी धर्म शास्त्रोंमें भी तो आज्ञा नहीं है तब कैसे कर सकते हैं। किन्तु हम यह तो विचार करें कि धर्म शास्त्रोंमें क्या जीवनसंबंधी प्रत्येक कार्योंकी आज्ञा है? क्या स्नानकी आज्ञा है? क्या सन्तान उत्पत्तिकी आज्ञा है? क्या मित्रता किसीसे रखने न रखनेकी आज्ञा है? ऐसी एक भी आज्ञा नहीं पावेगी। धर्मशास्त्रोंमें ऐसी छूट दी हुई पा जावेंगी पर आज्ञा कदापि नहीं मिलेगी क्योंकि शास्त्राका कार्य है मार्ग दिखलाना, सम्मति प्रगट करना किन्तु हुकमत करना नहीं। शास्त्रोंमें उदाहरण मिलेंगे जिनमें मनुष्याक पृथक २ समयमें पृथक शैलियें स्वीकार की हैं। कभी कन्यायें स्वयं अपनी इच्छानुसार वर चुन लेती थी, कभी माता-

पिताने इस अधिकारको ले लिया, कभी बहु विवाह प्रचलित था, कभी केवल एक पत्नी ही रखना प्रचलित होगया। ये तो शैलियां हैं जो जिस कालमें उचित देखा गया, कभी साथ जन्मी हुई के साथ विवाह होता था कभी यह महा पाप करार दे दिया गया इसमें आज्ञा कुछ नहीं अनाज्ञा कुछ नहीं।

(ऐ) हम समझते हैं कि पूर्वकालमें विधवाविवाह ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्योंमें कभी नहीं होता था किन्तु जरा यह भी तो देखें कि भगवान् महावीरके ११ गणधर जो जातिके ब्राह्मण थे उनमें दो ऐसे थे जिनके पिता पृथक पृथक थे और माता एक थी। त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्रके कर्त्ता जैनाचार्य श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य महाराज वहां लिखते हैं कि उस जातिमें वहां ऐसी प्रथा थी तदनुसार एक पतिसे एक पुत्र हुवा और पुनर्लग्न करनेपर दूसरे पतिसे दूसरा पुत्र हुवा, दोनोंने भगवान्के ११ गणधरोंमें पद प्राप्त किये और मोक्ष गये।

(ओ) हम समझते हैं कि यदि हम भी विधवा विवाह जातीमें प्रचलित कर लें तो हमारेमें और शूद्रोंमें फिर फर्क ही क्या रहेगा? हम और वे सब बराबर हो जावेंगे। हमें ऊँचा कौन समझेगा? किन्तु जरा यह तो विचार करें कि यदि हम अहिंसा पालक हैं और ऊँचे समझे जाते हैं तो अन्य लोग अहिंसा पालन करने लगे तो वे भी ऊँचे समझे जावेंगे। उनमें और हममें तब

फर्क ही क्या रहेगा इसलिये क्या हमारा यही प्रयत्न रहे कि अन्य कोई अहिंसा पालक नहीं बनने पावें? क्या किसीका गुण इसलिये नही लेना चाहिये वा किसीको नहीं देना चाहिये कि तब दोनोंमें फर्क ही क्या रहेगा। क्या हम अपनेको इसलिये ऊँचा मानते हैं कि हमने एक मकानके ताला तो बन्द कर दिया और अंदर मिठाई रख बाहर बालकोंको छोड़ दिया और अब हम लोगोंमे प्रशंसा करें कि देखिये हमारे बच्चे मिठाईको छुते तक नहीं हैं। खाना तो दूरकी बात है इसी तरह हम प्रशंसा करें कि हमारे यहां तो विधवाएँ विधवा विवाह करती ही नहीं हैं और उन लोगोंमें कर लेती हैं हम उनसे कितने ऊँचे हैं।

(औ) हम समझते हैं कि विधवा विवाह नहीं करके हम जातिका बडा भारी पुण्य संचय कर रहे हैं जातिको उच्च कहला रहे हैं और जातिका बड़ा उपकार कर रहे हैं किन्तु हम जरा यह भी तो देखे कि इस विधवा विवाहके नहीं होनेके कारण अनेक योग्य विधवायें जिनसे संतान उत्पन्न होती वे कष्टमें बैठी हैं उनसे संतान उत्पन्न नहीं होती इस कारणसे अपनी जाति संख्या प्रतिवर्ष आठ प्रति हजारके करीब घटती जा रही है और यदि हम अब भी नहीं चेते तो क्या मिट चुकने पर चेतेंगे।

(अं) हम समझते हैं कि इसमें हम विधवाओंका तो बड़ा उपकार कर रहे हैं चाहे बंधनमें रखकर ही किन्तु उनसे

ऐसा संयम पालन कराकर उनका तो उपकारही किया है किन्तु जरा यह भी देखें कि उनके साथ हमारा वर्ताव उपकारका है वा अपकारका है। प्रथम तो हमने जो पुनर्विवाहका अपने आपको अधिकार ले रखा है और उनका छीन रखा है यही अनीति है क्योंकि यदि संयम अन्यके लिये उपयोगी जानकर नियत करते हैं तो स्वयं क्यों उस उपयोगितासे वंचित रहते हैं। हम तो अपने नाम चलते रहनेके लिये उसको नित्य रूलाते रखनेके लिये ऐसा पसन्द करते हैं और उपकार बतलाते हैं? अनीति कहते हमको लज्जा आती है। इस प्रकार उनको कैदी बनाकर (अधिकार छीनकर) काले वस्त्र भी पहना देते हैं ताकि अपने काले वस्त्र देखकरके वे अपनेको शोकस्वरूप अभागिनी ! पापमूर्ति ! ! मानती रहें। यदि श्वेत (सफेद) पहनाते तो उनको देखते ही उनका शोकस्वरूप, दुर्भाग्य, पापरंग कैसे प्रगट होता? श्वेत वस्त्र पहनकर तो वे अपनेको उत्तम, शुद्ध, निर्मल स्वच्छ समझने लग जातीं। इसके अतिरिक्त चाहे वे ब्रह्मचर्य पालन करती हुई पवित्र जीवन वितावें और सधवाएं मैथुन सेवन कर अपवित्र होती रहें उन विधवाओं को तो अपशकुन रूप ही माना जावे क्या यह भी हमारी अनीति नहीं है? विवाहका मंगल कार्य है वे एक तरफ रहना चाहिये, किसी अन्य स्थानको जाते समय वे सन्मुख न आजावे नहीं तो अपशकुन हो

जावेगा। इस प्रकार उनके हृदयमें हम यह बात ठसा देते हैं कि तुम तो अपशकुन रूप, शोक स्वरूप पाप मूर्ति मात्र हो। इनके अतिरिक्त जो वचनोंके बाण उन पर छोड़े जाते हैं कि "वही तो पतिको खा गई" वे तो पृथक ही है।

(अः) हम समझते हैं कि जैसा चलता आया चलने दो। कौन ऐसे नये कामको करके बदनामीका ठीकरा अपने सिरपर ले किन्तु जरा यह भी तो विचार करें कि क्या हम सूक्ष्म जीवोंपर दया करुण प्रगट करने मात्रके लिये अहिंसा धर्मी हैं और मनुष्य जातिके निमित्त नहीं हैं? अपनी ही बहिन, बेटियोंके जीवनके अधिकारोंकी रक्षाके निमित्त, उनको सदाचार पर दृढ़ रखनेके लिये उचित व्यवस्था नवीन प्रचलित करनेके निमित्त और जातिकी जनसंख्या और सदाचारकी लगातार होती हुई घटती देख करके कुछ प्रयत्न करनेके निमित्त क्यों हमारा हृदय दयालु, वीर और साहसी नहीं बनता है? क्यों वृथा उदासीनताकी ओर झुकता है? क्या यही दया धर्म है? और यही मर्दानगी है?

इस प्रकार अनेक युक्तियोंसे हमको यही मानना पडता है कि विधवा विवाहका प्रचार होना वर्तमान कालकी आवश्यकताओंकी पूर्ति स्वरूप उपयोगी और आवश्यक है किन्तु अधर्म या किसी भी प्रकार अनुचित नहीं हैं।

अब हमारी जातिके सुधारक लोगोंमें यह प्रश्न खूब चर्चा भी

किया जाने लगा है तथापि अभी इसका प्रारम्भ नहीं हुआ है। यदि हुवा है तो करीब नहीं होनेके बराबर ही है। (लेखकको जहांतक मालूम है एक मालवाकी विधवाका पुनर्विवाह इन्दौरमें एक डेढ़ वर्षके पूर्व हुआ था और एक पंजाबमें होगया है और एक अजमेरमें ही यहांके राजस्थान वनिता आश्रममें जिला अजमेरमें भेरवाड़ाकी एक ओसवाल विधवाका एक बाहरके ही ओसवाल महाशयके साथ कलही हुआ है (भादवा सुद १४ सं. १९८५ को हुआ है)। और एक सी. पी. में भी पुनरविवाह ज्ञाति सम्मति से हुवा है। इसमें कार्य करनेवाले सच्चे और सच्चरित्र होवे। और एक ओसवाल विधवा विवाह सहायक सभा खोल कर इसका प्रचार किया जाना चाहिये। लेखोंद्वारा, व्याख्यानोंद्वारा, प्रयत्नोंद्वारा इसके संबंधके सब भ्रम निवारण होना चाहिये, इस कार्यमें विधवा विवाहको उपयोगी समझनेवालोंको शक्तिभर तन मन धनसे प्रयत्न करना चाहिये। जब यथेष्ट संगठन होकर काय होगा तो अनेक बन्धु जो अभी अपनी न्यून संख्या देखकर भय खाते हैं वे भी साहस कर लेंगे और प्रचार होने लगेगा।

हाड़ौतीकी तरफ एकजाति महाजन हुंबड़ जातिमेंसे निकल कर विधवाविवाह करनेवालोंकी ऐसी बन गई है जो विधवाविवाह आवश्यकतानुसार करना कोई बेजा नहीं समझती। उस जातिका नाम "सदा सुखी" कहलाता है।

बंगालमें एक महापुरुष हुये हैं जिनका नाम था "ईश्वरचंद्र" जातिके ब्राह्मण थे, ये एक अत्यन्त गरीब ब्राह्मणके पुत्र थे जिसकी मृत्यु शीघ्र होगई थी। इनके पास पढ़नेके लिये तेल भी रोशनी के

लिये लानेको द्रव्य नहीं था। इन्होंने गलियोंमें सरकारी लैन्टर्नों के पास बैठ बैठ कर परिश्रम कर बड़ी भारी विद्वता सम्पादन की थी इनकी विधवा माताने आटा पीस पीस कर परिश्रमसे इनको पढ़ाया था जब इनको वेतन मिलने लगा और ये नौकर होगये तो उसमेंसे द्रव्यका खासा भाग अन्य छात्रोंके पढ़नेमें सहायता कर गरीब परवरीश किया करते थे। इनकी विद्वता इतनी बढ़ी कि इनको गवर्नमेंटने विद्यासागरकी उपाधि प्रदानकी और इनको सरकारने अपनी कौंसिलमें मेम्बर नियत किया। इन्होंने अपने पुत्रका विवाह एक विधवासे ही किया और कौंसिलमें यह कानून जो सन् १८५६ का २५ वां आईन (Act) विधवाविवाहसंबंधी कहलाता हैं। सरकारी कानूनोंमें प्रारंभ करवाया जिसके अनुसार किसी भी हिन्दू जातिकी विधवाका यदि हिन्दू जातिके किसी पुरुषसे पुनर्विवाह हो तो उनकी संतानको सम्पत्तिपर वही अधिकार प्राप्त है जो विवाहसे उत्पन्न सन्ततिको प्राप्त होते है। अस्तु,

कानून के अनुसार भी इसमें कोई बाधा नहीं है। यदि विधवा बालिग है तो उसको स्वयं पुनर्विवाह कर लेने का अधिकार है और यदि नाबालिग है तो उसके पिता, माता, भाई, काका आदि कोई भी नजदीकी रिश्तेदार वा जातिभाई करा सकते हैं।

इन " ईश्वरचन्द्र विद्यासागर " के नाम की महिमा बंगालमें इतनी है कि इनको प्रातःस्मरणीय माना जाता है। इनके हृदयकी दयालुताकी आज भी वहां बड़ी प्रशंसा है। वहां ही नहीं शिक्षित समाजमें, शिक्षाकी पुस्तकोंमें सर्वत्र इनकी महिमा है। वे भी विधवा विवाहके कानूनके द्वारा हिन्दू जातिपर उपकार ही कर गये हैं।

अभी इस बातकी अधिक आवश्यकता है कि इस संबंध में खूब विचार फैले। ये विचार सुनते ही श्रोता ऐसे भड़कते हैं जैसे ऑपरेशन के समय रोगी भड़कता है किन्तु जब दर्द आराम होकर सुखकी नींद आती है तब ओपरेशन की पीड़ा भूल जाता है। यह नश्तरसे अधिक भड़कानेवाला सुधार है। पर अनिवार्य होनेके कारण नश्तर से होने वाले दर्दको रोगी को भोगनाही पड़ेगा। हमे सब कुछ सुननाही पड़ेगा, सब कुछ भली बुरी सहना ही पड़ेगा यदि हमे रोगी को आराम करना है।

इस प्रकरणको समाप्त करते करते एक बात मुझे और स्मरण हो आई है उसकी भी चेतावनी करही देता हूँ कि हमको सुधार कार्य में विवेक भी रखना चाहिये। विवेक का त्याग करके सुधार करने में सुधार के स्थान में और बिगाड़ हो जाता है। कुछ ही माह पूर्व कलकत्ते में एक ओसवाल परिवार की जो ईसाई हो गये थे एक श्री पूज्यजी द्वारा सुधारकों ने शुद्धि करवाई। उनकी शुद्धि को सफल प्रमाणित करनेके लिये उनकी दो कन्याओं का विवाह भी दो ऐसे वरों के साथ करा दिया गया जो न तो हृदयबल के ऐसे थे कि अपनी बात पर दृढ़ रहेंगे और न कुछ पढ़े लिखे ही थे उधर कन्यायें (ईसाई काल में) अच्छी पढ़ी हैं। देखना है कैसे पटती हैं?

इसी प्रकार विधवा विवाह के प्रचार में भी ऐसा होना अयोग्य है कि जोड़ और बेजोड़ का कुछ ध्यान नहीं दिया जावे। उनकी शारीरिक तथा आर्थिक परिस्थिति पर भी ध्यान नहीं दिया जावे भले चाहे खोजने में विलंब होवे किन्तु ऐसा नहीं हो कि एक सुधारकर

दो बिगाड़ कर बैठे। विवेक और उपयोग भी सदा अवश्य रहना चाहिये। सत्य और सदाग्रह के साथ धैर्य पूर्वक कार्य होना चाहिये।

ओसवाल जातिकी उन्नति।

जिस उन्नति के उपाय हमको करना है और जिस उन्नति के द्वारा हम हमारी जातिको सुखी देखना चाहते हैं उस उन्नति का स्वरूप हमको निश्चित करना चाहिये। तब ही तो उपाय जाने जा सकेंगे।

प्रत्येक मनुष्य को सबसे अधिक प्रिय कोई यदि होता है तो वह है "सुख"। और अप्रिय यदि कोई होता है तो वह है "दुःख"। आदर्श तो यही है कि उसको किसी भी प्रकार का दुःख किञ्चित् मात्र भी नहीं हो और वह सब प्रकार का सुख अधिक से अधिक हो। और वह सुख सदा रहने वाला हो कभी भी अन्त होने वाला नहीं हो। यदि कोई मनुष्य प्रयत्न करे तो इस आदर्श सुखको, मोक्ष सुखको, परम पद को प्राप्त कर सकता है; नर से नारायण हो सकता है। अनेक मनुष्यों ने इस आदर्श सुख को प्राप्त किया है और अनेक इसके लिये प्रयत्नशील हैं।

दुःख मात्र से स्वतंत्र होकर परमानन्द स्वरूप को प्राप्त करने के निमित्त अथाह विश्वास, धैर्य और पुरुषार्थ की आवश्यकता है। इनके अतिरिक्त दृढ़ रूचि और संकल्प बलकी आवश्यकता है तथा इन सबके अतिरिक्त दूरदर्शिता की महान् आवश्यकता है। इस कारण प्रथम तो साधारण मनुष्य यह जानता ही नहीं तथा इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि मनुष्य दुःख मात्र से सदा के लिये मुक्त हो सकता है और शाश्वत आनन्द प्राप्त कर सकता है और यदि

कभी वह इस कथन में विश्वास भी कर लेता है और स्वयं भी उस सुखको प्राप्त करने की प्रबल रूचि भी करता है कि तत्काल मोह शत्रु आकर उसके विश्वास को और रुचि को पछाड़ कर ऐसा दुर्बल करता है कि तुरन्त उसको संशय और अनिच्छा उत्पन्न होती हैं और वह विचारने लगता है कि मुझे उसके लिये न मालुम कितने वर्ष और कितने भवतक धैर्य रखते हुवे केवल उसी की लगनमें लगे रहकर अन्य सब संसारिक सुखों से वंचित रहना पड़ेगा। न मालूम वह मिलेगा या नहीं मिलेगा किन्तु भोजन पान स्त्री, कुटुम्ब, मित्र, संसार के रंग इत्यादि सबका आनन्द तो खो देना ही पड़ेगा और निरानन्द (सुख रहित) जीवन विताना पड़े, मुझे भूलकर भी यह स्वीकार नहीं। लाखों में एक मनुष्य ऐसा निकलता है जो मोह पर विजय प्राप्त कर, विश्वास और रुचिको दृढ़ रखकर उसकी प्राप्ति का संकल्प कर लेता है और वह अवस्था प्राप्त हो तब-तक धैर्य और साहस के साथ उसकी साधना में एकचित्त होकर लीन रहता है। और जब सफल हो जाता है तब मनुष्य नहीं रहता किन्तु मनुष्य मात्र का वन्दनीय हो जाता है।

यहां तो हमको अब उन्हीं स्वजाति बन्धुओं और बहिनों के विषय में ही विचार करना है जो मोह अरि को विजय नहीं कर चुके हैं और तत्कालिक सुख का भी त्याग नहीं कर चुके हैं तथा जो कुटुम्ब मोहमें आनंदित होते हैं उनकी अपेक्षा से हमको यहां उन्नति का स्वरूप विचारना है।

आरोग्यता और बल।

(१) प्रत्येक व्यक्तिकी (बालक, बालिका, स्त्री, पुरुष हरएक

की) आरोग्यता (तन्दुरुस्ती) उत्तम होना चाहिये तथा उसका शरीर पुष्ट (ताकतवर) होना चाहिये ।

द्रव्य आय ।

(२) प्रत्येक व्यक्ति (मनुष्य) के कुटुंबकी आय (आमदनी) इतनी अवश्य होना चाहिये जिसमे से ¾ (तीन चौथाई) भागसे निम्न लिखित आवश्यकताएँ उस कुटुंबकी अवश्य पूर्ण हो जावे ।

(अ) कुटुम्बको आरोग्य रक्षक बलवर्द्धक पर्याप्त (काफ़ी) भोजन मिल जावे ।

(आ) शुद्ध वायु युक्त, उत्तम पड़ोसियोंके बीच पर्याप्त (काफ़ी) निवास स्थान (मकान) हो ।

(इ) सर्दी गर्मीसे रक्षा करने योग्य वस्त्र पर्याप्त संख्यामें हो ।

(ई) बालक बालिकाओंको उनकी इच्छा हो जहां तक या कमसे कम साधारण विद्याध्ययन कराने योग्य व्यय पासमें हो ।

(उ) नित्यकी विविध आवश्यकतायें होती हैं समाचार पत्र, पुस्तकें, आवश्यक सामान, बर्तन, मजदूरी इत्यादि जिनके निमित्त पर्याप्ति व्यय हो ।

(ऊ) समय समय पर आजानेवाले औषध, वैद्य, जन्म, विवाह, मृत्यु इत्यादिके व्यय जो अनिवार्य है हो सके ।

(ए) बाध्य कर जो राज्य, प्रजा या जातिकी ओरसे हो तथा हार्दिक इच्छासे जो द्रव्य किसी संस्थाको या व्यक्तिको सुकृत उपयोगमें देनेको चाहिये और शेष ¼ (चौथाई) भागको इस निमित्त बचाया जा सके ।

(क) यदि किसी समय आय दुर्भाग्य से, वृद्ध हो जाने से, अशक्त हो जाने से नहीं हो तो उस समय चाहिये ।

(ख) यदि कुटुम्बमें उपार्जन कर्ता न रहे । स्त्री, बच्चों आदि के लिये चाहिये ।

(ये अनुमान से लिखे गये हैं । साधारण अवस्थानुसार लिखे हैं कहीं उपार्जन कर्त्ता कुटुम्ब में कम हो किन्तु कुटुम्व में जनसंख्या अधिक हो और कहीं जन संख्या कम हो और उनमें अधिकांश उपार्जन कर्त्ता ही हो तो इस परिस्थिति भेद के कारण व्यय और बचत में भी भेद करना पड़ेगा । तथा दान करने की न्यून वा अधिक रूचि के कारण भी भेद हो सकता है)।

विवाह और पुनर्विवाह ।

(३) प्रत्येक पुरूष को वा स्त्री को, यदि उस को कामवासना जीतने की न तो इच्छा हो, वा इच्छा हो किन्तु वह नहीं जीत सका हो, वह नहीं जीत सकी हो, और इसी तरह संतान की यदि उसको इच्छा हो और इसीलिये विवाह या पुनर्विवाह करके, एक स्त्रीपर संतोष करने तथा (स्त्री के लिये) एक पुरुष पर संतोष करने की इच्छा से, सदाचार पूर्वक जीवन व्यतीत करने की इच्छासे अथवा संतान प्राप्ति की इच्छा से यदि उनको विवाह या पुनर्विवाह करनेकी इच्छा हो तो उनको योग्य संगी मिल जाना चाहिये ताकि उनकी सदाचार पूर्वक जीवन बिताने‌की और संतान प्राप्तिकी इच्छा सफल होवे ।

जातिमें ऐसी परिस्थिति हो जिसमें कन्याओंके लिये योग्य वर मिल सकें, वरोंके लिये योग्य कन्याएँ मिल सकें। पुनर्विवाह के इच्छुक पुरुषोंको (विधुरोंको) पुनर्विवाहकी इच्छुक स्त्रियें (विधवायें) मिल सकें। कुमारी कन्यायें विधुर पुरुषोंको नहीं विवाही जावें किन्तु कुवारोंको ही विवाही जावें जो कुंआरी कन्यायें जिनकी उम्र चौदह वर्षकी हो गई है तथा जो वालविधवायें जिनकी उम्र पच्चीस वर्षसे कम हैं अपनी इच्छा लग्नकी तथा (विधवायें) पुनर्लग्नकी लज्जा के वश प्रगट नहीं भी करें तथापि उनके मातापिता उनको प्रयत्न करके समझा बुझाकर उनको विवाह तथा पुनर्विवाहके लिये राजी कर लेवें और कुमारियोंका विवाह कर दें और वालविधवाओंका पुनर्विवाह कर दें किन्तु जो २५ वर्षकी उम्रकी तथा आधिक उम्रकी विधवायें पुनर्विवाह करना नहीं चाहें तो उनके लिये तबतक किसी प्रकारकी चिन्ता न करें जबतक कि उनकी इच्छाका रंग बदला हुआ नहीं देखें किन्तु जब इच्छाका रंग भोगकी ओर बदलता देखें वा किसी साथिनीके द्वारा संकेत प्राप्त हो तो उसके माता, पिता, भाई आदिका कर्तव्य है कि उसके लिये योग्य स्वजातीय वरकी खोज करें और उसके लिये पुछवाने पर यदि उसको उज्र नहीं हो तो उसके साथ उस विधवाका पुनर्लग्न कर दें।

जातिमें ऐसी परिस्थिति होनी चाहिये कि पुनर्विवाह जिस प्रकार आजकल पुरुषका अनुचित नहीं समझा जाता है, उसी तरह स्त्रीका भी अनुचित नहीं समझा जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त विवाह और पुनर्विवाह बेजोड़ भी नहीं हों। कन्याकी अपेक्षा वरकी आयु कभी कम नहीं हो और लगभग ड्योढ़ी के हो किन्तु द्विगुण से

अधिक तो किसी भी दशामें कदापि भी नहीं हो। पुरुषको तथा स्त्रीको जो विवाह पुनर्विवाह के अधिकारके संबंधमें उपरोक्त वर्णन है उसमें पुरुष उसेही समझना चाहिये जिसकी उम्र कममें कम १८ वर्ष अवश्य है तथा स्त्री भी उसीको कही जा सकती है जिसकी कमसे कम १४ वर्ष उम्र अवश्य है। इसके पूर्व वे बालक, बालिकाओंकी श्रेणीमें हैं और विवाह आदिके अधिकारी नहीं होवें। इसी तरह जिनको कोई कष्टसाध्य वा असाध्य रोग हो रहा हो वा जिनकी इंद्रियां शक्तिहीन होगई हों या जिनकी आयु अत्यधिक होगई हो उनको भी विवाह करनेका वा पुनर्विवाह करनेका अधिकार नहीं हो, चाहे वह स्त्री हो वा पुरुष हो, कुंआरा हो या कुमारी हो तथा विधुर हो वा विधवा हो। क्योंकि उस विवाहका परिणाम संगीके तथा संतानोंके लिये बुरा हैं, तथा उनके स्वयं के हकमें भी हानिकारक है।

जो पुरुष या स्त्री विवाहके निमित्त वा पुनर्विवाहके निमित्त संगी ढूंढनेको प्रयत्न करें और उनको किन्हीं कारणोंसे कोई मिले ही नहीं और यदि कुंआरेकी उम्र २२ वर्षकी हो जावे, कुंआरीकी उम्र १८ वर्षकी हो जावे (कुंआरीको तो अवश्य मिलही जाती हैं) तथा विधुरकी स्त्रीको अन्त काल हुवे ५ वर्ष हो जावे तथा विधवाके पतिका अन्त काल हुवे ५ वर्ष हो जावे और तब भी वर नहीं मिले वरको पत्नी नहीं मिले, किन्तु वे कामेच्छाको नहीं रोक सकें तो उनको चाहिये कि अन्य जातिमें अपने लिये योग्य पुरुष या स्त्री ढूंढ ले और जातिकी अनुमतिसे उसके साथ विवाह करले। जिसके साथ विवाह किया जावे वह उस जातिका होना चाहिये जिसके भोजनादि, शौचादि, धार्मिकादि व्यवहार अपने ही समान हो।

संतानकी जाति वही मानी जावे जो पुरुषकी जाति हो। यदि जाति उनके कारणोंको सत्य देखें और जिनके (अन्य जातिके) साथ लग्न व्यवहार करनेमें किसी प्रकारसे अनुचित नहीं देखे तो उनको अनुमति दे देवें। श्रीमालोंके साथ भी ओसवालोंका लग्न व्यवहार इसी तरह प्रारम्भ हुवा। यदि इस पर भी कोई संगी नहीं मिले तो संतोष ही धारण करें। पर पुरुष गमन, परस्त्री गमन, वेश्यागमन नहीं करें।

ब्रह्मचर्य ।

(४) ब्रह्मचर्य एक प्रकारकी उच्च श्रेणीकी तपस्या है। उस तपस्याका परिणाम आत्मा और शरीरकी दोनोंकी रक्षा और उन्नति है। पूर्व कालमें इस तपस्याका बहुत प्रचार था, यह तपस्या प्रत्येक व्यक्ति करता था। बाल्य कालमें और वृद्ध कालमें तो पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करते ही थे किन्तु यौवन कालमें भी संयमी जीवन व्यतीत करते थे जो (उस समयकी प्रथोक अनुकूल) बहु विवाह कर लेते थे वे भी इसके पालनमें संयम धारण रखते थे। यही कारण था कि प्रायः सब मनुष्य बलवान् और बुद्धिमान होते थे। उस समय यह बाध्य रूपसे नहीं था, अनिवार्य रूपसे नहीं था किन्तु स्वेच्छापूर्वक पालन होता था। इसीलिये इसके आत्मिक फल तो होते ही थे कि वे अध्यात्म प्रेमी और आत्मोद्धारक होते थे किन्तु गृहस्थके प्रत्येक प्रयत्नमें भी उसके फल रूपमें सफलता सन्मुख खड़ी रहती थी।

आजकल तो ब्रह्मचर्य पालन अपनी जातिमें प्रायः अदृष्ट हो गया है। जो उमंगसे, रूचिसे, तप रूपमें ब्रह्मचर्यका पालन करते हो एक प्रतिशतसे अधिक कठिनाईसे ही मिलेंगे। जिनको जातिके नियमके अनुसार पुनर्विवाह करनेकी आज्ञा ही नहीं है और वे लाचार

अविवाहित रह करके मैथुन सेवन नहीं करती है चाहे उनको ब्रह्म-चारिणी मान लीजिये। जातिने अबला समझ कर ब्रह्मचर्य पालन का धर्म कहे या बोझ कहे इनके ही सिरपर लाद दिया है किन्तु उस दशामें वह ब्रह्मचर्य नहीं रहा। वह तो तब ब्रह्मचर्य होता यदि उनको पुनर्विवाहकी छूट होती तथापि वे स्वेच्छासे हृदयकी इच्छासे पालन करतीं।

ब्रह्मचर्य का यथा शक्ति पालन प्रत्येक व्यक्ति निम्न लिखित व्यवस्था के अनुसार अवश्य करे जिससे जातिमें शरीर बल में वृद्धि हो क्योंकि ब्रह्मचर्य ऐसी उत्तम और लाभ दायक वस्तु है कि सब के लिये आवश्यकता है।

(अ) प्रत्येक बालक का विवाह १८ वर्ष से कम उम्रमें कदापि नहीं हो तथा बालिका का विवाह १४ वर्ष से कम उम्रमें कदापि नहीं हो इतनी उम्र तक उनके मनमें भी भोगेच्छा उत्पन्न नहीं हो, ताकि उनका शरीर और वीर्य यथेष्ट पुष्ट परिपक्व हो सकें। उनकी रूचि उस उम्रमें विद्या की ओर ऐसी हार्दिक लगे कि अन्य ओर उन की रूचि होवे ही नहीं।

(आ) प्रथम वार वा द्वितीय वार विवाहित होकर जो पति पत्नी एक संगी साथी जैसा जीवन व्यतीत कर रहे हैं वे पार-स्परिक सह मति से ब्रह्मचर्य पालन के लिये प्रयत्न किया करें इसमें व्रतों के द्वारा शनैः शनैः आगे बढ़े और इस प्रकार किसी दिन कामवासना पर पूर्ण विजय प्राप्त कर लेगें जिससे उनका शरीर वृद्धावस्था में भी सशक्त रहे

और उनको वृद्धावस्था में शक्ति हीनता तथा इन्द्रियों की अशक्ति के कारण कष्ट और दुःख न भोगने पड़ें।

(इ) जिनकी उम्र ५० वर्ष के लगभग पहुंच गई है (स्त्री की ४५ के लगभग पहुँच गई है) और सौभाग्य से पति पत्नी की शारीरिक शक्ति और इन्द्रियों की शक्ति या अभी दुरूस्त है तो वे अब तो वृद्धावस्था को सुख पूर्वक व्यतीत करने के निमित्त तुरन्त विषयेच्छा को त्याग कर दें और विषय नहीं सेवन करनेका व्रत ले ले इसी से वृद्धावस्था में उनको शारीरिक कष्ट न होंगे, सहजही में काल भी गर्दन नहीं दबा सकेगा और पर भव सुधारने के निमित्त धर्म ध्यानभी अच्छा और अधिक बन आ सकेगा।

(ई) जिनकी उम्र ४० वर्ष से ऊपर पहुँच गई है उनके लिये भी उत्तम तो यही है कि वे यदि उनकी पत्नी का देहान्त हो चुका है तो अब संतोष धारण करें और पुनर्विवाह न करे ताकि वृद्धावस्था में उनको द्रव्योपार्जन में तथा कौटुंबिक अन्य कार्यों में शांति प्राप्त हो। पर भव सुधारने के निमित्त धर्म ध्यान आसानी से कर सके तथा बलवान शरीर से जातिकी सेवा उस पिछली उम्र में तो कर सके। यदि इतना नहीं हो सके और उन्हें विवाह करना ही हो तो केवळ विधवा से ही पुनर्विवाह करें। कुमारी से विवाह नहीं करें। और यथा संभव कम मैथुन सेवन करनेका प्रयत्न रखे जिससे शरीरमें शक्ति बनी रहे और उम्र भी पूरी पावे अन्यथा उस उम्रमें काम सेवन अधिक हो तो बड़ा हानिकारक है।

ब्रह्मचर्य पालनके प्रयत्नके निमित्त जो व्यवस्था आवश्यक बतलाई है उससे भी अधिक आवश्यकता इस बातकी है कि हमारी जातिमें कोई भी पुरुष परस्त्री गमन नहीं करें तथा वेश्या गमन नहीं करें। कोई भी स्त्री परपुरुष गमन कदापि किसी दशामें भी नहीं करें। विवाहित के अतिरिक्त किसी भी पुरुषका और स्त्रीका कामभावयुक्त संबंध समाज व्यवस्थाके लिये अत्यन्त अनिष्टकर है और महापाप है। इसलिये हमारी जातिमें कोई ऐसा नहीं करे।

हमारी जातिमें कोई भी बालक कुसंगतिमें लग कर प्रकृति विरुद्ध कर्म नहीं सीख ले जिससे उसको उम्रभर दुराचरणोंमें लगे रहने की ओर उम्र व्यर्थ जानेकी संभावना है अतएव हमारी जातिके बालकोंकी संगति उत्तम हो।

हमारे यहां कुशीलके गायन स्त्रियें नहीं गावें जिससे हमारे बालक, बालिकाओंके और स्त्रीपुरुषोंके चरित्रको हानि पहुँचनेकी संभावना हो तथा हमारी असभ्यता प्रगट होती हो।

इसी तरह हमारी जातिके पुरुष भी होली आदि अवसरोंपर अश्लील गायन न गावें तथा विवाह आदि हर्ष अवसरोंपर वेश्याओंके नाच-गान नहीं करावें जिससे चरित्रभ्रष्टता उत्पन्न होनेकी संभावना हो।

सन्तान।

(५) प्रत्येक पतिपत्नीरूपी युगलके संतान भी अवश्य हो। पुत्र भी हो, पुत्री भी हो। ताकि उनका वंश तो चले ही, उनकी मनोप्रसन्नता और लालनपालनका आनन्द तो उन्हें मिले ही, उनकी प्रिय ओसवाल जातिकी जनसंख्या भी बढ़े और उनके सहधर्मियोंकी संख्या भी बढ़े एवं उनकी जाति और धर्मसंसारमें अधिक समय तक

कायम रहे और अपनी सभ्यतासे संसारको पवित्र करे, सुशोभित करे और लाभ पहुचावे ।

प्रकृति देवीका ऐसा शासन है कि यदि हमारी जाति संसारके लिये कुछ लाभदायक, उपयोगी न हो तो वह अधिक कालतक नहीं टिक सकती । इसलिये हमारा कर्तव्य है कि अपनी संतानको बाल्य कालसे ही योग्य बनानेका ध्यान रखें अयोग्य दुर्बल, रोगी संन्तानसे तो लाभके स्थानमें हानि होती है। कुटुम्बके लिये, जातिके लिये और संसारके लिये वे और बोझरूप होते हैं इसलिये अपनी संतानको बाल्य कालसे ही योग्य बनानेकी चेष्टा रखें ।

योग्य बनानेके लिये स्वाभाविक कम खर्चकी उत्तमोत्तम शैली यदि कोई हो सकती है तो वह हमारे घर हैं और सर्वोत्तम शिक्षक माताएँ हैं । इन माताओंके द्वारा ही बालक ऐसे योग्य बन सकते हैं वे जगत्को महान् लाभदायक हों ।

माता ही बाल्य कालसे उनको आरोग्य बलवान्, बुद्धिमान, विद्या-प्रेमी, वीर, सेवाभावी, दयालु, विनयवान् और परिश्रमी बना सकती हैं । ये कार्य जितनी आसानीसे माताके द्वारा हो सकता है उतना अन्य किसीसे नहीं हो सकता ।

द्वितीय श्रेणीके शिक्षक पिता तथा अन्य कुटुम्बी हैं जो माताकी अपेक्षा किसी अल्प अंशमें उक्त गुणोंके संस्कार प्रवेश करने योग्य हो सकते हैं ।

इनके पश्चात् उन गुरुजीकी उपयोगिता है वा उन गुरुकुलोंकी उपयेगिता है जहां रहकर बालक, बालिकाएँ, उत्तम संस्कार ग्रहण करके योग्य बन सकें ।

विद्यालय और शिक्षालय, पाठशालाएँ और कन्याशालाएँ भी किसी अंशमें उपयोगी हैं जहां पर शिक्षा तो विशेष प्राप्त हो सकती है और अल्पांशमें योग्यताके उत्तम संस्कार भी प्राप्त हो सकते हैं।

यदि हमारी जातिकी संतानें योग्य बन जावें तो हमारी भविष्यकी उन्नति निःसंदेह है। केवल शिक्षा यद्यपि उन्नति नहीं है तथापि शिक्षा द्वारा योग्य बननेमें सहायता भी काफ़ी मिलती है।

इसलिये जातिके प्रत्येक पुरुष और स्त्री सन्तानको प्राप्त करके जिस तरह अपना सद्भाग्य मानते हैं उसी प्रकार उनको सुपुत्र और सुपुत्री बना कर भी अपना सद्भाग्य माने और उसके लिये वे उनको बाल्य कालसे ही उत्तम आरोग्य से, शारीरिक पुष्टिसे, उत्तम व्यवहार के द्वारा, उत्तम संस्कारों से और उच्च शिक्षा से ऐसा विभूषित करें कि उनके इस कार्य से उनका नाम सुयश रहे और ओसवाल जातिकी प्रतिष्ठा बढ़े।

पारस्परिक संप (एकता)।

(६) हमारी जातिका प्रत्येक व्यक्ति संप के महत्व को ऐसा समझने वाला और व्यवहार में (वर्ताव में) रखने वाला हो कि उसके कारण कुटुम्ब में, जातिमें, नगरमें, कभी कहीं कलह उत्पन्न नहीं हो किन्तु सुख शान्ति बनी रहे। जिस प्रकार एक चिनगारी से ग्राम और नगर भस्म हो जाते हैं, जिस प्रकार एक जरासी खटाईसे मणभर दूध फट जाता है उसी प्रकार एक मनुष्य की अज्ञानता के वश सैकड़ों में कलह उत्पन्न हो कर कुसंप उत्पन्न हो जाते हैं, कुटुम्ब नाश हो जाते हैं और जातियां अशक्त हो जाती हैं। अन्य लोगों की हुकूमत हो जाती हैं तब तृण के समान कुचले जाते

हैं। इसके लिये (संपके लिये) कुटुम्ब में, जातिमें प्रत्येक मनुष्य को रूचि रखना चाहिये। स्वयं स्वार्थी बनकर किसीका हक मारे नहीं, अपशब्द कहे नहीं और यदि दुसरा व्यक्ति ऐसा करे तो शक्ति भर सहन करने का प्रयत्न करे जिससे ही वह ठिकाने आ जावेगा। विनय से, विवेकसे, कौशलसे प्रयत्न करने पर भी यदि ठिकाने नही आवे तो उसको ठिकाने लाने के लिये अन्य मित्रों, स्वजातीयों की सहायता से प्रयत्न करें तिस पर भी ठिकाने नहीं आवे तो ऐसे मार्ग से वह काम ले जिससे सफलता होवे किन्तु अन्य विषयों में हानि न पहुँचे। बहुधा एक कुटुंबी दूसरे कुटुम्बीसे अदालत के द्वारा जीत जाता है किन्तु जीतने पर एक विषयमें तो उस जीतने वाले को लाभ हो जाता है किन्तु अन्य विषयों में महान् हानी हो जाती है जो परस्पर वैमनस्य के कारण मात्रसे होती है और तीसरे को अनुचित लाभ उठाने का अवसर प्राप्त हो जाता है इसलिये संप की आवश्यकता, उपयोगिता, समूह बल और उसकी अनुपम शक्ति और लाभ प्रत्येक व्यक्ति के ध्यान में सदा रहें और व्यवहार में रखने का सदा उनका प्रयत्न रहें। जिससे फूट राक्षसी उनका बाल भी बांका नहीं कर सके और ओसवाल जातिमें कहीं कौटुम्बिक कुसंपसे कलह और दुःख प्रतीत न हो। जाति के धड़ों और बखेड़ों से भी कुटुंबों में फूट विशेष दुःखदायी होती है।

सदाचार।

(७) हमारी जातिकी प्रत्येक व्यक्ति सदाचारी हो तथा साधारण तया जो पुरुष पर स्त्री गमन न करे तथा जो स्त्री परपुरुष गमन नहीं करे उसको हम लोग सदाचारी कहते हैं किन्तु इस गुणके अतिरिक्त

अन्य कितने ही गुण भी हैं जो सदाचारीके लिये आवश्यक हैं। वे गुण हमारे प्रत्येक ओसवाल स्त्रीपुरुषोंमें और बालक बालिकाओंमें हों।

(अ) उनके हृदयमें दयालुता हो, कृपालुता हो, निरर्थक तो मनुष्य क्या सूक्ष्म जन्तुको भी वे दुख देना पसन्द नहीं करें किन्तु समयपर इतनी सहानुभूतिपूर्ण उनकी कृपालुता रहती हो कि स्वयं कष्ट सहकर भी अन्यके हितमें तत्पर रहते हो, उनके स्वभावमें विनय हो उपकार करके भी अभिमान करना वे नहीं जानते हों, स्वभाव भी ऐसा शांतिप्रिय हो कि अन्य क्रोधी मनुष्य अपने क्रोध और कलह कदाग्रहको उनके सन्मुख भूल जावे, सहनशीलता उनमें ऐसी हो कि स्वयं की हानि हो जानेपर भी न तो उसकी शिकायत कहीं जाकर करें, न औरोंके आगे निन्दा करे, और न उसको ताना या उलहाना (ओलंबा) देवे तथा न उससे द्वेष रखें और सदा निश्चिंत प्रसन्न मुख रहे और हृदय और मुखसे प्रेमकी किरणें फैला करती हो।

(आ) सत्यके भक्त वे इस दर्जेके हों कि सत्यके अतिरिक्त अन्य वचन तो उनके मुखसे निकलनाही असम्भव हो। सत्य पर उनका इतना दृढ़ विश्वास हो कि चाहे मृत्यु कष्ट भी सन्मुख आजावे तो भी सत्यको छोड़नेको तैयार वे कदापि न होंगे। चाहे कितनी ही संपत्ति उनको प्राप्त हो सकती हो किन्तु सत्य पर अटल रहेंगे सत्य ही उनका धर्म है और सत्यही उनका परमेश्वर है ऐसी

अटल श्रद्धा सत्य पर हो इस कारण उनसे यह तो कभी भय ही नहीं रखा जा सके कि वे अन्यकी वस्तु बग़ैर उसकी आज्ञाके ले लेंगे, कपट करके ठग लेंगे वा अनधिकारसे दबा लेंगे, किसीको जबर्दस्तीसे कुछ काम करनेको मजबूर करेंगे। स्वयं अपने निमित्त कुटुंबमें सुख भोगके सब प्रकारके अधिकार उचित और यथेष्ट मानेंगे किन्तु उनके लिये जो किसी भी तरहसे दुर्बल है अधिकार हीन हैं, अबला अशिक्षित स्त्रियां हैं वा अशिक्षित मनुष्य हैं उनके सुख साधनके तथा उन्नत होनेके अधिकारोंको हीन मानेंगे। वे न तो नाहक अन्याय सहना पसन्द करेंगे और न अन्याय करना पसन्द करेंगे। न किसीसे वे भय खावेंगे और न किसी को भयभीत करना पसन्द करेंगे। न स्वयं पक्षपात करेंगे, न अन्य से अपने निमित्त पक्षपात करावेंगे। न अधिक लालच करेंगे और न अधिक द्रव्य की चिन्ता करेंगे किन्तु संतोष पूर्वक सुखी रहकर जो प्राप्त हो जावे उसमें ही अत्यन्त आनन्द मानेंगे। वे सदा समवृत्ति में रहेंगे न कभी अत्याधिक हर्षित इतने हो जावें कि सुध ही भूल जावें और न कभी इतने शोक ग्रसित हो जावें कि उनकी देह ही सूख कर कांटा हो जावे उन्हें पता नहीं। और वे सदा सत्य अर्थात् तत्त्वको दृष्टि में रखेंगे न कि वे रूढि के भक्त होंगे।

तपस्याके सर्वोत्कृष्ट रूप "सत्य" की साधना में जब हम

लगेंगे तब ही मिथ्यात्वका नाश होकर सत्यकी ज्योति प्रगट होगी। " सत्य पर श्रद्धा अटल रूप से रखना " ही " सम्यकत्व " है। " सत्य " को पालन करना ही चरित्र है और सत्य स्वरूप को प्राप्त कर लेना ही मोक्ष है।

यदि संक्षेप से कहें तो इतनाही कहा जाना काफ़ी है कि हमारी जातिके प्रत्येक व्यक्तिका मन, वचन, शरीरका व्यवहार सत्य, न्याय नीति पूर्वक तथा प्रेम, दया, कृपा और अहिंसा पूर्वक हो। घरमें प्रत्येक व्याक्ति के इस प्रकार के व्यवहार से बालक, बालिकाओं में ये संस्कार स्वतः उत्पन्न हो जावेंगे।

शिक्षा

(८) हमारी जातिमें प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित होना चाहिये अधिकाधिक शिक्षाकी प्राप्तिके लिये बालक, बालिका, युवक, युवती, वृद्ध और वृद्धा सबकी रूचि और प्रयत्न सदा रहे।

" शिक्षाका " अर्थ है " सीखना "। जो कुछ भी हम सीखते हैं सब शिक्षा ही है। यदि हमने किसीकी संगति में रहकर किसी प्रकारकी भाषा सीखली, कारीगरी सीखली, द्रव्योपार्जनकी कला सीखली, या ठगोंसे बचना सीखलिया अथवा कोई भी कार्य अथवा कोई भी विद्या ऐसी सीखली जो हमारे लिये भविष्यमें वा वर्तमानमें लाभदायक है वही शिक्षा है।

केवल पाठशालामें जाकर पढ़नेका नाम शिक्षा नहीं है जैसा कि हम समझते हैं। हमको हमारी माता शैशव कालमें (बहुत छोटी

उम्रमें) अनेक बातें सिखलाती है जिनको सीखकर हम लाभ उठाते हैं, हमारे पिता, भाई, भोजाई, आदिभी अनेक बातें सिखलाते हैं कितनी ही बातें हम स्वयं देखकर (बगैर सिखलाये ही) सीख जाते हैं और उनसे लाभ उठाते हैं। पाठशालोंमें जाकर हम लिखनेकी, पढ़नेकी, भाषा समझनेकी, समाझानेकी, गणीतकी, इतिहासकी इत्यादि शिक्षा पाते हैं जिससे हमारी बुद्धि भी अधिकाधिक बढ़ती जाती है और हमारी विद्वता भी अधिक बढ़ती जाती है।

इस जानकारीके द्वारा और बुद्धिके द्वारा हमको अपना जीवन आनन्द पूर्ण बितानेमें तथा कष्टादिसे बचते रहनेमें बड़ी सहायता मिलती है। इससे उदरपूर्ति आदिकी तथा अन्य आवश्यकताओंकी पूर्तिके निमित्त द्रव्योपार्जनमें भी बड़ी सहायता प्राप्त होती है। इस शिक्षामें सदाचार और अध्यात्म भी समावेश किया हुवा होता है और हमारा शिक्षक प्रभावशाली होता है तो यही शिक्षा हमारेमें सदाचार और आत्मोद्धारकी रूचि उत्पन्न कर देती है और हमको उसकी ओर आगे बढ़ाती रहती है किन्तु यदि उसको शिक्षामें स्थान नहीं होता है तो हम उस शिक्षाके द्वारा जीवनके आनन्द उड़ानेमें और कष्टासे बचते रहनेमें तदर्थ द्रव्य संग्रह करनेमें तो खूब ही लाभ उठाते हैं।

पाठशालासे निकल कर उदर संग्राममें आ जाने परभी यदि हम रूचि रखकर उत्तम उत्तम पुस्तकें पढते रहते हैं समाचारपत्र,

---

१ " संतानके भावी सुखदुःख और उन्नति अवनति के सभी आधार केवल माताके गुणदोष उपर मात्र रहे हुए हैं और मैं मेरी माताके शिक्षणके प्रतापसे ही इतना ज्ञान और उन्नति प्राप्त करनेमें भाग्यशाली हुआ हूँ। "

नेपोलियन—।

मासिकपत्र, धर्मग्रंथ इत्यादि पढ़ते रहते हैं तो शनैः शनैः हमारी विद्वत्ता और बुद्धि बढ़ती जाती है। और जितना अंश हमको जिस जिस विषयका पढ़नेके लिये मिलता जाता है उतनी ही हमारी जानकारी बढ़ती जाती है इसी तरह उपदेशकोंके, धर्मगुरूओंके व्याख्यान सुननेसे भी जानकारी बढ़ती जाती है और बुद्धिभी खूब बढ़ती जाती है।

इन सब में से जो अंश अपने सदाचार के निमित्त तथा आत्मोद्धार के निमित्त हम ग्रहण कर लेते हैं वही हमारे लिये ज्ञान प्राप्ति है। जिससे हम इस भव के अतिरिक्त भविष्य के लिये भी लाभ उठा लेते हैं और मनुष्य जीवन सफल कर लेते हैं।

(अ) किन्तु यह भी भूलना नहीं चाहिये कि जो कोई हानिकारक बातें हम कहीं से सीख लेते हैं ये "शिक्षा" नहीं है कुशिक्षा है।

(आ) जो विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता सम्पादन की है उसमें यदि सदाचार की तथा अध्यात्म की शिक्षा नहीं हैं तो वह हमको केवल विद्वान और बुद्धिमान बनाने योग्य मात्र है।

(इ) और जो हमने विद्याबल और बुद्धिबल का उचित उपयोग नहीं किया तो वह सब हमको निरर्थक है और हानिकारक भी है जैसे की शरीर बल से किसी की सेवा भी हो सक्ती है और किसी की हत्या भी हो सकती है। सेवा की जावे तो यह बल दैविक बल है और हत्या की जावे तो यही बल राक्षसी बल है। इसी तरह विद्या और बुद्धि का उपयोग ही उसका गुण और अवगुण है। जिस प्रकार हम राक्षसी उपयोग से

नहीं घबरा कर देह में अपने लिये बल की अभिलाषा रखते हैं ताकि उससे स्वयं भी सुखी हों और अन्य को भी सुख पहुंचावें इसी प्रकार ओसवाल जाति के लिये भी आवश्यकता है कि बालक से लेकर वृद्ध तक को शिक्षा प्राप्ति में रूचि हो उनका मृत्यु पर्य्यन्त प्रयत्न चलता रहे, वे शिक्षा ग्रहण करते रहें।

सदाचार से इस जीवन को पवित्र करें, विद्वता से इस जीवन को सुशोभित करें, बुद्धिबल से जीवन के कष्टोंको चूर चूर करें, अपने ज्ञान बल से अध्यात्म में रूचि बढ़ावे और आत्मोद्धार में लग कर अपना और जगतका भी लाभ करें।

इस निमित्त हमारे प्रत्येक ओसवाल भाई के सुभीते के लिये उत्तम उत्तम शिक्षा शैली वाली बाल शालाएँ, कन्या शालाएँ, छात्रालय, गुरूकुल, हाईस्कूल, कालेज आदि जाति की ओर से होवें। छात्रों को सहायता करनेवाले, ऋण देनेवाले फंड होवें और स्त्रियों को शिक्षित करने के लिये विशेष प्रकार की महिला शालाएँ हों। इनके अतिरिक्त ऐसे पुस्तकालय भी जाति में खूब हों जो उत्तम उत्तम पुस्तकों को, समाचार पत्रादिको वाचने की जाति में रूचि उत्पन्न करें और सुविधा उत्पन्न करें।

यदि जातिभाई इस आवश्यकता को समझ लें और गरीब और अमीर, विद्वान्, बुद्धिमान सब ही इस प्रयत्न में लगें तो जाति में शिक्षा का उचित प्रचार हो जाना विशेष कठिन नहीं है।

अभी तक हमारे समाज के बहुत से बूढ़े लोग स्त्रियों को न पढ़ाने के हिमायत करते हैं वे कहते हैं पढ़ने से स्त्रियां बिगड़ जाती

हैं इधर उधर पत्र लिखने लगती हैं और स्वछंद बन जाती हैं आदि। उन्हें पढ़नेसे क्या प्रयोजन ? ये सब दलीलें अब निर्मूल हो चुकी हैं। यदि शिक्षा से बिगाड़ ही होता है तो पुरुष शिक्षा से पुरुषों का भी होना चाहिये। जिस शिक्षा से बिगाड़ होता हो वह शिक्षा नहीं कुशिक्षा है और ऐसी शिक्षासे बचना चाहिये। किन्तु कुशिक्षा को ही समझ कर शिक्षा मात्र का विरोध करना निरि अज्ञानता है। बुराई शिक्षा में नहीं है, बुराई उसके दुरुपयोग करने में है। अतएव ये सब दोष शिक्षा के माथे नहीं मढ़े जा सकते। स्त्री शिक्षाका प्रचार न होनेसे ही माताएँ मातृत्व के भार को नहीं समझती हैं। सन्तान पालन का कार्य इन्हीं अशिक्षिता स्त्रियों के द्वारा सम्पादन किया जाता है और यही कारण है कि समाज में मूर्खों की संख्याकी वृद्धि हो रही है। जो समाज उत्कर्ष में बाधक हो जाते हैं। यदि माताएं शिक्षिता हो तो सन्तान के मनोभावों को जानकर उनकी पूर्ति कर सकती हैं, बच्चे में सुसंस्कारों का निर्माण कर सकती हैं जो स्थाई रहकर उसके भावी जीवन के लिये सुखकर होती हैं।

स्वावलम्बन।

(९) ओसवाल जाति का प्रत्येक पुरुष स्वावलंबी होवे। अर्थात् अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर सके अन्य का मुँह नहीं देखे। वर्तमान युगमें जो दूसरों का मुंह देखता है उसको बड़ी बड़ी दुविधायें उठानी पड़ती हैं। या तो खर्च करने के लिये प्रर्याप्त द्रव्य पासमें होवे तो काम चलता है अथवा अपने आप स्वयं काम कर सके तो कार्य चलता है। इस जमाने में जितना खर्च अपनी व्यर्थ

खर्ची वा जरुरी खर्ची के कारण लोगों का बढ़ गया है उससे अधिक लोगों की लोभ वृत्ति बढ़ गई है इसलिये थोड़े पैसे देकर काम कराना वा थोड़ा मुनाफा देकर अनावश्यक या आवश्यक वस्तुएँ खरीदना कठिन हो गया है। अस्तु जितना भी काम अपने हाथों से किया जा सके उसको स्वयं करना तथा जो सामान घर में तैयार हो सके उसको घरमें तैयार कर लेना ही चतुराई है।

आजकल के जमाने में तो द्रव्य वालों को भी खर्च से हैरानी है। तत्र साधारण मध्यस्थ वर्गका तो कहना ही क्या है। अब हमारी ये नज़ाकत नहीं चल सकती कि हमें बाजारसे सौदा लाते भी शर्म आवे। दो सेर बोझ बाजारसे लानेमें भी घर से नौकर साथ होना चाहिए। अब तो हरएक ऐसे वैसे काम भी अपने हाथसे ही करने से काम चलेगा। अन्यथा वही हालत होगी कि ९ की आमदानी और १३ का खर्च। अब साधारण आय में पहिले जैसी अमीरी नगरोंमें तो नहीं बन आ सकती।

जरा गहरा विचार करें तो हमारी ही बुद्धि दुरुस्त करनेको यह ज़माना तशरीफ लाया है। इसलिये हमको इस जमानेका अहसान मंद होना लाज़िम है।

हमारे हाथोंमें बल होते हुवे यदि हम उनसे काम नहीं लें, पैरोंमें बल होते हुवे यदि हम पैदल न चलकर सवारीमें चलें, और शरीरमें बल होते हुवे यदि हम उससे जराभी श्रम नहीं लें तो फिर यह सारा बल क्या पूजा किये जानेके लिये ? जब हम इसको उपयोगमें नहीं लेते तो यह हमारे पास रहने भी क्यों लगा ? तब ही तो हममें बल घट गया और परिश्रमी जातियेंमें बढ़ गया और यदि हम उस

हाथसे काम करनेमें अपनेको नीचा मान लेते हैं और हाथसे नहीं काम करनेसे अपनेको ऊँचा मान लेते हैं तो क्या यह हमारा मिथ्याभिमान नहीं है ? यदि हाथसे काम नहीं करनेसे ही हम ऊँचे बन जाते हों तो न तो हमें पाठशालाओंमें मगज व्यर्थ खराब करना चाहिये और न अपने हाथसे भोजन ही जीमना चाहिये ? हम तो यहां तक प्रमादी बन गये कि हमें भूखों मरना स्वीकार हो जावे, अनीति करना स्वीकार हो जावे किन्तु शारीरिक श्रमसे उदरपूर्ति हो सकती हो तो कदापि करनेको तैयार नहीं उसमें हमारी पोजीशन हल्की हो जाती है किन्तु अब जब कि पढ़े लिखोंकी अपेक्षा हाथसे काम करनेवालोंको धंधा सहजमें मिलने लगा है और पढ़े लिखोंको कठिनाईसे मिलने लगा है। तब हमको लाचारन वह धंधा भी करना प्रारंभ कर देना पड़ा है चाहे बुरा समझे वा अच्छा समझे।

अपनी जातिमें २० वर्ष पहिले हाथसे काम करके उपार्जन करनेवाले किसी भी कारखानेमें नौकरी करते हुवे शायद ही कोई मिलते थे किन्तु अब अनेकोंको करना ही पड़ रहा है। हमको चाहिये था कि हम हाथसे काम करनेसे घृणा नहीं करते, उसे नीचा नहीं समझते ताकि आज वह दिन नही आता कि हमको भी वही काम करना पड़ता।

हमारी जातिके प्रत्येक पुरुषको यह अपना परम कर्तव्य समझ लेना चाहिये कि हम मेहनत करके खावें। बगैर मेहनत करके खाना पाप समझें। चाहे मस्तिष्ककी मेहनत करके ही कमावें, खावें। जिस तरह गुमाश्ते, क्लार्क, व्यापारी, वैद्य, डाक्टर, वकील, जज इत्यादि, चाहे शारिरिक मेहनत करके कमावें खावें जैसे दर्जी, खाती,

सुनार, जुलाहा आदि, किन्तु बगैर मेहनत किये नहीं खावें । जिसक भीतर मेहनत करके खानेकी योग्यता है उसको मेहनत किये बगैर खाना किस प्रकार शोभा देता है ? बगैर मेहनत किये खाना जैसे व्याज खाना, भाड़ा खाना, शेएरोंका प्रॉफिट खाना इत्यादि तो वृद्धोंको, विधवाओंको वा बालकोंको तो किसी प्रकार उचित भी हो सकता है परन्तु नौजवान पुरुषोंको ऐसा करना न तो शोभा देता है और न योग्य है। अधिक उत्तम तो यह हो कि हम शारीरिक मेहनतसे उपार्जन कर उदरपूर्ति करें क्योंकि शरीरके निमित्त शरीरका ही परिश्रम चाहिये किन्तु बगैर शारीरिक या मस्तिष्क किसी भी प्रकारका श्रम किये बगैर भोजन करना तो फोकटिया खाना है।

बादशाह औरंगजेब अपने निजका जितना खर्च था उतना टोपियां सी सी कर उससे निकालता था और राज्यसे अपने निजके निमित्त एक पाई भी नहीं लेता था। यदि हम इस युगमें भी स्वावलंबनका पाठ नहीं सीखे तो कब सीखेंगे। स्वावलंबनसे ही हम शरीरकी शक्तिकी आवश्यकता और महत्वको पहचानेंगे, अपने आपमें विश्वास उत्पन्न करेंगे, अपना मार्ग आप ढूँढेंगे और पावेंगे। यदि इस युगमें भी हमारे उन भाईयोंकी अक्ल दुरुस्त नहीं हुई, जो दिन चढ़े उठना, चिलमें पी पी कर दिन पूरा करना और या तो व्याज भाड़ेपर बसर करना या पूँजीमेंसे खाना किन्तु मेहनत किसी प्रकार की नहीं करना इस तरह जीवन व्यतीत कर रहे हैं तो न मालूम उनकी समझ दुरुस्त करनेके लिये कौनसा जमाना और आवेगा ?

यदि हम स्वयं श्रम करके उपार्जन नहीं करते तो इसका यह अर्थ है कि हमारे लिये कोई अन्य उपार्जन करता है। यदि अन्यके

उपार्जन पर वसर करनेवालोंको सदा परतंत्र रहता ही देखा जाता है तो इन लक्षणोंसे अपनी परतंत्रता क्या स्वयं बढ़ा देना नहीं है और स्वावलंवनक द्वारा परतंत्रतासे मुक्त होकर स्वतंत्र होनेका मार्ग ग्रहण कर लेना क्या नहीं है ?

कर्तव्यपरायणता

(१०) हमारी जातिका प्रत्येक व्यक्ति कर्तव्यपरायण हो । इस कर्तव्यपरायणताकी मर्यादा सदाचारकी मर्यादासे भी किसी प्रकार कम विस्तारकी नहीं है । यद्यपि दोनोंमें सूक्ष्म भेद है तथापि दोनोंकी कोई मर्यादा ही नहीं है । और कर्तव्यपरायणता तो मनुष्यको सदाचारसे भी आगे बढ़नेके लिये खैंच लेती है । मनुष्य ज्यों ज्यों अपने कर्तव्योंको जानता जाता है और करता जाता है त्यों त्यों ही कर्तव्य भी आगेसे आगे सन्मुख तैयार रहते हैं । यदि पालन नहीं करता है तो किसी कामका नहीं रहता है पशुमात्र बन जाता है, और पालन करता है तो पूर्ण ही नहीं होते, करोड़ोंमें एकही शायद पूर्ण कर्तव्यपरायणता तक पहुँचता है तथापि शक्तिभर उसके लिये प्रयत्न करना ही मनुष्य जन्मकी उपयोगिता है ।

सदाचारकी मार्गकी अपेक्षा कर्तव्यपरायणताका मार्ग बड़ा टेढ़ा है । सदाचारके पालनमें तो केवल हृदय बल का ही उपयोग होता है किन्तु इसमें तो बुद्धिबलकी भी आवश्यकता होती है ।

श्रीकृष्णजी महाराजके पास दुर्योधन और अर्जुन दोनोंही सहायता प्रदान करने की प्रार्थना कर रहे हैं किसकी सहायता करें ? किससे राग है ? पहिले आया उसकी करें या पीछे आया जिसकी करें ? पैरोंकी ओर आकर बैठा पहिले दृष्टि पड़ी उसकी करें वा मस्तककी

ओर आकर बैठा और पीछे दृष्टि पड़ी उसकी करें ? सदाचार कहता है कि सत्य पांडवोंकी ओर है उनकी ही सहायता करना उचित है। और कर्तव्यपरायणता कुछ और ही कह रही है क्या करना चाहिये ? अन्तमें निश्चय करते हैं कि एक ओर निःशस्त्रमें स्वयं रहूंगा दूसरी ओर मेरी सेना सशस्त्र रहेगी।

इसी तरह भगवान महावीरको एक ओर सदाचार खैंचता है कि विवाह करके गृहस्थ चलाना है या तपस्या करके कैवल्य प्राप्त करना है ? दूसरी ओर कर्तव्यपरायणता खैंचती है कि क्या तुम्हें स्वीकार है कि तुम अन्य जीवोंपर तो उनके कष्ट देखकर करुणा लाते हो किन्तु तुम्हारी माताका जिसका इतना प्रेम तुमपर है कि तुम्हें यदि विवाह करनेकी आज्ञा नहीं मानते देखेंगी और दीक्षा ग्रहण करते देखेंगी तो रो रो करके ही शीघ्र मर जावेगी। जिस माताने तुम्हारे लिये गर्भ-वेदना, प्रसववेदना, लालनपालनके कष्ट सहन किये उस माताके प्राणोंपर भी कुछ करुणा नहीं ? बस भगवान्को माताकी आज्ञा शिरो-धार्य करना पड़ता है और विवाह करना ही पड़ता है।

कर्तव्यपरायणता सदाचारपर इस प्रकार प्रायः विजय प्राप्त कर लेती है। क्योंकि इसमें हृदय और बुद्धि दोनोंका बल निश्चित रहता है।

हमारी ओसवाल जाति प्रतिष्ठा, मानमर्यादा, शान, आन, बानकी बड़ी इच्छुक है। इस प्रतिष्ठाके नामपर कहीं तो हमें घरमें फ़ाका करके बाहर शक्कर घोलना पड़ता है। इस नामकी मरम्मत के लिये हमें बार बार अनेकों से बार बार बुरा मानना पड़ता है। इस मर्यादा के नाम पर कितना ही व्यर्थ खर्च भी उठाना पड़ता है

और इस शानके नाम पर तो पुरुषों को वहुरूपिया जैसा और स्त्रियोंको वेश्या जैसा पहनाव भी कर लेना पड़ता है और इस आनवान के नाम पर तो चाहे हमारी स्त्रियों को रोग और दुर्वलता को स्पर्श करनेमें तथा चर्खे को स्पर्श करनेमें आन भाग जाती है। इतनी शानकी, आनकी और प्रतिष्ठा की चिन्ता रखते हुवे भी वह तो वढ़ती हुई तो किसी भी प्रकार नज़र नहीं आती किन्तु घटती ही जा रही है।

यदि हम कर्तव्य परायणता की ओर झुक जावें तो देखिये प्रतिष्ठा और शान आकर पैरों पड़ती है वा नहीं। यदि हम कर्तव्य परायणता होना चाहतें हैं तो हमको अपने प्रत्येक आवश्यक कर्तव्यों की ओर जागृत रहना होगा और देश कालके अनुसार विवेक पूर्वक प्रत्येक कार्य में अपना कर्तव्य क्या है उसको खूव सोच समझकर पालन करना होगा। उदाहरण रूप;

(१) हमारा वास्तविक कर्तव्य अपने स्वयं के प्रति, कुटुम्व के प्रति, जाति के प्रति, और देशके प्रति क्या है ?

(२) हम वास्तविक कर्तव्य को क्या कुछ पालन कर रहे हैं ? वा नहीं कर रहे हैं ?

(३) क्या वाल्यकालमें मेरे मातापिताने जो मेरे निमित्त अनक कष्ट उठाये थे उनकी भरपाई करनेको मैं सदा उन्हें अपने कर्तव्योंका पालन करके संतुष्ट रख रहा हूँ ?

(४) क्या मेरा यह विद्याध्ययनका समय वार वार नहीं आनेवाला है इसलिये मैं विद्याध्ययनमें पूर्ण रूचि रखता हूँ ? और शक्तिभर प्रयत्न करता हूँ।

(५) क्या मेरे आचरणमें सत्य और अहिंसा किसी भी अंशमें मौजूद हैं ? उनकी ओर क्या मेरा सदा ध्यान रहता है ?

(६) क्या मेरा परम कर्तव्य है और भविष्य सुखके लिये यह आवश्यक है कि मेरा विवाह यदि शीघ्र भी कर दिया गया तो भी मैं १८ वर्ष पूर्ण होने पूर्व तो काम भाव मनमें भी नहीं आने दूँ। तदर्थ योग्य संगति रखूँ और अपनी रूचि सिवाय विद्याध्ययनके अतिरिक्त कहीं न होने दूँ। निज स्त्रीसे एक मित्रकी भाँति बर्ताव करूँ।

(७) मैं और मेरे भाई बहिन क्या एक ही रक्तके नहीं हैं ? तो हम एक ही प्राण रूप क्यों नहीं रहें ? हम तो एक ही अनारकी त्रिविध गुलियां है। क्यों राम और लक्ष्मण जैसा प्रेम नहीं रख सकते ?

(८) क्या अपनी स्त्रीके प्रति मेरा यही कर्तव्य है कि दासीकी तरह केवल घरके कामकाज रूप उससे सेवाही लिया करूँ, उसपर अपनी हकुमत ही रक्खूँ किन्तु मित्रकी तरह प्रेमभावसे उनको अनविद्या आदि सद्गुणोंसे जो उसकी अपेक्षा मुझमें अधिक है सुसज्जित न कर दूँ जिससे मेरा सारा अंग एक समान सुंदर हो जावे ? वह मेरे जीवनमें सहायक बन जावें।

(९) क्या मुझे अपनी तन्दुरुस्तीका भी ध्यान है, मुझे दस्त प्रतिदिन उचित रीतिसे आता है वा नहीं ? यदि मैं अधिक मिठाई, खटाई, मिर्चे मसाले वा अन्य भोजन स्वादके वश होकर खा लेता हूँ तो इस आनन्दसे पश्चात् जो शरीरमें व्याधि होगी वह कितनी अधिक दुखदाई

होगी। यदि मैं रात्रिको भोजन करता हूँ तो इससे मुझको क्या क्या हानि पहुँचना संभव है? तंग, अस्वच्छ वायुके मकानमें भी मेरी आरोग्यताको क्या क्या हानि पहुँच रही है? क्या मैं यदि मकानको, वस्त्रोंको, और शरीरको साफ सुथरा नहीं रखूं तो कुछ भी हानि नहीं है?

(१०) मेरे हाथ पैरोंमें यदि स्वयं कमानेकी मेहनत करनेकी शक्ति हैं तो मुझे क्यों नहीं अपनी मेहनतसे ही अपना पेट भरना चाहिये और कुटुम्बमें भी सशक्त है और जिनको अवकाश है मेहनत करके पेट भरना ही सिखलाना चाहिये? इसका असर निकम्मी बैठी रहनेवाली स्त्रियोंपर और निकम्मे पुरुषोंपर यदि पड़ेगा तो उनको भी कितना लाभ पहुँचेगा। अनुचित मार्गसे डरना चाहिये न कि परिश्रमके उचित मार्गसे। परिश्रमसे क्या मेरी देह तथा कुटुम्बकी आरोग्यता और शरीरबल भी उत्तम नहीं रहेंगे?

(११) मेरे जितने खर्च हैं उनमेंसे कितने निकम्मे हैं और कम किये जा सकते हैं यदि उनको मैं लोक रूढ़िके वश या अन्य अनावश्यक कारणोंसे करता हूँ तो तुरन्त हटा देनेमें क्या कोई वास्तविक हानि होगी? क्या मेरी उपार्जन चिन्ता उससे कम नहीं हो जावेगी? जिससे बचत यदि हुई तो कर्तव्य पालनकी त्रुटियोंकी पूर्ति करनेमें द्रव्य उपयोग हो सकेगा?

(१२) क्या मैं भविष्यमें आवश्यकता उपस्थित होनेपर इस समयकी बचतसे अपना जीवन कायम रख सकूंगा वा मेरी संतान रख सकेगी?

(१३) क्या मैं स्वजातिकी विद्याप्रचारिणी संस्थाओंको कुछ सहायता देता हूँ ? यदि नहीं देता हूँ तो क्या स्वजातिमें विद्वान् बालक, बालिकाओंकी आशा मुझे रखना चाहिये और वरकन्या अपने पुत्रपुत्रियोंके लिये योग्य मिलनेकी क्या मुझे आशा रखना चाहिये ?

(१४) क्या जातिमें यदि कन्याविक्रय प्रचलित है ! वृद्ध विवाह प्रचलित है ! मृत्यु उपरान्त मोसरकी प्रथा प्रचलित है और बालविधवाओंसे वैधव्य जीवन पालन करानेकी बाध्य प्रथा प्रचलित है ! तो ये सब महान् अनीतियां नहीं है ? अन्याय नहीं है ? और मैं भी उस जातिका अंश हूँ इस कारण उस अंशमें उस अन्याय और अनीतिका भागीदार नहीं हूँ ? इस अन्याय और अनीतिसे बचनेको तथा उन्हें हटानेके लिये मैं क्या प्रयत्न कर रहा हूँ ?

(१५) क्या अपने देशके प्रति भी मेरा कुछ कर्तव्य नहीं है ? दशपर यदि न्याय शासन हो तो मुझे सुख मिले वा नहीं मिले, देशपर यदि स्वार्थियोंका शासन हो तो मेरे स्वार्थों की सिद्धि क्या हो सके ? देशपर न्यायशासन होने के लिये जो उपाय मेरे ध्यानमें है उनको किसी अंशमें कार्यरूप करनेमें क्या मैं भी कुछ समय, द्रव्य वा श्रम देता हूँ ? यदि न्याय शील शासन नहीं हो तो मेरी सन्तान क्या सुखसे अपना जीवन इस देशमें व्यतीत कर सकेंगी ? और क्या मेरे लिये भी देशसेवा सार्वजनिक हितसंबंधी कार्योंमें इतनी उदासीनता रखना शोभास्पद है प्रतिष्ठायुक्त है ?

(१६) मुझे प्रतिष्ठा यदि सत् कर्तव्य बगैर, झूठी शान शौकत से मिल जावे तो उसकी क्या आवश्यकता है ? ऐसी प्रतिष्ठा तो वेश्या भी पा सकती हैं। यदि सत्कर्तव्यों से प्रतिष्ठा प्राप्त हो तो वह अनुचित भी क्या है ? क्या मैं जातीय संस्थाओं में, सार्वजनिक हित के कार्यों में वा व्यक्ति विशेष की सहायता में यदि कुछ भी द्रव्य व्यय करूं तो इसमें दोहरा लाभ नहीं है ? कर्तव्य पालन और प्रतिष्ठा दोनों और आडम्बरों में तो केवल मिथ्या प्रतिष्ठा ही है।

(१७) क्या अपनी जातिकी घटती हो रही है उधर भी कुछ मेरा ध्यान है ? यदि कोई भी ध्यान नहीं देगा तो घटती रूक सकेगी कैसे ? यदि मेरे ध्यान में इसके लिये कोई उपाय है तो उनको प्रगट करने में क्यों विलम्ब करना चाहिये ? और शक्ति भर उस प्रयत्न में शान्तिमय भाग लेने के लिये भी तैयार क्यों नहीं रहना चाहिये ?

(१८) औषध सदा मीठी नहीं होती, कभी कड़वी भी होती है कभी आपरेशन (चीरफाड़ी) भी आवश्यक होता है रोगी को यदि चंगा करना होता है तो उसकी बुरी, भली, गाली, गलौज, निन्दा, बुराई, हाथापाई, सब सहन करना पड़ता है। द्रव्यका व्यय भी सहन करना पड़ता है, शारीरिक श्रम भी सहन करना पड़ता है। किन्तु चंगा हो जाने पर सब वसूल हो जाता है। इसी तरह क्या मेरा कर्तव्य नहीं है कि मुझे यदि जाति उद्धार में वा धार्मिक उद्धार में वा देशोद्धार में जो जो कष्ट सहन करने पड़े उनको तपस्वीकी तरह आनन्द और उमंग-

पूर्वक सहन करलूं, किन्तु शुद्ध श्रद्धाबल से सत्य और अहिंसा पूर्वक ऐसी दृढता रखूं और धैर्य से कार्य करूं कि मनोर्थ सिद्धि करके ही छोड़ूं, क्या सच्ची वीरता साहस पुरुषार्थ यह नहीं है ?

(१९) क्या मेरा कर्तव्य नहीं है कि अन्य को सुधारनेके पहिले स्वयं भी कुछ सुधर जाऊँ तब किसीको सुधरनेको कहूँ तथा अन्यको सुधारनेके साथ ही स्वयं भी अधिकाधिक सुधार करता जाऊँ।

(२०) क्या मैं अपने अंतरंगके सुधारका भी कुछ प्रयत्न करता हूँ। मेरी धार्मिक क्रियाओंने क्या मेरा अंतरंगका कुछ ऐसा सुधार किया है ? जो मुझे संतुष्ट करता है और भविष्यमें उन क्रियाओंपर अधिक श्रद्धा उत्पन्न करता है। यदि दश वर्ष तक एक व्यापारमें कुछ भी लाभ हुआ मुझे प्रतीत नहीं हो तो मुझे जरा अपनी व्यापार शैली को जांचकर उसमें योग्य परिवर्तन कर लेने की ज़रूरत है। इसी तरह धार्मिक क्रियाओंमें भी योग्य परिवर्तन कर लेनेकी जरूरत है ताकि अंतरंगकी शुद्धि हो जावे। क्या मुझे अंतरंगकी शुद्धि करना है तो अपने इस परम स्वार्थ के कार्यमें तनिक भी गफलत नहीं रखना चाहिये और जिस विधिसे अंतरंग, अन्तरात्मा अधिकाधिक शुद्ध होता प्रतीत हो उसीसे लगातार करते रहकर सिद्धि प्राप्त करना ही चाहिये।

इस प्रकार विचार करके कार्य करते रहनेसे, प्रयत्न करते करते शनैः शनैः कर्तव्य परायणताकी ओर बढ़ सकते हैं।

ओसवाल जाति की उन्नति के निमित्त मुख्य उपाय।
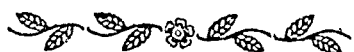
अखिल भारतीय ओसवाल सेवासंघ की स्थापना।

१. जाति के हितेच्छुक वन्धु मिल कर के एक अखिल भारतीय ओसवाल सेवासंघ स्थापित करे।

२. इसके सदस्य वेही हो सकें जो संघके निर्धारित निश्चयों का यथैवत् पालन करनेको स्वीकार करें।

३. सभासदोंका कर्तव्य हो किः—

(१) संघको प्रति वर्ष एक रुपया वा अधिक जितनी ईच्छा हो अवश्य देते रहने की प्रतिज्ञा करें।

(२) संघके सदस्य प्रयत्न करके बढ़ाते रहना होगा।

(३) संघके पत्र का प्रचार भी करने की कोशिश करते रहना होगा।

(४) संघके पत्रको जितने स्वजाति बन्धुओं को सुनाया जा सके सुनाना होगा।

(५) जातिमें जो कोई नवीन समाचार होंवे संघके पत्र विभाग को सूचना करना होगा।

(६) जातिमें किसी असहाय व्यक्ति (अनाथ, विधवा, अशक्त, वृद्ध) को यदि कष्ट पीड़ित देखे तो उसकी सहायता जितनी स्थानिक जाति से करा सके कराना होगा तथा

आवश्यकतानुसार संघके नियमों के मुआफिक संघसे सहायता कराना होगा।

(७) संघका कार्यकर्ता यदि वहाँ संघके काम से आवे तो उसको आश्रय देना होगा तथा काममें सहायता देना होगा।

(८) स्थानिक जातिमें संघके सदस्य गण परस्पर प्रेमभाव तथा मैत्रीभाव रखेंगे।

(९) स्वयं को किसी भी प्रकार कष्ट हो जैसे बेरोज़गारी, उच्च शिक्षाके लिये ऋण या सहायता की आवश्यकता तो संघको निवेदन पत्र भेजेंगे।

(१०) जो कोई भी कन्याका या पुत्रका विवाह करेंगे संघकी आज्ञा प्राप्त करेंगे। यदि वर या कन्या की आवश्यकता होगी तो संघको सूचित करेंगे।

(११) संघको हर प्रकारसे अपनी सेवाएँ देनेका तथा संघसे हर प्रकारकी आवश्यकता पूर्तिके निमित्त योग्य सम्पत्ति, द्रव्य सहायता इत्यादि प्राप्त करनेका इनका कर्तव्य होगा।

४. संघकी ओरसे एक पाक्षिक पत्र प्रकाशित होवे जो पहिले केवल दो फार्म (८) पृष्ठका हो उसमें विज्ञापनादि बिलकुल नहीं होवें। सामाजिक विषयके जैसे वर कन्या आदि संबंधमें होवें तो कोई हर्ज़ नहीं है। इस पत्रके द्वारा ४ पृष्ठोंमें क्रमवार निम्न लिखित विषयोंपर योग्य विवेचन और शिक्षा होवे। २ पृष्ठोंमें जाति संबंधी और २ पृष्ठोंमें देश संबंधी आवश्यक सूचनायें केवल हों।

(१) आरोग्यता कैसे कायम रह सकती है कैसे पुनः लौट सकती है।

(२) शरीरबल कैसे प्राप्त किया जाता है, स्थिर रखा जाता है और कैसे बढ़ाया जाता है।

(३) मनुष्यके लिये कौन कौनसे खर्च अधिक आवश्यक है, कौन कौनसे खर्च किफायतसे करनेसे कम भी हो सकते है, और कौन कौनसे बिलकुल निरर्थक है। अपनी जातिकी परिस्थितिकी अपेक्षासे भी लीखे जावें।

(४) आय (प्राप्त) करना कितना आवश्यक कार्य है, उसके लिये किन २ गुणोंकी आवश्यकता है और क्यों है? तथा कौन कौनसे अवगुणोंके त्यागकी आवश्यकता है और क्यों है?

(५) विवाह करनेकी कब आवश्यकता हैं किस किस के लिये आवश्यकता है किन किन को विवाह नहीं करना चाहिये, किन किनको विवाहसे रोकनेमें दुराचार बढ़ता है और किन किनको विवाह करने देनेमें बल्कि उनको उत्साहित करनेमें दुराचार और घटता है।

(६) सन्तान उत्पत्तिमें कौन कौनसे बाधक कारण होते हैं उनके उपाय क्या हैं। संतानको बालपनसे योग्य बनाने के निमित्त माताको किन किन बातोंका विशेष ध्यान रखना लाजिमी है और पितादिको भी लाजिमी है?

(७) उम्रभर बच्चे तन्दुरुस्त तथा ताकतवर रहने के लिये बच्चों के मातापितादि को क्या क्या उपाय करते रहना

चाहिये । तथा उनकी शिक्षा में रूचि बढ़ानेके लिये क्या क्या उपाय करना चाहिये तथा उनकी संगति की ओर किस प्रकार ध्यान रखना चाहिये तथा उनके प्रत्येक व्यसनों से कैसे बचाते रहना चाहिये ?

(८) प्रत्येक मनुष्य के लिये ब्रह्मचर्य की कितनी आवश्यकता है और वह किस रीतिसे शनैः शनैः पूर्ण ब्रह्मचारी बन सकता है । ब्रह्मचर्य पालन में खुराक आदि क्या क्या बाधक और क्या क्या सहायक है ?

(९) संपकी कैसी शक्ति है उसके क्या गुण हैं और कैसे व्यवहार में रखना आवश्यक है ?

(१०) सच्चा धर्मात्मा सदाचारी कैसे है सदाचार क्या है और कैसे सध सकता है ?

(११) ओसवाल भूपाल हम क्यों कहलाये और आगे भी कैसे कहला सकते हैं किन किन बातों में हम सावधान रहा करें ?

(१२) पंचायतों के वास्तविक काम और अधिकार क्या हैं ? पंच को न्याय करने में कौन कौन से गुण चाहिये ?

(१३) स्वावलंबी, कर्तव्य परायण होनेसे और देशकाल को देख कर चलने से किस तरह जीवन सुख से व्यतीत होता है ?

(१४) शिक्षा, व्यायाम, मनोरंजन किस किस प्रकारसे प्रत्येक मनुष्य सहजमें प्राप्त कर सकता है । और किस किस तरहसे वे लाभदायक होते हैं और किस किस तरहसे हानिकारक होते हैं ?

(१५) गुप्त पाप क्यों करके जातिमें से निवारण हो सकते हैं। रामबाण उपाय क्या है।

(१६) प्रगट अनीतियां कैसे दूरकी जा सकती है? इस संबंधमें प्रत्येक मनुष्यका जातिके प्रति क्या क्या उपाय करना कर्तव्य है?

(१७) हमारी जाति किन किन कारणोंसे घट रही है और घटती रोकनेके लिये क्या उपाय उपयोगी है।

(१८) कौन कौनसे खर्च व्यर्थ होते हैं जिनके कारण क्या क्या अनीतियां होती हैं और वे कैसे हटाये जा सकते हैं, उनको हटानेसे कितना लाभ हो सकता है?

(१९) स्त्रियोंमें क्या क्या दोष उत्पन्न हो गये हैं जिनके कारण हमारी सन्तान पर भी कुप्रभाव पड़ता है। स्त्री शिक्षाका प्रश्न बड़ा आवश्यक कैसे है?

(२०) बेरोजगारोंको रोजगार क्यों नहीं मिलता और कैसे मिले और कहां मिले?

(२१) सफलता प्राप्ती की चाबी क्या है।

(२२) देशके प्रति, जातिके प्रति और जगत्के प्रति हमारा क्या कर्तव्य है। तथा ऐसे ही जो अन्य उपकारी विषय हों उनपर खूब विवेचन उस पत्रमें रहना चाहिये। इनके अतिरिक्त जातिमें जो समय समयपर घटनाओंकी सूचनायें मिले उनपर संपादकीय लेख अलग होना चाहिये।

५. संघकी ओरसे उपदेशक भी जो स्थायी तौरसे काम करनेवाले हों एक वा अधिक जितने भी संघ भेज सकें स्थान स्थानपर ग्राम

ग्राममें घूमना चाहिये। जो संघकी ओरसे उपरोक्त विषयोंपर भाषण दें जातिभाईयोंको उचित मार्ग सुझावें संघके पत्रकी ग्राहक संख्या तथा सदस्य संख्या बढ़ावें। सदस्यको पत्रका मूल्य नहीं देना पड़े और ग्राहक को एक रुपया देना पड़े सदस्य यदि अधिक कॉपी अपने नाम मांगे तो दो और कापीके आठ आठ आने प्रति कापी प्रति वर्ष उसके लिये होवे। उपदेशक अपनी रिपोर्ट संघको सूचित करता रहे। यदि हो सके तो मैजिक लैन्टर्नसे भी ये प्रचारमें सहायता लें।

६. संघकी ओरसे उच्च शिक्षा प्राप्त करनेवालोंको, गरीब विद्यार्थियोंको, कन्या पाठशालाओंको और महिला शालाओंको आवश्यकतानुसार सहायता दी जावे।

७. संघकी ओरसे अनाथ बालक, बालिकाओंको तथा अशक्त स्त्री, पुरुषोंको इस रीतिसे सम्हाल ली जावे जिससे यथा संभव वे अपने ग्राममें रहकर ही सुखसे जीवन व्यतीत कर लें और बालक बालिका पढ़ लिख भी लेवें। यदि ग्राममें न हो सके तो उचित स्थानपर पहुँचाकर उनकी सम्हाल की जावे द्रव्यका खर्च संघ करे।

८. संघ अपने उपदेशकों द्वारा तथा पत्रद्वारा प्रयत्न करे जिससे ग्राम ग्राममें नगर नगरमें ओसवाल सेवा सभा और प्रान्तोंमें प्रान्तीय ओसवाल सेवा सभाएँ स्थापित हो जावें जो अपने अपने क्षेत्रमें अवैतनिक वा हो सके तो वैतनिक कार्यकर्ता ओं द्वारा संघकी सहमति तथा अनुमति के अनुसार उसी प्रकारका प्रचार कार्य करें।

९. संघ की ओर से अत्यन्त उपयोगी विषयों के चित्र वा ट्रैक्ट छप छप कर पत्र के साथ बांटे जावें।

१०. किसी भी ग्रामके सब सदस्य किसी स्वजातीय बंधुको या बहिन को सहायता करने को लिखे तो संघ यथा संभव सहायता करे जिस प्रकार की आवश्यकता हो।

११. संघ का हैड आफिस प्रथम वार तो किसी स्थान पर नियत हो जावे, किन्तु २ वर्ष पश्चात् पुनः विचार कर आवश्यक्ता हो तो परिवर्तन कर लें। प्रथम वार भी उस स्थान पर ही हो जहां के कार्य कर्ता उद्योगी और अवकाश वाले हों।

१२. कोष संग्रह करने का कार्य अवैतनिक कार्य कर्ताओं के सुपुर्द ही रहे। यदि कोई सहायता दे दे तो सीधी ही भिजवादें और खर्च करने का काम सब वैतनिक कार्य कर्ता के आधीन रहे।

१३. संघ का अधिवेशन थोड़ा कार्य (१ वर्ष) चला कर भी पीछे किया जावे तो कोई हर्ज नहीं। पहिले स्थाई रूपसे काम चलें।

१४. संघकी सब कार्यवाही पर मंत्री निरीक्षण रखे। निम्नलिखित कार्यकर्ता वैतनिक रहे। सब कार्यकर्ताओंका अध्यक्ष, आवश्यकता हो तब सहायक अध्यक्ष, एक योग्य अनुभवी सम्पादक जो अपने घर बैठे भी केवल एक सप्ताह तक काम करके भी चला सकता है तथा उपदेशक जितने रखें जा सकें, प्रकाशन विभागका काम भी अध्यक्षके पास होवे।

१५. सदस्यों को योग्य उत्तर साधारण पत्रोंके कार्याध्यक्ष देवें और विशेष पत्रोंके मंत्री देवें। जिनमें महत्वपूर्ण विषय हो।

१६. एक वर्ष के अनुभव के पश्चात् अवैतानिक कार्यकर्ताओंका एक संगठन करें जो स्थानिक पंचायतोंके सुधारके निमित्त अपना

दौरा प्रान्त प्रान्तमें स्थान स्थान पर जाकर वर्षमें कममें कम १ माह करें और उन्हें खर्च संघ की ओरसे दिया जावे।

१७. संघका यह भी कर्तव्य हो कि ओसवाल जातिका एक उत्तम इतिहास तैयार किये जानेका प्रबंध करें तथा छोटे साजन और बड़े साजनका भेद है उसके विषयमें क्या प्रामाणिक कारण हैं।

इस संघके स्थापित करनेके लिये किन किन से सम्मति, सहयोग लेना इत्यादि तथा किस प्रकार फंड संग्रह करना तथा प्रारंभ करना स्थानीय संस्थाएँ तथा समाजके विद्वान गण सोचे।

"इति शुभम्"

उपसंहार ।

" वर वीर भजो मद मोह तजो,
गण गौतम नाम हमेस रटो ।
हृदि नाम जिनेसरको लिखलो,
तुम होय निराश न लेर हटो ।
सब आपदको धर धीर सहो,
तुम 'चंचल' सुन्दर ठाट ठटो ।
लखके स्व समाज दशा युवकों,
उसके हितको दिनरात खटो ॥ १ ॥

कर दूर अज्ञान तभी अपनी,
जिन धर्म सुधर्म सिद्धान्त पढ़ो ।
उन पै चल अष्ट विनष्ट करो,
मन निर्मल सम्यक भाव मढ़ो ।
दश दोयम श्रावकके मनसे,
तुम पाल सदा मत झूठ गढ़ो ।
नवकार गुणा, तम तैज घटै,
तुमसे कह चंचल अग्र बढ़ो ॥ २ ॥

युवक ही देश तथा समाजकी भावी आशा है । किसी देशको दखिये, किसी राष्ट्रका उन्नत होनेका कारण खोजिये तो आपको

मालूम होगा कि युवकोंने ही अपना आत्म विसर्जन कर समाजको या देशको उन्नति पथकी ओर अग्रसर किया है। " नवयुवक ही समाज के जीवनाधार हैं। राष्ट्रोंकी उन्नति, उन्नति कारक क्रांतियां, राष्ट्रीय आन्दोलन इन सबके आधार नवयुवक ही हैं। प्रत्येक देशमें जब भी कोई आन्दोलन हुआ है तो नेताओंने नवयुवकोंसे ही अपील की है "। नवयुवकोंने अपनी शक्तियां देश और समाज हितार्थ अर्पण की हैं। जिस समाजके नवयुवकोंमें देशसेवाके भाव जागृत नहीं होते वह जाति संसारमें अधिक दिनों तक टिक नहीं सकती। हम-दूर क्यों जाय ? हमारी समाजकी वर्तमान अवस्था ऐसी सोचनीय क्यों हो रही हैं ?

कारण है हमारे नवयुवकोंमें वह जागृति, वे बंधुत्वके भाव नहीं जो उनको सब प्रश्नोंके आगे समाज हितका प्रश्न रखने, समाज हितके लिये अपनी शक्तियाँ अर्पण करनेको वाध्य करे।

युवकोंको अपनी वर्तमान और भविष्यकी जिम्मेवारी अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये। केवल इतनाही नहीं किन्तु अपने आपको इस योग्य बना लेना चाहिये कि उस जिम्मेवारीको सफलतापूर्वक झेल सकें और अपना जीवन सफल बनावें। युवकोंकी अवस्थाहीमें हम सुन्दर एवं उज्वल भविष्यके बीज बो सकते हैं। अपने इह लौकिक सुखकी ही नहीं, पर लौकिक सुखकी नीवभी डाल सकते हैं। अब ओसवाल समाजकी विकट अवस्था है। इसमें क्रान्तिकी पूर्ण आवश्यकता है। " क्रान्ति जीवनकी निशानी है। खूनकी गरदिश जिस प्रकार जीवनके लिये आवश्यक है उसी प्रकार क्रान्ति सामूहिक

जीवनके लिये आवश्यक है।" जिस प्रकार खून रक्त अशुद्धियोंको साफ करता है और शरीर स्वस्थ रखता है उसी प्रकार क्रान्ति भी रूढियोंको हटाकर सामाजिक जीवनको उज्वल बनाती है। जिस समाजमें क्रान्ति नहीं रहती या सामाजिक जीवन क्रान्तिहीन रहता है वह जाति शीघ्र नष्ट हो जाती है।

आज ओसवास समाजमें अच्छी बुरी उपयोगी तथा हानिकारक वस्तुऐं पहुँच रही हैं किन्तु हमारी वह शक्ति नहीं कि हम बुरी वस्तुओंको निकाल कर वाहर फेंक दें। जिस समाजके युवकोंमें जीवन है वे बुरी चीजको बाहर निकाल देते है। और अच्छी बातको समाजमें स्थान देते हैं। समाजको जीवित रखना एक मात्र युवकोंके हाथमें है। आज ओसवाल युवकोंको क्रान्ति कर बुरी वस्तुओंको निकाल कर सुधारका झण्डा फहरा देना चाहिये और यदि अब भी युवकोने क्रान्ति न की तो समाजका पता न लगेगा और एक दिन ऐसा आवेगा जब ओसवाल समाजका अस्तित्व भी खतरे में ही रहेगा। इसलिये समाजमें क्रान्तिकी पूर्ण आवश्यकता है। हम जन धर्मावलम्बी हैं। जैनधम क्रान्ति है। जब कभी " पोल " झन्डा फहराया है तभी जैनधर्मने असली बातोंका प्रचार किया है। जैनधर्ममें कोई पोल नहीं है। सभी बाते वैज्ञानिक रीतिसे सिद्ध हैं। किन्तु आज यही समाज क्रान्ति विहीन हो ढकोसलोंकी पोषक बन रही है।

हमारी क्रान्ति किस प्रकारकी होनी चाहिये। क्रान्तिका स्वरूप भारतीय सभ्यता पर हो या पाश्चात्य सभ्यता पर। भारतवर्षमें भारतीय सभ्यता जितनी लाभदायक हो सकती है उतनी पाश्चात्य

सभ्यता नहीं । " इन दोनों सभ्यताके मूलमें ही अन्तर है, यह हमें नहीं भूलना चाहिये । भारतवर्षकी सभ्यता सात्विक है ।........ पाश्चात्य सभ्यता (Militant) है " । हमारे यहां के गुरूमहाराज सहानुभूतिका आदेश किया करते थे, यहां धनधान्यकी कमी नहीं थी । जीवन साधन सुलभ थे, जीवन सन्तोषी था इसलिये जीवन संग्राम नहीं था । पाश्चात्य निवासियोंका निर्वाह दुसरोंके रोटी छीननेसे ही होता था । इसलिये हमारे में दूसरी सभ्यता असम्भव ही नहीं पर घातक भी होगी । हमारी क्रांति इसलिये हम परही निर्भर होगी । हमारी क्रान्तिमें नम्रता और विनय, सेवाभाव और सहनशीलता, धीरज और गंभीरता होनी चाहिये, न कि अहंकार, व्यक्तिगत ईर्ष्या द्वेष, उच्छृंखलता अथवा जिद इत्यादि " । यदि यह सब गुण हमारी क्रान्तिमें रहे तो हमारी तरफ लोगोंकी सहानुभूति होगी और हमारे समाजमें जीवन उत्पन्न करनेका पवित्र उद्देश्य शीघ्र सफल होगा ।

युवकों ! आज तुह्मारेपर समाजके नेत्र निर्भर हो रहे हैं । तुम्हारेसे ही मनुष्यमें सच्ची जीवन ज्योति जग मगाया करती है । तुम भी यदि समाजकी मांगपर बलिदान न होवेंगे तो और कौन होगा । देखो संसारमें क्या हो रहा है । तुम्हारी ओसवाल जाति संसारकी जातियोंमें किस स्थानपर है और ऐसी अवस्थामें तुम्हारा क्या उत्तरदायित्व है । आ जाओ समाजकी भावी आशाओं आ जाओ समाजके भविष्य कर्णधार, तुम्हारी मा ! आज पीड़ित हो तुह्मारा बलिदान चाहती है । वह क्रोधित हुई तुम्हारा आव्हान कर रही है । यह सब किया किस किसने ? युवकों तुमने । तुमने अपनी माताको

इस प्रकार जर जरित रखा। तुमने अपने जोशको कायरताका स्थान दे दिया। अब तुम सोते मत रहो, तुम सब कुछ कर सकते हो, समाजकी डोर अपने हाथोंसे थामो, धैर्य्यके साथ विपत्तियोंका सामना करो, तुम डर क्यो रहे हो, तुम सब कुछ कर सकते होः—

जब युवक गण हो अग्रसर उत्साहको अपनायेंगे।
तब जातिके इस मलिन मुखको क्रान्तियुक्त बनायेंगे।

अब मैदानमें आ जाओ, समाजकी सेवाके लिये अपने प्राणोंको भी न्यौछावर करना पड़े तो मत डरो। तभी उन्नति होगी।

क्या आप ओसवाल है ?

तो

ओसवाल मित्र मंडल बम्बई के मेम्बर बनिये

इस मंडलका ध्येय अखिल ओसवाल समाजकी सर्व प्रकारसे उन्नति करना है । तमाम ओसवाल समाजका संगठन कर बृहद् आंदोलन करवाना है तो आपको भी इसमें शरीक होना क्या आपकी फर्ज नहीं है ? तो बनीये आजही मंडलके मेम्बर बनीये । रिपोर्ट और नियमावलीके लिये आजही निचे पतेपर लिखीये ।

ओसवाल मित्र मंडल,
पायधूनी आदेश्वर बिल्डींग
बम्बई, नं. ३

मनोरमल गोठी
मंत्री